

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्॥ ॐ १/८६/२

ISSN : 2395-7115

नवम्बर 2024

Vol.-20, Issue-5(3)



Impact Factor
7.523



Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

सामाजिक सशक्तिकरण एवं महान विभूतियां



Special Issue Editor :
Dr. Neeraj Ruwali,
Dr. Priyanka Ruwali,
Mohit Kumar Sharma

Special Issue Co-Editor :
Jyotsana Bhatt

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Adv.

Publisher :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 20

ISSUE-5 (3)

(नवंबर 2024)

ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),

एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),

डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)

डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक

टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)



प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

- Disclaimer :*
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
 2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
 3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
 4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdiction only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरुनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टांटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरु

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरु

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रु. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रु. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003



बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc.,)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals	08 per paper	10 per paper
2.	Publications (other than Research papers)		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

📍 202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

🌐 www.bohalsm.blogspot.com

✉ grsbohals@gmail.com

☎ 8708822674

📞 9466532152

अनुक्रमणिका - नवंबर 2024

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ. नीरज रुवाली, डॉ. प्रियंका रुवाली, मोहित कुमार शर्मा	10-10
2.	बिरसा मुंडा : एक क्रांतिकारी एवं समाज सुधारक	धायत्री महतो	11-15
3.	राजा राममोहन राय:- भारत की महान विभूति	अंजली गुप्ता	16-18
4.	दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक दर्शन	ज्योत्सना भट्ट, डॉ. नीरज रुवाली	19-22
5.	राजा राममोहन राय : भारतीय ज्ञानोदय के जनक	प्रीति भारती	23-27
6.	गौतम बुद्ध का जीवन और शिक्षाएँ : करुणा और ज्ञान की ओर यात्रा	विवेक कुमार	28-31
7.	The Legacy of Teaching and Philosophy of Chaitanya Mahaprabhu	Dr. Abhishek Agrawal	32-35
8.	नेताजी की दृष्टि में स्वतंत्र भारत	रोशनी परीक	36-40
9.	राजा राममोहन राय - सती प्रथा अंत के पुरोध	संध्या टम्टा	41-44
10.	डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार : प्रखर राष्ट्रवादी एवं मातृभूमि के उपासक	विजय सिंह	45-49
11.	लाल बहादुर शास्त्री - एक विशिष्ट व्यक्तित्व	जोया, प्रभात रंजन सिंह	50-54
12.	यशवंतराव होलकर की जीवनी	प्रथम भनोत्रा,	55-60

		डॉ. सुनीता मालवीय	
13.	महात्मा गांधी एवं विकसित भारत का अध्ययन	हंसराज पुर्बिया	61-64
14.	मध्यकालीन भारतीय सामाजिक एकीकरण के प्रणेता : अमीर खुसरो	पूजा कुमारी	65-68
15.	भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा	कु. सपना प्रजापति	69-72
16.	मीराबाई	ज्योति	73-77
17.	जमशेदजी टाटा : भारत का निर्माण	रीना कुमारी	78-81
18.	स्वामी दयानंद सरस्वती : हिंदू समाज सुधारक	राहुल दीप, डॉ. मोना गुलाटी	82-85
19.	उत्तराखंड का सैनिक इतिहास	आकांक्षा काण्डपाल	86-90
20.	Bulbul-e-Hind Sarojini Naidu	Akanksha Kandpal, Roshni Pareek	91-94
21.	अकबर और हिंदू मुस्लिम सद्भाव	आयुशी गुप्ता	95-99
22.	राजाराम मोहन राय और सामाजिक सशक्तिकरण	पूजा पान्डेय	100-103
23.	Ambedkar as a Feminist Thinker : Intersectionality and the Fight for Gender Justice	Garima Thapliyal, Ritambara Nainwal	104-108
24.	स्वामी विवेकानंद के स्वप्नों का भारत	एकता जैन	109-115
25.	GREAT LEADER OF INDIAN DEMOCRACY : CHANDRA SHEKHAR	Rahul Kmar	116-118
26.	Rukhmabai Raut (1864-1955)	Jyoti Yadav	119-123
27.	Rani Durgavati : The Warrior Queen of Gondwana	Samiksha Bhadoria	124-128

28.	Dr. Muhammad Allama Iqbal – Conversation artist	Mohammad Salman	129-131
29.	Sacred Hubs : How the Chola temples influenced the society with special refence to Rajendra Chola I's reign	Anjali Sachan	132-135
30.	Dayanand Saraswati and the Fight for gender equality : challenging patriarchy in colonial India	Poonam	136-140
31.	भोमट आन्दोलन का मसीहा : मोतीलाल तेजावत झाडोल क्षेत्र के विशेष संदर्भ में	दिनेश कुमार पटेल	141-144
32.	हिंदू धर्म उद्धारक : आदि गुरु शंकराचार्य	केतन तिवारी	145-150



प्रिय पाठकगण!

“बोहल शोध मंजूषा” का नवम्बर का यह विशेष अंक ‘सामाजिक सशक्तिकरण एवं महान विभूतियां’ आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह माह न केवल मौसम में बदलाव का द्योतक है, बल्कि विचारों और दृष्टिकोण में नवीनता का भी प्रतीक है। इस अंक में हमने ऐसी महान विभूतियों पर शोधों को समाहित करने का प्रयास किया है, जो समाज, विज्ञान, और संस्कृति के क्षेत्र में नये द्वार खोलते हैं।

आज की दुनिया परिवर्तनशील है। हर दिन नयी तकनीक, शोध, और विचारधाराएं उभरती हैं, जो हमारी सोच और जीवनशैली को नये आयाम प्रदान करती हैं। इस अंक में हमने उन शोधों को प्राथमिकता दी है, जो न केवल नवाचार के वाहक हैं, बल्कि समाज को प्रगति की दिशा में प्रेरित भी करते हैं।

महान विभूतियों पर आधारित लेख, पर्यावरण संरक्षण में नवीन उपायों की खोज, और सामाजिक समस्याओं के समाधान पर विचारशील रचनाएँ, इस अंक की प्रमुख विशेषताएँ हैं। विशेष रूप से हमने महान विभूतियों द्वारा जलवायु परिवर्तन और सामाजिक सतत विकास पर किए गए कुछ अत्याधुनिक शोधों को स्थान दिया है, जो न केवल प्रासंगिक हैं, बल्कि अनिवार्य भी।

इस अंक के माध्यम से हमारा प्रयास है कि हम आपको विचारों की ऐसी दुनिया में ले जाएं, जहाँ शोध और नवाचार के माध्यम से मानवता के लिए बेहतर भविष्य की संभावनाएँ बनती हैं। हमें विश्वास है कि यह अंक आपको प्रेरित करेगा और आपके ज्ञान के दायरे को और विस्तृत करेगा।

हम आपके सुझावों और विचारों का स्वागत करते हैं। आइए, मिलकर इस पत्रिका को और अधिक समृद्ध और अर्थपूर्ण बनाएं।

शुभकामनाओं सहित,

विशेषांक संपादक, बोहल शोध मंजूषा

डॉ. नीरज रुवली, डॉ. प्रियंका रुवाली, मोहित कुमार शर्मा



बिरसा मुंडा : एक क्रांतिकारी एवं समाज सुधारक

धायत्री महतो, UGC NET, JRF (HISTORY)

स्नातक - जमशेदपुर वर्कर्स कॉलेज जमशेदपुर (कोल्हान विश्वविद्यालय, झारखंड)

परास्नातक - द ग्रेजुएट स्कूल कॉलेज फॉर वूमन, जमशेदपुर (कोल्हान विश्वविद्यालय, झारखंड)

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन के तहत आदिवासी समुदायों द्वारा झेली गई कठिनाइयों के परिणामस्वरूप मुंडा विद्रोह की शुरुआत हुई और धीरे-धीरे इस आंदोलन से प्रेरित होकर कई अन्य आंदोलन भी हुए। यह आंदोलन 1895 से 1900 ई तक चला। बिरसा मुंडा ने देश की आजादी और आदिवासी समाज के उत्थान में बड़ा ही योगदान दिया है।

भारतवर्ष के स्वाधीनता - संग्राम के इतिहास में बिरसा मुंडा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में उसका जन्म और अभ्युत्थान केवल एक विदेशी सरकार और उसके शोषण के विरुद्ध ही नहीं था, साथी ही साथ यह विद्रोह समकालीन सामंती व्यवस्था के विरुद्ध भी था। इतिहास की इन सब विवेचनाओं से कटकर बिरसा मुंडा और उसके अभ्युत्थान की सही-सही विवेचना असंभव है।¹

‘ बिरसा मुंडा आंदोलन’ का नेतृत्व करते हुए बिरसा ने अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष किया, जिसके कारण अंग्रेजी शासन को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने पर मजबूर होना पड़ा। आंदोलन के परिणाम- स्वरूप इन क्षेत्रों में काश्तकारी अधिनियम में परिवर्तन किया गया तथा स्थानीय परंपरागत अधिकारों का समावेश किया गया। साथ ही साथ जनजातियों के पुश्तैनी भूमि के अधिकार को भी मान्यता दी गई। बिरसा मुंडा ने अपने आंदोलन के दौरान लोगों को पहली बार यह अनुभव कराया कि वह सभी आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान तभी निकाल सकते हैं जब उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जाए। इसके लिए बिरसा ने छोटा नागपुर क्षेत्र में जनजातियों के बीच राष्ट्रीय आंदोलन का आधार तैयार किया। बिरसा मुंडा का आदम्य साहस और दार्शनिक चिंतन निसंदेह मानव समाज के लिए प्रेरणादायी और अनुकरणीय है। सबसे पिछड़े और आदिम माने जाने वाले समाज का हिस्सा होते हुए भी उन्होंने पराधीन भारत

में लोगों के मन में एक साहासिक राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। अपने समाज के अधिकारों की रक्षा के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती देकर बिरसा मुंडा ने जिस साहस के साथ समाज के उत्थान के लिए कार्य किए हैं निःसंदेह वह अभूतपूर्व है। मानव जाति के कल्याण और राष्ट्रीयता के प्रसंग में उनकी शहादत न केवल जनजातीय समाज, अपितु संपूर्ण भारतवर्ष के लिए प्रेरणादायक है।²

बिरसा मुंडा एक समाज - सुधारक के रूप में -

बिरसा का आंदोलन आदिवासी समाज को सुधारने का आंदोलन था। उन्होंने मुंडाओं से आह्वान किया कि वे शराब पीना छोड़ दे, गांव को साफ रखें और डायन व जादू टोने में विश्वास ना करें और जमींदारों का भी लगातार विरोध किया। वह उन्हें बाहर का मानते थे जो मुंडा जीवन शैली को नष्ट कर रहे थे।³

राजनीतिक चेतना के विकास में छोटा नागपुर के बिरसा आंदोलन ने काफी योगदान दिया। आंदोलन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक बुराइयों को दूर करना तथा विदेशी शासन को समाप्त करना है। यह आंदोलन करीब करीब सन 1880 से 90 के मध्य शुरू हुआ और बिरसा के नेतृत्व में उनके जीवन पर्यंत चला रहा।⁴

शोषण की अमानवीय प्रक्रिया ने जनजातीय समुदाय की सामाजिक व्यवस्था को जर्जर कर दिया था। इस कठिन समय में इस धरती पर बिरसा मुंडा का आविर्भाव हुआ। शोषण से मुक्ति के लिए उन्होंने उलगुलान का आंदोलन चलाया, जो क्रमशः सामाजिक क्रांति का द्योतक बन गया। इस शोषण प्रक्रिया के प्रमुख अत्याचारी 'दीकू' थे, जो बाहर से आकर इस क्षेत्र की वन और धरती संपदा हड़प लेना चाहते थे। ब्रिटिश शासन उनके साथ था। दीकू धीरे-धीरे जमींदार, ठेकेदार, और जागीरदार बन गए। इस समय न्याय की आशा पूरी तरह समाप्त हो चुकी थी। बिरसा मुंडा ने इस ज्वलंत समस्याओं को समझा और 25 वर्ष का एक युवा मात्रा तीर धनुष थामें संघर्ष की अग्नि में कूद पड़ा। बिरसा मुंडा केवल एक क्रांतिकारी ही नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपने समाज को नए विचार भी दिए। अपनी एक उन्नतिसील विचारधारा दी तथा धार्मिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए लोगों को मार्ग बताए। अपने इस बहु-आयामी व्यक्तित्व के कारण ही जनजातीय समाज में उन्हें भगवान की संज्ञा दी गई। बिरसा वास्तव में जननायक थे। आज भी वह वीर बिरसा, धरती आबा (धरती पिता) और बिरसा भगवान के नाम से याद किए जाते हैं। बिरसा मुंडा का सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण इतना प्रभावशाली था कि वह छोटानागपुर के पूज्य व्यक्तित्व बन गए। गैर जनजातीय - समुदाय में भी उन्हें आदर मिला। वे अपने जनजातीय स्वभाव के साथ चले और आजीवन जनजातीय अस्मिता के लिए लड़ते रहे। बिरसा मुंडा के समक्ष जनहित सर्वोपरि था। उन्होंने जनसाधारण से कहा - "महारानी राज तुंदु जाना ओरो अबुआ राज एते जाना" (ब्रिटिश महारानी का राज खत्म हो और हमारा राज स्थापित हो)। बिरसा का यह

उद्घोष ऐतिहासिक बन गया, जिसकी तुलना 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के साथ सहज ही की जा सकती है। इस प्रकार बिरसा मुंडा ने जनजातीय लोगों के आर्थिक और सामाजिक शोषण की मुक्ति के लिए अपना जीवन न्योछावर कर दिया। एक विद्रोही नेता ही नहीं, वह जनजातीय समुदाय के पुनर्जागरण का प्रतीक बन चुके थे। उनके आंदोलन में धार्मिक सुधार और सामाजिक चेतना का सुंदर समन्वय है। बिरसा मुंडा जनजातीय संस्कृति की प्राचीन भव्यता को पुनः स्थापित करना चाहते थे। बिरसा मुंडा अपने लोगों को अत्याचारों से छुटकारा दिलाने के लिए बलिदानी रूप धरकर सामने आए। अपनी धार्मिक अस्मिता को अखंडित रखने के लिए उन्होंने धर्म उपदेश का रूप भी धारण किया। उन्होंने देख लिया था कि शोषक वर्ग धर्म परिवर्तन को भी औजार बना चुके हैं और यह भी जान लिया था कि उनके क्षेत्र की सभी जनजातियों को बड़ी संख्या में ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इस संदर्भ में उनके इस कथन ने लोगों पर व्यापक प्रभाव डाला कि - मिशनरियों और अंग्रेजों में कोई अंतर नहीं है। बिरसा मुंडा की सामाजिक चेतना उन्हें पूज्य बनाती है। वे अपने सामाजिक चेतना को सामाजिक सेवा के उत्कर्ष तक ले गए। वे नैतिकता के हास के दुश्मन थे। सामाजिक बुराइयों को दूर करना चाहते थे। संस्कृतिक और धार्मिक ढांचे को पुनर्गठित करना चाहते थे। उनका सेवाभाव अतुल्य था। गांव-गांव में जाकर उन्होंने अस्वस्थ लोगों की महामारी में चेचक फैलने पर पूरी लगन के साथ बीमारों की सेवा की।⁵

आदिवासियों को एकत्र कर अंग्रेजी शासकों के दमनकारी एवं कठोर कानून के खिलाफ व्यापक आंदोलन चलाने वाले बिरसा मुंडा आज अपने अनुयायियों के बीच भगवान के तौर पर पूजे जाते हैं। और देश भर में उन्हें आदिवासियों का प्रेरणाप्रद नेता माना जाता है। अपने समुदाय के लोगों के उत्पीड़न और उनकी जमीन पर बाहरी लोगों का कब्जा सहित विभिन्न मुद्दों को लेकर उन्होंने लोगों को जागरूक किया और उनके आंदोलन ने अंग्रेज सरकार की नाक में दम कर दिया। उनका मकसद था कि आदिवासी अपने अधिकारों को लेकर जागरूक हो और वह किसी दबाव में ना आए। उनका विरोध अंग्रेजों के अलावा स्थानीय साहूकारों व महाजनों और जमींदारों के खिलाफ भी था। वह एक ऐसे क्रांतिकारी थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन जनकल्याण को समर्पित कर दिया। बिरसा मुंडा ने मुंडा आदिवासियों के बीच अंग्रेजी सरकार की जन विरोधी नीतियों के खिलाफ लोगों को जागरूक करना उस उम्र में शुरू किया था, जब बच्चे हिलने - डुलने में ही व्यस्त रहते थे। जब सरकार द्वारा उन्हें रोका गया और गिरफ्तार कर लिया गया तो उसने धार्मिक उपदेश के बहाने आदिवासियों में राजनीतिक चेतना फैलाना शुरू किया। उसने मुंडा समुदाय में धर्म व समाज सुधार का कार्यक्रम शुरू किया और तमाम कुरीतियों से मुक्ति का प्रण लिया।⁶

बिरसा मुंडा का भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका -

बिरसा मुंडा ने जिस आंदोलन की शुरुआत की थी, उसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि उस समय के सभी प्रमुख राजनीतिक संगठनों ने उसका समर्थन किया। भारतीय जनमानस को

दमनकारी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जाग्रत करने वाले इस आंदोलन की भूरि - भूरि प्रशंसा की गई। छोटा नागपुर के जनजातीय समूह को जाग्रत करके अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष हेतु तैयार करने में बिरसा मुंडा ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में उसकी इस निर्णायक भूमिका का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस** और **फॉरवर्ड ब्लॉक** ने सन 1940 में बिरसा मुंडा के सम्मान में 'बिरसा दिवस' मनाया। इस वर्ष कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन मुख्य द्वार को 'बिरसा गेट' नाम देकर बिरसा मुंडा को श्रद्धांजलि दी गई। उसके बाद उनके जीवन की घटनाओं को कहानियों के रूप में प्रकाशित किया गया। बिरसा मुंडा द्वारा चलाए गए जन - जागृति अभियान का प्रभाव उस समय देखने को मिला, जब कई आदिवासियों ने मिलकर 'किसान सभा' का गठन किया। इसके बाद इसी किसान सभा ने बड़े उत्साह के साथ स्वतंत्रता संग्राम में भी भाग लिया। बिरसा मुंडा के अनेक समर्थक, जो बिरसा मुंडा को भगवान मानते थे, बाद में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए और गांधी जी से प्रभावित होकर उनके साथ मिल गए। बिरसा मुंडा के आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें लोग सहज रूप से शामिल हो जाते थे। उनके इस आंदोलन में स्त्रियों ने भी बड़ी संख्या में भाग लिया था। उन्होंने पुलिस की गोली झेलते हुए मौत को गले लगा लिया। आंदोलन में स्त्रियों की इस भागीदारी से अंग्रेज सरकार परेशान हो गई थी। बिरसा मुंडा एक ऐसे स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष का संचालन किया और शहीद हो गए।⁷

निष्कर्ष -

इस तरह बिरसा मुंडा आदिवासी पोषक, स्वतंत्रता संग्राम के प्रबंधक, जनजाति समाज सुधारक, मुंडा संगठन के प्रवर्तक थे। बिरसा मुंडा ने न सिर्फ आदिवासी जनजातियों के बीच व्याप्त सामाजिक बुराइयों को दूर किया बल्कि भारत की आजादी के लिए भी संघर्ष किए। उन्होंने ब्रिटिशों को अपने क्षेत्र से बाहर करने का भरकस प्रयास किया। बिरसा के प्रयासों से ही मुंडाओं को अपने अधिकारों की प्राप्ति संभव हो सकी। आदिवासियों के अधिकार तथा सुरक्षा और अंग्रेजों के खिलाफ हुए संघर्ष में वे अपनी आखिरी सांस तक लड़ते रहे। इसी विद्रोह से सबक लेकर ब्रिटिश सरकार ने छोटा नागपुर में भूमि कानून तथा प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन कर आदिवासियों की स्थिति में सुधार करना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु के बाद 'छोटा नागपुर काश्तकारी कानून 1908' बना। बिरसा मुंडा एक स्वतंत्रता सेनानी ही नहीं बल्कि एक समाज सुधारक भी थे, जिनका प्रभाव झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बिहार, राजस्थान आदि जैसे राज्यों में भी था। बिरसा मुंडा के मुंडा विद्रोह से ही प्रेरित होकर बाद में अन्य कई विद्रोह हुए। बिरसा मुंडा न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए बल्कि सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के लिए भी लड़े। उन्होंने अंग्रेजों से लगान माफी के लिए आंदोलन चलाया था। साथ ही किसानों के साथ

हो रहे अत्याचार को रोकने का भी प्रयास किया। आदिवासी जनजातियों को एकता के सूत्र में बांधने तथा उनके अंधविश्वासों को रोकने का प्रयास किया। बिरसा मुंडा आज़ादी की लड़ाई में योगदान देने के साथ ही उन्होंने आदिवासी समुदाय के उत्थान के लिए अनेकों कार्य किए। धरती और जंगलों पर आदिवासियों के अधिकार वापसी के प्रयासों के कारण वे धरती आबा (धरती पिता) के नाम से जाने गए। उन्होंने धर्मांतरण करने वाले ईसाई मिशनरियों का विरोध किया। इस प्रकार जननायक बिरसा मुंडा अपनी धरती देश तथा समाज के लिए शहीद होकर अमर हो गए।

संदर्भ - ग्रंथ सूची -

1. महाश्वेता देवी, 'जंगल के दावेदार', पृष्ठ संख्या - 7
2. डॉ. जीवन एस. रजक, 'पुण्य प्रवाह (राष्ट्र, धर्म और संस्कृति विमर्श)
3. एन. सी. ई. आर. टी. , 'हमारे अतीत - III', पृष्ठ संख्या - 47
4. ओम प्रकाश प्रसाद, 'बिहार एक ऐतिहासिक अध्ययन', पृष्ठ संख्या - 499
5. प्रो. श्री प्रकाश मणि त्रिपाठी, 'आज़ादी के अरण्य सेनानी'
6. तेजपाल सिंह धामा, 'दस गुमनाम क्रांतिकारी', पृष्ठ संख्या - 110 -111
7. ऋषि राज, 'भारत के महान स्वतंत्रता सेनानी', पृष्ठ संख्या - 143



राजा राममोहन राय:— सामाजिक सशक्तिकरण एवं महान विभूतियाँ

अंजली गुप्ता, शोधार्थी, समाज शास्त्र विभाग,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वद्यालय रीवा मध्यप्रदेश

प्रस्तावना —

राजाराममोहनराय को आधुनिक भारत का पहला प्रमुख समाज सुधारक और भारतीय पुनर्जागरण का पिता कहा जाता है। उन्हें देश में सती प्रथा और बाल विवाह को खत्म करवाने के लिए उनके विशेष योगदान के लिए जाना जाता है। वे ब्रह्म समाज के संस्थापक, भारतीय भाषायी प्रेस के प्रवर्तक, जनजागरण और समाजिक सुधार आंदोलन के प्रणेता तथा बंगाल में नवजागरण युग के पितामह थे।

भारतीय बंगाली धार्मिक समाजिक, और शैक्षणिक सुधारक :-

राजाराममोहनराय ने सबसे पहले (आत्मीय सभा) की स्थापना की थी। इनको भारत का प्रथम आधुनिक पुरुष माना जाता है। बाल विवाह, सती प्रथा, जातिवाद, कर्मकांड पर्दाप्रथा आदि का उन्होंने भरपूर विरोध किया धर्म प्रचार के क्षेत्र में अलेक्जेंडर डफ्फ ने काफी सहायता की। देवेन्द्र नाथ टैगोर उनके सबसे प्रमुख अनुयायी थे।

आधुनिक भारत के निर्माता, सबसे बड़ी सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों के संस्थापक, ब्रह्म समाज, राजाराममोहनराय सती प्रणाली जैसी सामाजिक बुराइयों के उन्मुलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आधुनिक चिकित्सा प्रौद्योगिकी और विज्ञान के अध्ययन को लोकप्रिय और समाज में विभिन्न बदलाव की वकालत की। यह कारण है कि वह “मुगल सम्राट राजा” के रूप में भेजा गया था। राजा राममोहनराय ने मूर्ति पूजा और हिंदू धर्म के रुढ़िवादी कर्मकांडो का विरोध किया। उन्होंने वैज्ञानिक सोच का समर्थन न किया। उनका कथन था कि— “ईश्वर केवल एक है, उसका कोई अंत नहीं, सभी जीवित वस्तुओं में परमात्मा का अस्तित्व है।

पत्रकारिता :- राजाराममोहनराय ने ‘ब्रह्ममैत्रिकल मैग्जीन’, ‘संवाद कौमुदी 1821’, मिरात-उल-अखबार 1822., किया।

बंगदूत एक अनोखा पत्र था। इसमें बांग्ला, हिन्दी और फारसी भाषा का प्रयोग एक साथ किया जाता था।

विचारधारा :-

राजाराममोहनराय एक अथक समाज सुधारक थे, जिन्होंने भारत में प्रबोधन और उदार सुधारवादी आधुनिकीकरण के युग का उद्घाटन किया। यह पश्चिमी आधुनिक विचारों से बहुत प्रभावित थे और बुद्धिवाद तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देते थे।

राजा राममोहनराय की तात्कालिक समस्या उनके मूल निवास बंगाल के धार्मिक व समाजिक पतन की थी। यह इस्लामिक एकेश्वर के प्रति आकर्षित थे। उन्होंने कहा कि एकेश्वरवाद भी वेदांत का मूल संदेश है। इनका

मानना था कि जब तक महिलाओं को अशिक्षा, बाल विवाह, सतीप्रथा जैसे अमानवीय रूपों से मुक्त नहीं किया जाता, तबतक हिंदु समाज प्रगति नहीं कर सकता।

समाजसुधार :-

राजा राममोहनराय ने सुधारवादी धार्मिक संघों की कल्पना समाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के उपकरणों के रूप में की थी। उन्होंने वर्ष 1815 में आत्मीय सभा, वर्ष 1821 में कलकत्ता यूनिटेरियन एसोसिएशन और वर्ष 1828 में ब्रह्म सभा (जो बाद में ब्रह्म समाज बन गया) की स्थापना की।

जातिव्यवस्था, छुआछूत, अंधविश्वास और नशीली दवाओं के इस्तेमाल के विरुद्ध अभियान चलाया। वह महिलाओं की स्वतंत्रता और विशेष रूप से सती एवं विधवा पुनर्विवाह के उन्मूलन पर अग्रणी विचार के लिए जाने जाते हैं। बालविवाह महिलाओं की अशिक्षा व विधवाओं की तथा महिलाओं के लिए विरासत व संपत्ति के अधिकार की भी मांग की थी।

वर्ष 1814 में उन्होंने मूर्ति पूजा, जातिगत कठोरता, निरर्थक अनुष्ठानों और अन्य समाजिक बुराइयों का विरोध करने के लिए कलकत्ता में 'आत्मीय सभा' की स्थापना की थी। वर्ष 1825 में उन्होंने वेदांत कॉलेज की स्थापना की जहाँ भारतीय शिक्षण और भौतिक विज्ञान दोनों पाठ्यक्रमों को पढाया जाता था। लेखन और अन्य गतिविधियों के माध्यम से उन्होंने भारत में स्वतंत्र प्रेस के लिए आंदोलन का समर्थन किया।

राजा राममोहनराय के साहित्यिक कार्य :-

- 1) तुहफत—उल—मुबाहिदीन (1804)
- 2) वेदांत गाथा (1815)
- 3) वेदांत सार के संक्षिप्तीकरण का अनुवाद (1816)
- 4) केनोपनिषद (1816)
- 5) ईशोपनिषद (1816)
- 6) कठोरपनिषद (1817)
- 7) मुंडक उपनिषद (1819)
- 8) हिन्दू धर्म की रक्षा (1820)
- 9) द प्रिसेप्ट्स ऑफ जीसस द गाइड टू पीस एंड हैप्पीनेस (1820)
- 10) बंगाली व्याकरण (1826)
- 11) द यूनिवर्सल रिलीजन (1829)
- 12) भारतीय दर्शन का इतिहास (1829)
- 13) गौडीय व्याकरण (1833)

राजाराममोहनराय को भारतीय समाज सुधारक ब्रह्मसमाज (पहले भारतीय समाजिक—धार्मिक सुधार आंदोलनो में से एक) के संस्थापक के रूप में माना जाता है। उन्होंने लैंगिक समानता का समाज में समर्थन किया। हिन्दू कॉलेज की स्थापना में सहायता दी। यह संस्था उन दिनों की सर्वाधिक आधुनिक संस्था थी।

अप्रैल 1822 ई. में राजा राममोहनराय ने फारसी भाषा में एक साप्ताहिक अखबार 'मिरात—उल—अखबार' नाम से शुरु किया, जो भारत में पहला फारसी अखबार था। उन्होंने एक स्वयं का बंगाली पत्रिका 'सम्वाद—कौमुदी' आरम्भ की और उसका सम्पादन भी किया।

मुख्य लेख :- राजाराममोहनराय के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी सती प्रथा का निवारण। उन्होंने ही अथक प्रयासों से सरकार द्वारा इस कुप्रथा को गैर—कानूनी दण्डनीय घोषित कर दिया गया।

राजा राममोहनराय के जीवन के उन पहलुओ पर ध्यान दिया गया है जो हम सबके लिए एक आदर्श के रूप में स्थापित हो सकते है। उनका जीवन हमारे समाज के उत्थान के लिए समर्पित रहा है और उन्होंने एक सशक्त आधुनिक समाज बनाकर हमें एक विरासत प्रदान की है।

निष्कर्ष :-

रॉय के अनुसार, वह एक नए भारतीय समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ सहिष्णुता सहानुभुति, तर्क, स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व के सिद्धांतों का सम्मान किया जाएगा। उनका मानना था कि शैक्षणिक प्रणाली पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणाली बेहतर है। राजा राममोहनराय ब्रह्म सभा के नेताओं में से एक थे। ब्रह्म समाज एक भारतीय उपमहाद्वीप समाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन प्रमुख था। 22 मई 2022 में उनकी 250वीं जयंती मनायी गयी है।

राजाराममोहनराय के कुछ कोटस प्रमुख थे -

- 1) अंधविश्वास से बाहर निकलो, आत्मा की शुद्धता में ही सच्चा धर्म है।
- 2) शिक्षा ही समाजिक बदलाव का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है।
- 3) हिन्दी में अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है।

संदर्भसूची :-

1. डॉ. कविता वाचकनवी, 'राजा राममोहनराय पुण्य तिथि' (हिंदी) फेसबुक। अभिगमन तिथि : 30 सितम्बर, 2013।
2. के. सी. दत्त, 'राजा राममोहनराय (जीवन और दर्शन)', प्रकाशन: लोकभारती प्रकाशन, वर्ष 2010।
3. रामप्रकाश सिंह पवैया, 'राजा राममोहन राय भारतीय समाज सुधारक' वर्ष. 27 मई 2023।
4. डॉ. अजय कुमार श्रीवास्तव, 'राजा राम मोहनराय और समाजिक परिवर्तन', प्रकाशन : कला प्रकाशन, वर्ष. 2006
5. समाज सुधारक राजा राममोहनराय, प्रकाशन : प्रभात प्रकाशन, वर्ष 1, 2019।
6. डॉ. कमलेश सकवार, 'राजा राममोहनराय जीवन और दर्शन', प्रकाशन पंचशील प्रकाशन जयपुर राजस्थान।
7. डॉ. निधि विनोद, 'राजा राममोहनरायराय समाज सुधारक एवं स्वतंत्रता सेनानी', प्रकाशन : पी. एम. पब्लिकेशन।
8. आर. पी. एच. एडिटोरियल बोर्ड, 'राजा राम मोहनराय समाज सुधारक एवं आधुनिक भारत के जीवनी', प्रकाशन: रमेश पब्लिशिंग हाउस, वर्ष 1 जनवरी 2018।



दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक दर्शन

ज्योत्सना भट्ट शोध छात्रा (इतिहास विभाग),

डॉ. नीरज रूवाली डी.लिट् इतिहास विभाग,

एम.बी.जी.पी.जी कॉलेज, हल्द्वानी, नैनीताल

प्रस्तावना :-

20 वीं सदी के मध्योपरान्त 25 सितम्बर 1916 राजस्थान प्रान्त के एक ब्राह्मण परिवार में दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म हुआ था। इनके बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी की शिक्षा-दीक्षा उनके नाना व मामा के सहयोग से पूर्ण हुई थी। हाईस्कूल के बाद उनकी सम्पूर्ण शिक्षा छात्रवृत्ति के माध्यम से पूर्ण हुई थी। पंडित दीनदयाल जी अपने शैक्षणिक समय में ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़ गए थे। दीनदयाल उपाध्याय जी जनसंघ के अध्यक्ष पद से सुशोभित हुए थे। 11 फरवरी 1968 को इस महान विभूति का देहावसान हो गया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी एक महान दार्शनिक, समाजवादी, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे। ये राष्ट्र हित को सर्वोपरि मानते थे। इनका सम्पूर्ण जीवन प्रेरणादायक, निष्कलंक तथा अनुशासित था। इनका मानना था कि जब राष्ट्रीय संकट की घड़ी होती है उस समय प्रत्येक व्यक्ति को वैयक्तिक हित से आगे बढ़कर राष्ट्र के लिए एकजुट हो जाना चाहिए। दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि राजनीति राष्ट्र के हित के लिए होनी चाहिए। उनका विचार था कि सत्ता उसके हाथों में जानी चाहिए, जो राजनीति का उपयोग राष्ट्र-नीति के लिए कर सके।¹ इनके विचार में राजनीति में केवल भारत का ही कल्याण न होकर सम्पूर्ण विश्व का कल्याण था। इनका मानना था कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी संस्कृति एवं मूल्य के आधार पर ही समस्या का निदान करना चाहिए। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी समाजसेवी, देशप्रेमी एवं राष्ट्र के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित व्यक्ति थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक चिंतन :-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का भारत की राजनीति में विशेष महत्व रहा है। वे राष्ट्र को परमेश्वर के रूप में मानते थे। राष्ट्र भक्ति इनमें कूट-कूट कर भरी थी। वे राष्ट्र के प्रति समर्पित होने के लिए अपने सहयोगियों एवं अनुयायियों को भी प्रेरित किया करते थे। राजनीति के क्षेत्र में इनका व्यक्तित्व असामान्य था। वे जन्मजात प्रतिभासंपन्न मूलगामी चिंतक थे। उनका मानना था कि मनुष्य को अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए विचार न करके संपूर्ण विश्व के ऊपर विचार विमर्श करना चाहिए। वे कहते थे राष्ट्र एकता, अखंडता व सुरक्षा की दृष्टि से सशक्त होना चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र को राजनीतिक इकाई ना मानकर सांस्कृतिक इकाई मानते थे। वे राजनीतिक रूप से राष्ट्रीय अखंडता के समर्थक थे। वे अखंड भारत के समर्थक थे।

दीनदयाल उपाध्याय जी कहते थे भारत केवल एक क्षेत्रफल ना होकर हमारी मां समान है। वे भारत को एक हिंदू राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। पंडित दीनदयाल ने जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किया उस समय देश संकटकालीन अवस्था से गुजर रहा था। वे भारतीय राजनीति में विपक्ष के सबसे बड़े नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए थे। "उन्होंने राष्ट्रहित और राष्ट्र विकास को सर्वोपरि मानते हुए भौतिक सुख सुविधा, पद, परिवार एवं मित्रता का परित्याग कर दिया एवं अपना संपूर्ण जीवन राष्ट्र के नाम समर्पित कर दिया"² तत्कालीन समय में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास किया। वे भारत के प्रकृति और परंपरा के अनुसार राजनीतिक दर्शन के विकास के पक्षधर थे। वे सदैव मजहबी एवं राजनीतिक साम्राज्यवाद के खिलाफ रहे 15 अगस्त 1947 ई0 को प्राप्त स्वतंत्रता के विषय में कहते थे "कोई कुछ भी कहे, आज देश में व्याप्त अधिकाधिक अधिकार प्राप्ति की प्रवृत्ति और

स्वतंत्रता से कुछ लूट मचाने की इच्छा दिखती है। हमारी स्वतंत्रता जनसाधारण के पुरुषार्थ और पराक्रम से प्राप्त न होने के कारण ही ऐसा है। इसलिए हममें कर्म चेतना तथा देश के निर्माण हेतु परिश्रम की भावना नहीं है।³ पंडित दीनदयाल जी कहते थे भारत विगत कई वर्षों से आक्रमणों के दौर से गुजरा है। उसके बावजूद भारत अपनी संस्कृति के आधार को बचाए रखने में कायम रहा है।

भारतीय राजनीति में लोकतंत्र :-

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद लोकतंत्र की स्थापना हुई थी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि लोकतंत्र भारत का जन्मसिद्ध अधिकार है। उन्होंने इस बात पर सदैव जोर दिया कि कर्मचारियों एवं श्रमिकों को हो रही परेशानी का सरकार को सदैव समाधान करना चाहिए। उनके लोकतांत्रिक आदर्शों के कारण ही उन्हें आम जनमानस के लिए सहानुभूति थी। वे कहते थे “लोकाधिकार की प्रतिष्ठा और लोक कर्तव्य के निर्वाह के लिए लोकतंत्र एक साधन है। केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भी लोकतंत्र चाहिए। वास्तव में जनतंत्र अविभाज्य है। किसी भी एक क्षेत्र में लोकतंत्र का अभाव दूसरे क्षेत्र में लोकतंत्र नहीं पर पनपने देगा। सहिष्णुता व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा समष्टि के साथ एक एकात्मता लोकतंत्र के प्राण हैं। बिना इन भावों के लोकतंत्र का बाहरी स्वरूप निष्प्राण एवं जड़ है। यदि चैतन्य विद्यमान है तो देश काल परिस्थिति से लोकतंत्र के रूप में भेद हो सकता है।”⁴

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का कहना था अपने प्रतिनिधि को चुने जाने का अधिकार ही लोकतंत्र में राजनीति का प्रमुख लक्षण है। वह भारत में एक ऐसे लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे जिसमें जनसाधारण का हित निहित हो। प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान तथा सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हो। वे कहते थे लोगों के अधिकारों को बनाए रखना तथा लोक कर्तव्य का पालन करना लोकतंत्र का एक प्रमुख साधन है। सहिष्णुता समानता एकात्मता तथा भ्रातृत्व की भावना ही लोकतंत्र के प्राण हैं। वे लोकतंत्र को केवल राजनैतिक तक सीमित न मानकर उसे आर्थिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र के रूप में भी स्वीकार करते थे। आर्थिक लोकतंत्र के लिए उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय एवं उपभोग के समान अवसरों की प्राप्ति हो तथा सामाजिक लोकतंत्र के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अवसर की समानता प्राप्त हो।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र की केवल बात ही नहीं करते थे बल्कि वे अपने व्यवहार में भी लोकतंत्र का पालन करते थे। वे प्रत्येक विषय पर आम ‘जनमानस’ का क्या मत है सदैव इसको जानने का प्रयास करते थे। वह पार्टी के अंदर भी इस पद्धति का पालन करने का पूरा प्रयास करते थे। “श्रेष्ठ लोकतंत्र में सरकार और विपक्ष के बीच संघर्ष नहीं संवाद और आपसी समाज का विकास होना चाहिए। देश के सामने आपात मुश्किल के समय बड़ी आपदा अथवा युद्ध के समय और राष्ट्रीय हित के मुद्दों पर विपक्ष को सरकार का समर्थन और सहयोग करना चाहिए इसलिए दीनदयाल उपाध्याय ने 1962 के युद्ध के समय उत्तर प्रदेश में चल रहे किसान आंदोलन को स्थगित कर दिया और सरकार को अपने पूर्ण समर्थन की घोषणा की। वे राजनीति में नैतिकता को स्थापित करना चाहते थे।”⁵

उन्होंने इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में दोष भी देखे थे। जब तक लोगों के मतों में भिन्नता होती है, तब तक हमें उनमें सामंजस्य बिठाने की आवश्यकता होती है। बहुमत का अर्थ यह नहीं होता है कि अल्पमत की आवाज को दबाकर उसकी अवहेलना की जाए। किसी भी योजना को बनाने से पूर्व उसमें प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं का समावेश करना चाहिए। वे लोकतंत्र का भारतीयकरण करना चाहते थे। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लोकतंत्र की आवश्यकता को महसूस किया था। वे व्यक्ति से अधिक दल को तथा दल से अधिक सिद्धांत तथा सिद्धांत से अधिक लोकतंत्र एवं लोकतंत्र से अधिक राष्ट्र को महत्व देने के पैरोकार थे।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के राष्ट्रभाषा के संबंध में विचार :-

भारतीय संविधान से संबंधित कुछ ऐसे मुद्दे थे जिन पर उन्होंने इन्होंने मुखरता से अपने विचार रखे थे। राष्ट्रभाषा, राजभाषा उनमें से ही एक प्रमुख मुद्दा था। राजभाषा के लिए संविधान में किए गए प्रावधानों से वे असमत थे। इस संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी लिखते हैं “स्पष्ट था कि शासन के सभी क्षेत्रों में अभी अंग्रेजी आबाद रूप से चलती रहेगी। उसके प्रयोग को प्रतिबंधित करने का वाला कोई आदेश नहीं दिया गया। कहा जा सकता है कि जब शासन तैयार ही नहीं, तो उसको रोकने वाला कोई आदेश देकर शासन के काम को ठप कर देना व्यावहारिक नहीं होता किंतु ऐसे क्षेत्र आवश्यक हैं जहां हमारे राष्ट्र के स्वतंत्रता अस्तित्व एवं हमारे सम्मान का तकाजा है कि हम अंग्रेजी को छोड़कर अपनी राजभाषा का प्रयोग करें।”⁶

उनका मानना था राजभाषा राष्ट्र के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसलिए वे शासन प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में राजभाषा के प्रयोग के पक्ष में थे। वे मानते थे भारत की सभी भाषाएँ राष्ट्र भाषाएँ हैं उन सभी को विकसित करने के लिए प्रयास करना चाहिए। प्रांत की भाषाओं के विकास का भी सदैव प्रयास करना चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी अंग्रेजी की वकालत करने वालों से अक्सर कहा करते थे आप लोगों को लगता है की अंग्रेजी के एक राष्ट्रीय भाषा बनने से क्षेत्रीय भाषाओं को कोई नुकसान नहीं होगा, परंतु यह सोच सही नहीं है। वह कहते थे ऐसे ही अंग्रेजी भाषा का प्रचार-प्रसार जारी रहा तो भारत की महान भाषाओं के दिन गिने-चुने रह गए हैं। 1967 में हुए जनसंघ के कालीकट के अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था—“देश के कामकाज के लिए अपनी ही भाषाओं का प्रयोग व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय स्वाभिमान दोनों की दृष्टि से आवश्यक है”।⁷

अंग्रेजी को हिंदी की सहयोगी भाषा कहा जाना उनको स्वीकार्य नहीं था। वे सदैव कहा करते थे, यह लड़ाई अंग्रेजों के खिलाफ हिंदी वालों की लड़ाई नहीं है, यह तो भारत के प्रत्येक भाषाओं का सम्मिलित मामला है तथा जो स्थान अंग्रेजी भाषा को मिला हुआ है वह स्थान हिंदी भाषा को मिलना चाहिए। वे भाषा के आधार पर राज्यों की स्थापना के विरोध में थे। जनसंघ के माध्यम से उन्होंने यह मांग की थी कि संघ लोक सेवा आयोग के तहत होने वाली सारी परीक्षाओं का माध्यम हिंदी एवं प्रादेशिक भाषाएँ हो।

राष्ट्रीय अखंडता समर्थक :-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारत की अखंडता एवं एकता के समर्थक थे। वे कहते थे भारत अनेकता में एकता का प्रदर्शन करता है तथा अखंड भारत कोई राजीतिक नारा न होकर संपूर्ण जीवन दर्शन का मूलाधार है। वे सदैव कहा करते थे अगर हमें एकता कायम करनी है तो राष्ट्रीय एकता सांस्कृतिक एकता का अध्ययन एवं चिंतन करना होगा। उन्होंने जनसंघ के माध्यम से प्रथम दिन से ही अखंड भारत की कल्पना की बात की थी। वे कश्मीर आंदोलन के मुद्दे पर विश्लेषण करते हुए तीन बातें कहते थे।

- एक देश में दो विधान—नहीं चलेंगे।
- एक देश में दो प्रधान—नहीं चलेंगे।
- एक देश में दो निशान—नहीं चलेंगे।

भारतीय राजनीति के क्षेत्र में वे एक ऐसे विचारक के रूप में उभरकर सामने आए जिन्होंने राष्ट्र के स्वाभिमान, स्वावलंबन, स्वदेशी तथा अखंड भारत की संकल्पना पर बात की। वे अक्सर कहा करते थे भारत की अखंडता में सबसे बाधक मुस्लिम संप्रदाय की तुष्टिकरण की नीति है। इस तुष्टिकरण की नीति के कारण मुसलमानों का राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल होना कठिन बनता जा रहा है। वे कहते थे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता अखंड भारत का हिस्सा है। वे सदैव से अखंड भारत के हिमायती थे। स्वतंत्र भारत को अखंड भारत बनाने वाली बुलंद आवाज बनाने वालों में उनका नाम सर्वप्रमुख था। उन्होंने अखंड भारत की प्रेरणा से प्रेरित होकर अखंड भारत क्यों? नामक पुस्तिका लिखी थी। “दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का परिचायक ना होकर जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का घटक है जो अनेकता में एकता का दर्शन करता है। अतः हमारे लिए अखंड भारत का कोई राजनीतिक नारा नहीं है बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण जीवन दर्शन का मूलाधार है।”⁸

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं पंडित दीनदयाल उपाध्याय :-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपने विद्यार्थी जीवन में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए थे। दीनदयाल उपाध्याय जी की सन् 1937 में कानपुर में संघ संचालक डॉ० हेडगेवार से भेंट हुई थी। वे अपने विद्यार्थी जीवन के बाद संघ के प्रचारक बन गए। उपाध्याय जी ने देश सेवा के लिए संघ के माध्यम से अपने आप को समर्पित कर दिया। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से राष्ट्र की जनता में चेतना जागृत करने का अथक प्रयास किया। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से भारत की राजधानी में भारत की मूल संस्कृति को जोड़ने का प्रयास किया। संघ के मंच से भारत की स्वतंत्रता पर एक बार उन्होंने कहा था “स्वतंत्र होने के बाद हम चौराहे पर खड़े हैं। हमारे सामने आज दो आदर्श हैं एक की रचना हमारे ऋषि विचारकों ने अपनी बलि देकर की है। इस रचना के पीछे इतिहास है, अनुभव है, प्रकृति है। दूसरा पाठ सत्य आदर्श हमारे 250 वर्ष की लंबी दासता का प्रतीक है। उसे बलपूर्वक पश्चिम के द्वारा हमारे ऊपर लादा गया है यह हमारी आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं, अभिव्यक्ति में रोड़ा है। हम मानसिक दासता की नहीं, स्वतंत्रता की स्थापना करें और भारतवर्ष को भारतवर्ष ही रहने दें।”⁹

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के नेता के रूप में :-

दीनदयाल उपाध्याय जी का भारत की मुख्य धारा की राजनीति में जनसंघ के माध्यम से पदार्पण हुआ। विभाजन के कारण उत्पन्न हुए तनाव व शरणार्थी संकट की समस्या से उबरने के लिए अक्टूबर 1951 को दिल्ली में अखिल भारतीय जन संघ की स्थापना हुई थी। जनसंघ के माध्यम से पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने उस समय के राष्ट्रवादी वातावरण के लोकप्रिय विषय, कश्मीर, पूर्व बंगाल, हैदराबाद, दिल्ली इन पर प्रमुखता से बात की थी। दीनदयाल उपाध्याय जी की राजनीतिक चाल सीधी थी। राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी सरकार को कठिनाई में डालकर अपने दल का स्वार्थ साधना उनकी राजनीति में नहीं बैठता था। इसलिए उन्होंने इस संकट की घड़ी में तुरंत अपने किसान आंदोलन को बिना किसी शर्त स्थगित कर दिया।¹⁰ उनका मानना था कि भारतीय राजनीति में जनसंघ केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए स्थापित दल नहीं है, बल्कि यह भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के साथ ही राष्ट्रीय जीवन में युग परिवर्तन के लिए निर्मित राजनीतिक दल था। दीनदयाल उपाध्याय जी कहते हैं "जनसंघ मूलतः संस्कृतिवादी है। संस्कृति की आधारशिला पर हमारा आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक चिंतन खड़ा है।"¹¹ उन्होंने जनसंघ के माध्यम से राष्ट्रीयता के ज्वलंत मुद्दों को उठाया था। जनसंख्या के माध्यम से पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने लोगों को राष्ट्रभक्ति के लिए प्रेरित, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा का भाव रखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने एकात्म मानववाद की भावना का आम जनमानस में प्रचार-प्रसार किया।

निष्कर्ष :-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी सदैव सत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीति के नहीं वरन् राजनीति को भारतीय लोकतंत्र को संस्कृति से मिलान के महत्वाकांक्षी थे। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य राष्ट्र का सर्वतोन्मुखी विकास करना था। उनका सदैव से कहना था कि राष्ट्र के प्रति हमारे विशेष कर्तव्य हैं तथा अनेकता में एकता ही भारतीय दर्शन एवं चिंतन की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने कहा कि संगठन का आधार राष्ट्रवाद है। संगठन में शक्ति के माध्यम से विश्व में कुछ भी कार्य किया जा सकता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने नेतृत्व क्षमता से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं जनसंघ के विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने एक बार कहा था "यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाए तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।" इनकी राजनीति का मुख्य उद्देश्य था कि भारत में राष्ट्रीय शक्तियों और राष्ट्रवाद को प्रबल करके समस्याओं का स्वदेशी तरीके से समाधान किया जा सके। पंडित जी ने विकसित राष्ट्र की कल्पना की थी। भारत में लोकतंत्र किस प्रकार का होना चाहिए तथा इन्होंने राष्ट्रभाषा के मुद्दे पर महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन समाज और राष्ट्र को समर्पित कर दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उपाध्याय, दीनदयाल. "विचार दर्शन". राजनीतिक राष्ट्र के लिए।
2. पांडे, अरुणकांत. "एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय". स्वराज पब्लिकेशन. गाजियाबाद. उत्तर प्रदेश. 2018. पृष्ठ संख्या- 82।
3. पांजचजन्य, आश्विन कृष्ण 2. 2007. (28 सितंबर 1950)।
4. गौड़, जी. एल. "ग्राम प्रशासन का विकेंद्रीकरण : एक मूल्यांकन". कुरुक्षेत्र. नवंबर. 1993. पृष्ठ संख्या-17।
5. मालवीय, चिंतामणि. "पंडित दीनदयाल उपाध्याय : दर्शन और दार्शनिक". मध्य प्रदेश. हिंदी ग्रंथ अकादमी. भोपाल. 2018. पृष्ठ संख्या- 171।
6. उपाध्याय, दीनदयाल. "राष्ट्रीय चिंतन". लोकहित प्रकाशन. लखनऊ. 2014. पृष्ठ संख्या-23।
7. देवधर, विश्वनारायण. "पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-7, व्यक्ति दर्शन". सुरुचि प्रकाशन. नई दिल्ली कृ० 2014 पृष्ठ संख्या-111।
8. उपाध्याय, दीनदयाल. "राष्ट्रीय चिंतन (6) अखंड भारत : साध्य और साधन". राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन. लखनऊ. पृष्ठ संख्या-33।
9. नागरिक समाज के मंच पर 10 जुलाई 1949 को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संयुक्त प्रांत के सह-प्रचारक दीनदयाल उपाध्याय का भाषण. पांजचजन्य. 2006. पृष्ठ संख्या- 13।
10. उपाध्याय, दीनदयाल. "विचार दर्शन". राजनीति राष्ट्र के लिए।
11. उपाध्याय, दीनदयाल. "अखंड भारत क्यों" पृष्ठ संख्या- 31।



राजा राम मोहन राय : भारतीय ज्ञानोदय के जनक प्रीति भारती, लक्ष्मी बाई कॉलेज, दिल्ली

प्रस्तावना :-

आधुनिक भारत के पुनर्जागरण के जनक राजा राम मोहन राय एक महान समाज सुधारक थे। भारत में, उन्हें ज्ञानोदय और उदारवादी परिवर्तन द्वारा चिह्नित एक नए युग की शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता है। 19वीं शताब्दी में भारत के विकास में उनके द्वारा किए गए महत्वपूर्ण योगदान के कारण उन्हें अक्सर आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण के जनक के रूप में संदर्भित किया जाता है। भारतीय संस्कृति का हर पहलू इन विकासों से समृद्ध है। हालाँकि, राजा राम मोहन राय के समय में बहुत कम लोगों को नए युग के महत्व की स्पष्ट समझ थी। अलगाव में स्वतंत्रता के बजाय लोगों और राष्ट्रों के बीच परस्पर निर्भरता मानव सभ्यता का उद्देश्य होना चाहिए, और यह व्यक्तियों के साथ-साथ राष्ट्रों पर भी लागू होना चाहिए। सहानुभूतिपूर्ण सहयोग की भावना में, उनका उद्देश्य भारतीयों को उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान के लिए पूरी तरह से जागृत करना और अपनी सभ्यता और संस्कृति का उत्थान करना था इस लेख में, हमने राजा राम मोहन राय के प्रभावशाली जीवन के साथ-साथ समाज में उनके योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

प्रारंभिक जीवन :-

राजाराम मोहन राय का जन्म 22 मई 1772 को पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के राधानगर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता, रामकांत राय, एक कट्टर वैदिक हिंदू थे, जबकि उनकी माता, तारिणी देवी, धार्मिक और परंपरागत थीं। इस धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने राजा राम मोहन राय के विचारों पर गहरा प्रभाव डाला।¹ उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही शुरू हुई, जहाँ उन्होंने संस्कृत और फारसी का अध्ययन किया। बाद में वे पटना गए, जहाँ उन्होंने अरबी और इस्लामी साहित्य का अध्ययन किया। इसके बाद वे बनारस गए, जहाँ उन्होंने वेद, उपनिषद और अन्य हिंदू धर्मग्रंथों का अध्ययन किया।² उनके विविध शिक्षा स्रोतों ने उनके विचारों को व्यापक बनाया और उन्हें धर्म, समाज और संस्कृति की गहरी समझ प्रदान की। राजाराम मोहन राय का प्रारंभिक जीवन धार्मिक और दार्शनिक विचारों की खोज से भरा हुआ था। उन्होंने हिंदू धर्म की कई प्रथाओं, विशेष रूप से मूर्ति पूजा और अंधविश्वासों का विरोध किया। इसी समय, उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्मों का भी अध्ययन किया और उनमें से जो मानवीय और तार्किक सिद्धांत उन्हें उचित लगे, उन्हें स्वीकार किया। इस प्रकार, राजाराम मोहन राय के प्रारंभिक जीवन ने उन्हें सामाजिक सुधारों और धार्मिक सुधारों की दिशा में प्रेरित किया, जो आगे चलकर उनके जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों का आधार बने।

महिलाओं की मुक्ति/सती प्रथा का अंत :-

राजा राम मोहन महिलाओं की मुक्ति और खास तौर पर सती प्रथा या विधवा-दहन के उन्मूलन पर अपने अग्रणी विचार और कार्रवाई के लिए जाने जाते हैं। डेविड कोपफ के शब्दों में कहें तो उन्होंने बंगाली हिंदू महिलाओं को अशिक्षित और अनपढ़, संपत्ति के अधिकार से वंचित, बाल विवाह, पर्दा प्रथा में कैद और विधवा होने पर सती नामक बर्बर प्रथा के तहत हत्या करते हुए पाया।³ राजा राम मोहन का मानना था कि जब तक महिलाओं को इस तरह के अमानवीय उत्पीड़न से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक हिंदू समाज प्रगति नहीं कर सकता। उन्होंने सती प्रथा को हर मानवीय और सामाजिक भावना

का उल्लंघन और एक जाति के नैतिक पतन का लक्षण बताया। जिस तरह उन्होंने प्रायश्चित्त के रूढ़िवादी ईसाई सिद्धांत का विरोध किया, उसी तरह उन्होंने इस सिद्धांत को भी खारिज कर दिया कि पत्नी अपने पति के पापों का प्रायश्चित्त कर सकती है या उसे करना पड़ता है। उन्होंने पवित्र ग्रंथों का हवाला देते हुए यह भी दिखाया कि वे पत्नी को उसके पति की मृत्यु के बाद भी अपना जीवन जारी रखने की अनुमति देते हैं।⁴ राजा राममोहन राय के अभियान के परिणामस्वरूप, 1829 में लॉर्ड बेंटिक द्वारा सती प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

राजा राममोहन राय द्वारा सती के संबंध में तीन महत्वपूर्ण बिंदु अपने निबंध द एब्सट्रेक्ट ऑफ द आरग्यूमेंट्स रिगार्डिंग द बर्निंग ऑफ विडोज कंसीडर्ड एज रिलिजियस राइट, जिसे 1830 में जारी किया गया था,⁵ राजा राममोहन राय ने मुख्य रूप से सती के खिलाफ तीन प्रमुख बिन्दुओं को समूहीकृत किया—

1. अनिवार्य नहीं, लेकिन अधिक से अधिक वैकल्पिक।
2. सबसे प्रशंसनीय नहीं, लेकिन सबसे कम पुण्य कार्य जो एक विधवा कर सकती है
3. चिता पर चढ़ना और आग में प्रवेश स्वैच्छिक होना चाहिए— एक ऐसी विधा जिसका अभ्यास पारंपरिक सती प्रथा में कभी नहीं किया जाता था।

महिलाओं के संपत्ति अधिकार :-

राममोहन राय ने महिलाओं-बेटियों, माताओं और विधवाओं के संपत्ति अधिकारों पर विस्तार से लिखा। प्राचीन कानूनविदों का सहारा लेते हुए उन्होंने यह साबित करने की कोशिश की कि उन्हें दयाभाग और मिताक्षरा जैसे कानूनी ग्रंथों द्वारा संपत्तियों में कुछ अधिकार दिए गए थे। दयाभाग के तहत, महिलाओं को विरासत के अधिकार मिलने की अधिक संभावना है। इस मुद्दे का सबसे पहला संदर्भ 1822 का है, “ब्रिफ रिमार्कस रिगार्डिंग मार्डन एनक्रोचमेंट्स आन द एंशिअंट राइट्स ऑफ फीमेलस” नामक एक निबंध में जिसमें उन्होंने पहली बार महिलाओं की विरासत के लिए एक जोरदार दलील दी थी।⁶ यद्यपि प्राचीन विधिकारों ने पुत्रों को आवंटित अंश का एक चौथाई भाग बेटियों को प्रदान किया था, लेकिन दयाभाग के आधुनिक टीकाकारों ने पुत्रियों के इस अधिकार को अलग रखा। उन्होंने बेटियों के पिता की संपत्ति में किसी भी हिस्से को मान्यता नहीं दी, और केवल उनकी शादी के खर्चों को मान्यता दी। बेटों के उत्तराधिकार के अधिकार के अलावा, उन्होंने वैवाहिक परिवार में महिलाओं के संपत्ति के अधिकार के सवाल पर भी विचार किया। सभी प्राचीन कानूनविद सर्वसम्मति से एक मां को अपने मृत पति द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में अपने बेटे के साथ बराबर हिस्सा देते हैं, ताकि वह अपने शेष दिनों को अपने बच्चों से स्वतंत्र रूप से बिता सके। उन्होंने जोर दिया कि महिलाओं को संपत्ति विरासत से वंचित करना प्राथमिक कारण था समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति का और हमारे समाज में बहुविवाह, सती और विधवाओं की दयनीय स्थिति के लिए काफी हद तक जिम्मेदार था। कुछ इतिहासकार राममोहन राय के सुधार विचारों में धर्मग्रंथों पर निर्भरता को प्रतिगमन के संकेत के रूप में देखते हैं। लेकिन उनके बचाव में यह कहा जा सकता है कि भले ही उन्होंने परंपराओं का इस्तेमाल किया हो, यह केवल आधुनिक प्रगतिशील आदर्शों की सेवा के लिए था।⁷

जाति व्यवस्था पर राजा राममोहन राय के विचार :-

राममोहन राय ने भारतीय समाज की जाति व्यवस्था का विरोध करते हुए एक निबंध लिखा, क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि समाज की प्रगति के दृष्टिकोण से जाति का कोई अर्थ और महत्व नहीं है, बल्कि इसने हमारी सामान्य विचार शक्ति को अवरुद्ध कर दिया और सबको पीछे खींच लिया। उन्होंने समाज में विभाजन और उपखंडों के अस्तित्व की कड़ी आलोचना की। उनका दृढ़ विश्वास था कि समाज में इतनी सारी जातियों का विभाजन केवल सांप्रदायिक पूर्वाग्रह पैदा करेगा और विदेशियों की अधीनता के लिए जिम्मेदार होगा। समग्र प्रक्रिया राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने में बाधक होगी। उस समय के अपने एक निजी पत्र में, राजा राममोहन राय ने उल्लेख किया था कि बिना किसी सामाजिक महत्व के, धार्मिक संस्कारों और समारोहों की भीड़ ने उनके देशवासियों को किसी भी कठिन उद्यम को करने से पूरी तरह से अयोग्य कर दिया है। जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए और समाज की एक महत्वपूर्ण प्रगति के लिए, राजा राममोहन राय शैव विवाह के पक्ष में थे, जिसे उन्होंने वैदिक विवाहों के समान दर्जा दिया।⁸ उन्होंने इस विवाह को प्राथमिकता दी क्योंकि इसमें उम्र और जाति या नस्ल के भेदभाव को कोई महत्व नहीं दिया गया था। इसके अलावा, वह विवाह विधवाओं पर भी लागू होता था।

राजा राम मोहन का जाति व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण कुछ हद तक दुविधापूर्ण था। हालाँकि उन्होंने जाति के कुछ प्रत्यक्ष नियमों का पालन किया (जैसे, पवित्र धागा पहनना), लेकिन उन्होंने कहा कि ईश्वर जाति का कोई भेद नहीं करता और जातियों में हमारा विभाजन हमारे बीच एकता की कमी का स्रोत रहा है।⁹

आधुनिक पश्चिमी शिक्षा के अग्रदूत :-

राजा राम मोहन आधुनिक पश्चिमी शिक्षा के अग्रदूत थे, जिसके बारे में उनका मानना था कि यह भारतीयों को धार्मिक रूढ़िवादिता के अंधविश्वासों और अन्यायों के खिलाफ जागरूक करेगी। उन्होंने कहा कि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का मात्र अध्ययन देश को अंधकार में ही रखेगा। लॉर्ड एमहर्सट को शिक्षा पर लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र में उन्होंने लिखा "यदि इसका उद्देश्य ब्रिटिश राष्ट्र को वास्तविक ज्ञान से अनभिज्ञ रखना होता, तो बेकनियन दर्शन को स्कूली शिक्षा प्रणाली को विस्थापित करने की अनुमति नहीं दी जाती, जो अज्ञानता को बनाए रखने के लिए सबसे उपयुक्त थी। इसी तरह शिक्षा की संस्कृत प्रणाली इस देश को अंधकार में रखने के लिए सबसे उपयुक्त होती, यदि ब्रिटिश विधानमंडल की नीति ऐसी होती। लेकिन चूंकि सरकार का उद्देश्य देशी आबादी का सुधार है, इसलिए वह गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन विज्ञान, शरीर रचना विज्ञान और अन्य उपयोगी विज्ञानों को शामिल करते हुए शिक्षा की अधिक उदार और प्रबुद्ध प्रणाली को बढ़ावा देगी।"¹⁰ 1816 में राजा राम मोहन ने एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की और कुछ साल बाद उन्होंने हिंदू कॉलेज की स्थापना में सहयोग दिया। 1825 में उन्होंने वेदांत कॉलेज की शुरुआत की, जिसमें पश्चिमी ज्ञान के अध्ययन को भारतीय शिक्षा के साथ जोड़ा गया।

न्यायिक प्रशासन में सुधार :-

न्यायिक प्रशासन में सुधार लाने के लिए, राम मोहन ने आपराधिक और नागरिक कानून के संहिताकरण और भारतीय भाषाओं में दोनों संहिताओं के प्रकाशन की सिफारिश की ताकि समुदाय को देश के कानून से परिचित कराया जा सके। बेंथमाइट शैली में उन्होंने तर्क दिया कि आपराधिक कानून की संहिता अपने सिद्धांतों में सरल, अपनी व्यवस्था में स्पष्ट और अपनी परिभाषाओं में सटीक होनी चाहिए, ताकि इसे अपने आप में आपराधिक न्याय के मानक के रूप में स्थापित किया जा सके।¹¹ राजा राम मोहन राय का ध्यान, हालांकि, पुनर्गठित विश्व व्यवस्था के लिए किसी संगठनात्मक खाके पर नहीं था। बल्कि उनका ध्यान एक अंतरराष्ट्रीय, मानवतावादी संस्कृति को संश्लेषित करने में था। उन्होंने आधुनिक पश्चिमी विचारों के उदार, वैज्ञानिक, विश्व-पुष्टि दृष्टिकोण की सराहना की। लेकिन उन्होंने यहूदी-ईसाई विचारधारा की संघर्षपूर्ण ब्रह्मांड विज्ञान में इसकी नींव की आलोचना की, जो किसी व्यक्ति या प्राणी के पापों के प्रायश्चित के लिए उस पर की गई हिंसा को उचित ठहराती है। उन्होंने अद्वैत-वेदांत के आध्यात्मिक (आंतरिक आत्म और आत्म-शुद्धि) और सामुदायिक मूल्यों की सराहना की। लेकिन उन्होंने इसकी दुनिया को नकारने वाली और आत्म-नकारने वाली मान्यताओं को अस्वीकार कर दिया।

संस्कृतियों और धर्मों की ऐसी आलोचना करके, उन्होंने रूढ़िवादी ब्राह्मणों, ईसाई मिशनरियों और मैकालेवादी शिक्षाविदों के सांस्कृतिक अहंकार को कमजोर कर दिया। इस प्रकार, जैसा कि ब्रजेंद्र नाथ सील ने उल्लेख किया है, उन्होंने सार्वभौमिक मानवता की सामान्य पृष्ठभूमि के विरुद्ध पूर्वी और पश्चिमी सामाजिक मूल्यों और सिद्धांतों के बीच संश्लेषण का मार्ग प्रशस्त किया। दूसरे शब्दों में, उन्होंने "मानव इतिहास में अंतरराष्ट्रीय संस्कृति और सभ्यता की बड़ी समस्या के समाधान का मार्ग दिखाया, और आने वाली मानवता के अग्रदूत एवं पैगम्बर बन गए।"¹² राजा राम मोहन राय को विश्व समाज के अग्रदूत के रूप में सम्मानित करते हुए, रवींद्रनाथ टैगोर ने लिखा: राजा राम मोहन राय ने पूर्वी और पश्चिमी सामाजिक मूल्यों के बीच संश्लेषण का मार्ग प्रशस्त किया और सार्वभौमिक मानवता की सामान्य पृष्ठभूमि के विरुद्ध संकल्पना की।

राजा राममोहन रॉय के दार्शनिक विचार :-

राजा राममोहन रॉय यूनानियों और नेपोलिटन के स्वतंत्रता संग्रामों के प्रति सहानुभूति रखते थे। फ्रांसीसी क्रांति ने उन्हें खुश किया। वह 1832 के सुधार विधेयक के अंग्रेजी संसद द्वारा पारित होने और दक्षिण अमेरिका में स्पेनिश उपनिवेशों द्वारा सफल विद्रोह से खुश थे। फिर भी उन्होंने भारत पर ब्रिटिश शासन का स्वागत किया। उनके दर्शन पर टिप्पणी करते हुए, बी. मजूमदार लिखते हैं—

वे पहले भारतीय थे जिन्होंने अंग्रेजी संविधान की भावना को आत्मसात किया और सभी निहितार्थों के साथ नागरिक स्वतंत्रता की मांग की। अपने युग के भारतीयों की सीमाओं के बारे में पूरी तरह से अवगत होने के बावजूद उन्होंने कभी उनके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग करने के बारे में नहीं सोचा। वे अपने देशवासियों के मन में व्याप्त अज्ञानता और अंधविश्वासों के प्रति सचेत थे, जो अपने आचरण में सार्वजनिक भावना की कमी को दर्शाते थे। इसलिए वे उन्हें स्वशासन का प्रयोग करने में सक्षम नहीं मानते थे। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में भारत के शुभचिंतकों के सामने सबसे बड़ी समस्या भारत के लिए स्वायत्तता नहीं थी, बल्कि न्याय और जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के सिद्धांतों की मात्र मान्यता थी।¹³ राजा राम मोहन राय ने ब्रिटिश काल से ठीक पहले भारत के पतन के लिए राजपूत शासकों के 'अत्याचार और उत्पीड़न' और मुस्लिम शासकों की निरंकुशता को जिम्मेदार ठहराया। राजा राम मोहन राय का मानना था कि ब्रिटिश शासक, जो अपने देश में नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता का आनंद लेते थे, 'स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में भी रुचि लेते थे।' जिन देशों में उनका प्रभाव है, वहां भी सुख-शांति के साथ-साथ साहित्यिक और धार्मिक विषयों में स्वतंत्र अन्वेषण को बढ़ावा मिलेगा।¹⁴

राजा राममोहन ने स्वयं को धार्मिक रूढ़िवादिता के पीड़ितों में शामिल किया, जिसके बारे में उन्होंने तुहफत में लिखा था, ये रूढ़िवादिताएं समाज की स्थिति को सुधारने के बजाय सामाजिक जीवन के लिए क्षति का कारण और नुकसानदेह बन गई हैं तथा लोगों के लिए परेशानी और घबराहट का स्रोत बन गई हैं। ऐसा कैसे हुआ कि लोगों के सामाजिक सुख-सुविधाओं और राजनीतिक एकता के खिलाफ तर्कहीन और भ्रष्ट धार्मिक विश्वास और प्रथाएँ वास्तव में उनके द्वारा अपनाई गईं? राजा राम मोहन का जवाब था कि पुरोहित वर्ग ने उन सिद्धांतों और सिद्धांतों का आविष्कार किया और उन्हें कायम रखा, जिससे उन्हें लाभ मिला। उन्होंने लिखा—

बहुत से विद्वान ब्राह्मण मूर्तिपूजा की मूर्खता से भली-भाँति परिचित हैं, तथा ईश्वरीय पूजा की शुद्धतम पद्धति की प्रकृति से भली-भाँति परिचित हैं। लेकिन चूँकि मूर्तिपूजा के अनुष्ठानों, समारोहों और उत्सवों में उन्हें अपने आराम और सौभाग्य का स्रोत मिलता है, इसलिए वे अपने शास्त्रों के ज्ञान को बाकी लोगों से छिपाकर, अपनी पूरी शक्ति से इसे बढ़ावा देते और प्रोत्साहित करते हैं।¹⁵

इससे से राजा राम मोहन ने निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक सुधार सामाजिक सुधार और राजनीतिक आधुनिकीकरण दोनों है। उन्होंने सुधारवादी धार्मिक संघों को सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के साधन के रूप में देखा। तदनुसार, उन्होंने 1815 में आत्मीय सभा, 1821 में कलकत्ता यूनिटेरियन एसोसिएशन और 1828 में ब्रह्म सभा की स्थापना की, जो बाद में ब्रह्म समाज बन गई। ब्रह्म समाज के लिए उन्होंने जो मूल घोषणापत्र स्वयं लिखा था, वह इस प्रकार है—

समाज में कोई भी नक्काशीदार प्रतिमा नहीं लाई जाएगी। कोई भी उपदेश, प्रवचन, प्रार्थना या भजन नहीं दिया जाएगा, सिवाय इसके कि जो ब्रह्मांड के रचयिता और संरक्षक के चिंतन को बढ़ावा देने, दान, नैतिकता, धर्मपरायणता, परोपकार और सदगुणों को बढ़ावा देने तथा सभी धार्मिक विश्वासों और पंथों के लोगों के बीच एकता के बंधन को मजबूत करने की प्रवृत्ति रखता हो।¹⁶ राजा राम मोहन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लोगों की मुक्ति के लिए, पवित्र ग्रंथों पर रूढ़िवादी ब्राह्मणों के एकाधिकार को कम करना होगा। दूसरे शब्दों में, ज्ञान की पुस्तकों को पढ़ने और उनकी व्याख्या करने के उनके विशेष अधिकारों को चुनौती दी जानी चाहिए। अपने और अपने पूर्वजों के विश्वास को सही साबित करने के लिए, उन्होंने लिखा, श्रम अपने देशवासियों को हमारे पवित्र ग्रंथों के सही अर्थ के बारे में समझाने का प्रयास कर रहा हूँ।¹⁷

उपसंहार :-

राजा राम मोहन राय भारतीय ज्ञानोदय के सशक्त जनक थे, जिन्होंने समाज को तर्क, वैज्ञानिक सोच और प्रगतिशील विचारों की दिशा में अग्रसर किया। उन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह और जातिगत भेदभाव जैसी कुप्रथाओं के खिलाफ संघर्ष करते हुए सामाजिक सुधारों की नींव रखी। ब्रह्म समाज की स्थापना से उन्होंने धार्मिक सुधार और सामाजिक एकता का संदेश दिया। उनके प्रयासों ने शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, और आधुनिकता की दिशा में भारत को एक नई दिशा दी। राजा राम मोहन राय की दूरदर्शिता ने भारतीय समाज के नवजागरण की प्रक्रिया को न केवल प्रारंभ किया, बल्कि उसकी दिशा भी तय की। उनके नेतृत्व में भारतीय ज्ञानोदय की शुरुआत हुई, जिसने आधुनिक भारत के विकास में अमूल्य योगदान दिया। उनका दृष्टिकोण आज भी प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. दत्त, के सी, राजाराम मोहन राय: जीवन और दर्शन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024
2. पूर्वोक्त
3. मजूमदार, बी० बी०, भारतीय सामाजिक और राजनीतिक विचारों का इतिहास, कलकत्ता बुक लैंड प्राइवेट लिमिटेड, 1967
4. पूर्वोक्त
5. सिंह, इकबाल, राममोहन राय ए बायोग्राफिकल इन्क्वायरी इन टू दी मेकिंग ऑफ मार्डन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1958
6. तौसीफ फातिमा (2009-10). विमेन राइट्स एंड हिंदू लॉ ऑफ इन्टेक्टिंस. भारतीय इतिहास कांग्रेस. खंड. 70.
7. ऐश्वर्या, दी, सोशियल एण्ड एजुकेशनल कान्ट्रिब्युशन ऑफ राजा राममोहन राय: अ पाथफाइन्डर, अप्रकाशित शोधग्रंथ, कलकत्ता विवि, 2015
8. पूर्वोक्त
9. डी.एच. बिशप, ऑप. सीआईटी, पृ. 21
10. दत्त, के सी, पूर्वोक्त
11. मजूमदार, बी. राजा राजा राम मोहन राय की अंग्रेजी कृतियाँ, पृ. 917
12. बी. सील, राजा राम मोहन, द यूनिवर्सल मैन, कलकत्ता साधारण ब्रह्म समाज, 1933
13. मजूमदार, बी. पूर्वोक्त
14. चन्द्रा, जगदीश, मेकर्स ऑफ मार्डन इंडिया: राजा राममोहन राय: रिलीजियस रिफॉर्मर ऑफ इंडिया, द रीडर्स पैराडाइज, नई दिल्ली, 2023
15. राजा राममोहन राय की अंग्रेजी कृतियाँ, कलकत्ता 1947, खंड 2, पृष्ठ 44
16. नरवणे, वी.एस. आधुनिक भारतीय विचार, 1964 पृ. 26
17. राजा राम मोहन राय की अंग्रेजी कृतियाँ, पृष्ठ 90.



गौतम बुद्ध का जीवन और शिक्षाएँ : करुणा और ज्ञान की ओर यात्रा

विवेक कुमार, शोध छात्र

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तावना :-

गौतम बुद्ध (563-483 ईसा पूर्व) को विश्व के महानतम आध्यात्मिक दार्शनिकों में गिना जाता है। उनका जीवन एक राजकुमार से संन्यासी, और अंत में एक मार्गदर्शक तक की प्रेरक यात्रा है। उनका जीवन और उनकी शिक्षाएँ मानवता के लिए अनमोल धरोहर हैं। बुद्ध ने न केवल उस युग की धार्मिक परंपराओं को चुनौती दी, बल्कि उन्होंने ज्ञान, करुणा, और ध्यान के माध्यम से व्यक्ति को मानसिक और आध्यात्मिक शांति की राह दिखाई। उनकी शिक्षाओं ने न केवल उनके समय के समाज पर गहरा प्रभाव डाला, बल्कि विश्वभर में लाखों लोगों के जीवन को बदल दिया। यह शोध पत्र गौतम बुद्ध के जीवन के विभिन्न पहलुओं, उनकी शिक्षाओं और उनके धार्मिक दर्शन की गहन पड़ताल करता है, जिनका उद्देश्य मानवता को पीड़ा से मुक्ति दिलाना और ज्ञान की ओर अग्रसर करना था।

प्रारंभिक जीवन :-

गौतम बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व में लुम्बिनी (वर्तमान में नेपाल) में हुआ था। वे शाक्य वंश के राजा शुद्धोधन और रानी माया के पुत्र थे। बचपन से ही सिद्धार्थ को सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं से घेरा गया था ताकि वे बाहरी दुनिया की समस्याओं से अनभिज्ञ रहें। राजमहल में रहते हुए भी, सिद्धार्थ की सोच और संवेदनशीलता ने उन्हें जीवन की गहरी सच्चाइयों की खोज की ओर प्रेरित किया।¹ सिद्धार्थ की शादी यशोधरा से हुई और उन्हें एक पुत्र, राहुल, हुआ। लेकिन इन सांसारिक बंधनों ने उनके अंतर्मन में उठते सवाल को शांत नहीं किया। एक दिन उन्होंने महल से बाहर चार महादृश्य देखे – एक वृद्ध व्यक्ति, एक रोगी, एक मृत व्यक्ति, और एक संन्यासी। इन दृश्यों ने सिद्धार्थ के जीवन की दिशा को बदल दिया। उन्होंने संसार की क्षणिकता और पीड़ा को समझा और सत्य की खोज के लिए गृह त्याग का निर्णय लिया।

ज्ञान की खोज में सिद्धार्थ ने 29 वर्ष की आयु में राजमहल और अपने परिवार को छोड़कर संन्यास ग्रहण किया।² वे उन उत्तरों की खोज में थे जो जीवन, मृत्यु, और पीड़ा के वास्तविक कारणों को स्पष्ट कर सकें। उन्होंने विभिन्न गुरुओं से शिक्षा ली और कठोर तपस्या की। कई वर्षों तक कठोर तपस्या के बावजूद, उन्हें वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ जिसकी वे तलाश कर रहे थे।

अंततः उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाने का निर्णय लिया। उन्होंने अत्यधिक विलासिता और कठोर तपस्या दोनों को त्यागते हुए एक संतुलित जीवन का मार्ग चुना। बोधगया के एक पीपल वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न होकर उन्होंने शनिर्वाणश या आत्मज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद वे बुद्ध, यानी जाग्रत कहलाए।

बुद्ध की शिक्षाएँ :-

गौतम बुद्ध की शिक्षाएँ चार आर्य सत्य (चत्वारि आर्य सत्यानि) और अष्टांगिक मार्ग पर आधारित हैं। ये शिक्षाएँ जीवन के मौलिक प्रश्नों और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती हैं और व्यक्ति को आत्मज्ञान की ओर अग्रसर करती हैं।

चार आर्य सत्य :-

बुद्ध ने अपने पहले धर्मचक्र प्रवर्तन के दौरान सारनाथ में चार आर्य सत्य की शिक्षा दी, जो उनके पूरे धर्म का सार है।

1. दुःख (दुःख)

पहला आर्य सत्य यह विचार है कि हर कोई दुःख भोगता है और दुःख संसार का हिस्सा है। बौद्ध धर्म के अनुयायी दुःख के चक्र में विश्वास करते हैं। संसार, जो जन्म, जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म का चक्र है।¹ इसका मतलब है कि लोग कई बार दुःख का अनुभव करेंगे। जीवन में एक व्यक्ति जिन चीजों से गुजरता है, वे सभी दुःख का कारण बनती हैं और वे इसके बारे में कुछ नहीं कर सकते। इसके बजाय, उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि यह मौजूद है। लोग दुःख को समाप्त करने के लिए अस्थायी समाधान का उपयोग कर सकते हैं, जैसे कि कुछ ऐसा करना जो उन्हें पसंद हो। हालाँकि, यह हमेशा के लिए नहीं रहता है और जब आनंद समाप्त हो जाता है तो दुःख वापस आ सकता है। बौद्ध लोग दुःख को रोकने की कोशिश करना चाहते हैं।⁴ हालाँकि, पहला कदम यह स्वीकार करना है कि दुःख है – यह होता है और यह मौजूद है।

2. दुःख का कारण (दुःख समुदय)

दूसरा आर्य सत्य यह अवधारणा है कि कुछ ऐसा है जो दुःख का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति बीमार होता है, तो वह बीमारी का कारण समझकर ही उसे समाप्त कर सकता है। ऐसा करने के लिए, वह डॉक्टर के पास जा सकता है, जो समस्या का निदान करने में सक्षम हो सकता है। इससे उन्हें अपने दुःख का कारण समझने में मदद मिलती है।

इसी प्रकार, बुद्ध ने लोगों को सिखाया कि आगे बढ़ने और इसे पीछे छोड़ने के लिए दुःख के कारण को समझना आवश्यक है। बुद्ध का मानना था कि ज्यादातर दुःख चीजों की लालसा या इच्छा करने की प्रवृत्ति के कारण होता है।⁵ एक व्यक्ति को खाने के लिए कुछ अच्छा चाहिए हो सकता है या एक अच्छी छुट्टी पर जाने या बहुत सारा पैसा कमाने की इच्छा हो सकती है। बौद्ध धर्म सिखाता है कि अपने जीवन से असंतुष्ट होने और चीजों की लालसा करने से लोग पीड़ित होते हैं।

अतः कोई बौद्ध व्यक्ति दुखों को खत्म करना चाहता है, तो उसे अज्ञानता, घृणा और लालसा से बचने के तरीके खोजने चाहिए। अगर वे ऐसा कर पाते हैं तो वे संसार से मुक्त हो जाएंगे और मोक्ष तक पहुँच सकते हैं।

3. दुःख का निरोध (दुःख निरोध)

तीसरा आर्य सत्य यह जानना है कि दुःख समाप्त हो सकता है। बौद्धों को यह पहचानना चाहिए कि दुःख को रोकने और उससे दूर जाने का एक तरीका है, क्योंकि ऐसा करके वे ज्ञान प्राप्ति के करीब पहुँच सकते हैं।⁶ बौद्ध धर्म सिखाता है कि लोगों को बहुत सी अलग-अलग चीजों की चाहत पर बहुत ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि इससे आनंद लंबे समय तक नहीं रहेगा। बौद्धों को दुःख को समाप्त करने के लिए जितना हो सके उतनी लालसा को रोकने की कोशिश करनी चाहिए।

4. दुःख निरोध का मार्ग (दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा)

चौथा आर्य सत्य यह है कि दुःख को समाप्त करने का एक तरीका है। बौद्ध लोग दुःख को समाप्त करने के लिए कई चीजें कर सकते हैं, जैसे बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करना और ध्यान करना। बुद्ध ने यह भी सिखाया कि लोगों को जीवन में सही तरीके से जीना चाहिए।⁷ मध्य मार्ग यह वह मार्ग है जो विलासिता और गरीबी की दो चरम सीमाओं के बीच आता है। मध्यम मार्ग के लिए एक और शब्द आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जिसमें आठ चरण शामिल हैं जिनका पालन बौद्ध लोग दुःख को समाप्त करने के लिए कर सकते हैं।

अष्टांगिक मार्ग :-

बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग बौद्ध धर्म का प्रमुख मार्गदर्शक सिद्धांत है, जो मनुष्य को दुखों से मुक्ति और निर्वाण की प्राप्ति का रास्ता दिखाता है। यह मार्ग चार आर्य सत्यों के आधार पर बनाया गया है, जिनमें जीवन में दुःख की उपस्थिति, उसके कारण, उसका अंत, और उससे मुक्ति के उपाय बताए गए हैं। अष्टांगिक मार्ग इन उपायों का सार है, जो आठ अंगों में विभाजित हैं।

1. **सम्यक दृष्टि** – सही दृष्टिकोण, जो जीवन की वास्तविकता और चार आर्य सत्य को समझने पर आधारित है। यह व्यक्ति को सही ज्ञान और समझ प्रदान करता है।

2. **सम्यक संकल्प** – सही विचार, जिसमें अहिंसा, करुणा और प्रेमपूर्ण विचारों का पालन करना शामिल है।

3. **सम्यक वाक** – सही बोलचाल, जिसमें सत्य बोलना, दूसरों के प्रति कटु या आहत करने वाले शब्दों से बचना, और झूठ न बोलना प्रमुख है।

4. **सम्यक कर्मात्** – सही कर्म, जिसमें हिंसा, चोरी, और अनैतिक कर्मों से बचना शामिल है। यह नैतिकता का पालन करने की सीख देता है।
5. **सम्यक आजीविका** – सही आजीविका, जिसमें किसी भी तरह से दूसरों को हानि पहुंचाने वाली नौकरियों या व्यापार से दूर रहना शामिल है।
6. **सम्यक व्यायाम** – सही प्रयास, जो मन में बुरी भावनाओं को समाप्त कर, सकारात्मक और नैतिक भावनाओं को बढ़ाने की कोशिश करता है।
7. **सम्यक स्मृति** – सही ध्यान या जागरूकता, जिसमें मनुष्य को अपने शरीर, भावनाओं और विचारों के प्रति जागरूक रहने की सलाह दी जाती है।
8. **सम्यक समाधि** – सही एकाग्रता, जिसमें ध्यान और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से मन को शुद्ध किया जाता है और आत्मज्ञान की प्राप्ति की जाती है।

बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग का उद्देश्य व्यक्ति को आध्यात्मिक और नैतिक रूप से उच्च बनाना है। यह मार्ग मनुष्य को दुखों से मुक्ति देकर शांति और संतोष की ओर ले जाता है। अतः आर्य अष्टांगिक मार्ग द्वारा प्रतीत्यसमुत्पाद के अविद्या आदि द्वादश निदानों अथवा भवचक्र का निरोध सम्भव है। सम्यक् दृष्टि अविद्या की विरोधी है, सम्यक् संकल्प संस्कार की विरोधी है। सम्यक् वाचा विज्ञान की विरोधी है, सम्यक् कर्मान्त षडायतन की विरोधी है, सम्यक् आजीव स्पर्श का विरोधी है, सम्यक् व्यायाम वेदना का विरोधी है, सम्यक् स्मृति तृष्णा और उपादान का विरोधी है और अन्त में सम्यक् समाधि भव का विरोधी है, इन सभी आठ अंगों से जन्म और जरा-मरण का प्रहाण हो जाता है।⁸ इस प्रकार सम्पूर्ण दुःख का विनाश सम्भव है। इस प्रकार आर्य अष्टांगिक मार्ग द्वारा आर्य सत्त्यों का साक्षात्कार एवं तृष्णा का आत्यन्तिक क्षय हो जाने से निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

मध्यम-मार्ग :-

तथागत बुद्ध का सम्पूर्ण धम्म मध्यम मार्ग पर आधारित है तथा इसी मार्ग के सम्यक् आचरण से मनुष्य परम सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। तथागत बुद्ध मध्यम-मार्ग की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'द्वे भिक्खवे अन्ता पव्वजितेन न सेवितव्वा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीना गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्यसंहितो। यो चायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्यसंहितो। एते खो भिक्खवे उभे अन्ते अनुपगम्ममज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा चक्खुकरणी आणिकरणी उपसमाय अभिज्जाय सम्बोधाय निव्वाणंसत्तति।'⁹ अर्थात् 'हे भिक्षुओ! जिस मनुष्य ने संसार का पूर्णतः त्याग कर सन्यास के मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प किया, उस मनुष्य को दो अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिए, कौन से दो? प्रथम अन्तः कामवासना या वस्तुओं के भोग की इच्छापूर्ति में हमेशा लीन रहना। यह हीन, ग्राम्य, मूर्खों मनुष्य द्वारा ही करणीय एवं अनार्य लोगों द्वारा करणीय कामवासनाओं में अत्यधिक लिप्त रहना, यह अन्त मनुष्य को आध्यात्मिक जीवन से दूर ले जाने वाला है। द्वितीय अन्तः शरीर को कष्ट देना। यह भी दुःख, अनार्य एवं अनर्थ उत्पन्न करने वाला है। इन दोनों ही अतियों की उपेक्षा करके तथागत बुद्ध ने 'मध्यममार्ग' की देशना की है। यह मार्ग आँख खोल देने वाला, ज्ञान उत्पन्न करने वाला है, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला तथा शान्ति, अभिज्ञा, बुद्धत्व, एवं निर्वाण की ओर ले जाने वाला है। यही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। आर्य अष्टांगिक मार्ग को तथागत बुद्ध ने 'त्रिविधशिक्षा' के अनुसार विभक्त का उपदेशित किया है। आर्य अष्टांगिक मार्ग के इन आठ भागों को शील, समाधि और प्रज्ञा अर्थात् तीन शिक्षाओं में विभाजित किया गया है।¹⁰ यहाँ सम्यक दृष्टि एवं सम्यक् संकल्प का सम्बन्ध प्रज्ञा से है। सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीविका का सम्बन्ध शील से है तथा सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि का सम्बन्ध समाधि से है।

वर्तमान में महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की प्रासंगिकता :-

बुद्ध की शिक्षाएँ, जो करुणा, अहिंसा, और सम्यक दृष्टि पर आधारित हैं, आज के आधुनिक युग में अत्यधिक प्रासंगिक हैं। वर्तमान समय में जहाँ दुनिया सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रही है, बुद्ध द्वारा दिए गए सिद्धांत हमें एक संतुलित और शांतिपूर्ण जीवन की ओर मार्गदर्शन करते हैं।

बुद्ध ने बताया कि संसार के सभी दुःखों का मूल कारण मानव की इच्छाएँ, तृष्णा और मोह हैं। आज की उपभोक्तावादी और प्रतिस्पर्धात्मक संस्कृति में यह शिक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। लोग भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के पीछे भागते हुए मानसिक शांति खो रहे हैं। बुद्ध का मध्यम मार्ग,

जिसमें अतियों से बचने और संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया गया है, आज के तनावपूर्ण जीवन में मानसिक और भावनात्मक शांति प्राप्त करने का एक प्रभावी उपाय है।

करुणा और अहिंसा के प्रति बुद्ध की शिक्षाएँ आज के हिंसक और असहिष्णु समय में अत्यंत प्रासंगिक हैं। बुद्ध ने सभी प्राणियों के प्रति करुणा और दया का भाव रखने पर बल दिया। जब दुनिया धार्मिक, राजनीतिक, और जातीय विभाजनों का सामना कर रही है, बुद्ध की यह शिक्षा हमें एकता, शांति और समरसता की ओर ले जा सकती है। उनके विचारों के अनुसार, सभी प्राणियों के साथ समानता और सम्मान का व्यवहार करना चाहिए, जिससे समाज में समता और सद्भावना का विकास हो सके।

इसके साथ ही, आज के पर्यावरणीय संकट में बुद्ध की शिक्षाओं का एक और महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है। उनके अहिंसा और करुणा के सिद्धांत हमें प्रकृति के प्रति भी जिम्मेदार और दयालु व्यवहार सिखाते हैं। वर्तमान समय में, जब पृथ्वी प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से जूझ रही है, बुद्ध की ये शिक्षाएँ हमें पर्यावरण के संरक्षण और संतुलन की दिशा में प्रेरित करती हैं।

इस प्रकार, बुद्ध की शिक्षाएँ व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में शांति, करुणा और संतुलन लाने का सशक्त साधन हैं। उनके द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलकर हम आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना कर सकते हैं और एक अधिक समृद्ध और शांतिपूर्ण जीवन जी सकते हैं।

उपसंहार :-

गौतम बुद्ध का जीवन और उनकी शिक्षाएँ करुणा, अहिंसा, और ज्ञान की ओर एक अनूठी यात्रा का प्रतिनिधित्व करती हैं। बुद्ध ने अपने अनुभवों और ध्यान के माध्यम से जीवन के मूलभूत सत्य को समझा और दुःख के कारणों का पता लगाया। उनका जीवन हमें सिखाता है कि भौतिक सुख-सुविधाओं और तृष्णा से परे एक संतुलित और आध्यात्मिक जीवन ही वास्तविक शांति और मुक्ति का मार्ग है।

उनकी शिक्षाओं का मुख्य आधार मध्यम मार्ग है, जो जीवन में अति भोग और कठोर तपस्या से बचने का संदेश देता है। इसके साथ ही, करुणा और अहिंसा जैसे सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत मोक्ष की दिशा में सहायक हैं, बल्कि समाज में शांति, सद्भाव और समानता लाने के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। बुद्ध ने सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता पर जोर दिया, जिससे वे समाज के कल्याण और सुधार के प्रतीक बन गए।

इस शोध के निष्कर्षस्वरूप यह स्पष्ट होता है कि गौतम बुद्ध का जीवन और उनकी शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं, चाहे वह व्यक्तिगत जीवन में आंतरिक शांति प्राप्त करने की बात हो या सामाजिक और वैश्विक समस्याओं का समाधान खोजने की। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, बल्कि एक अधिक दयालु, संतुलित और समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में भी प्रेरित करते हैं। बुद्ध की करुणा और ज्ञान की यात्रा मानवता के लिए एक अमूल्य धरोहर है, जो वर्तमान और भविष्य दोनों में हमारे लिए मार्गदर्शक बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ: सूचना विभाग, हिन्दी समिति, 1976।
2. पूर्वोक्त।
3. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्म दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2015।
4. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, पूर्वोक्त।
5. जैन, धर्मचन्द्र, बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, 2019।
6. देव, आचार्य नरेन्द्र, पूर्वोक्त।
7. पूर्वोक्त।
8. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, बुद्ध और उनका धम्म, डॉ. भीमराव अम्बेडकर (हि. अनु.), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
9. सांकृत्यायन, राहुल, विनयपिटक (हि. अनु.), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
10. राठी, लक्ष्मीनारायण, दुःख मुक्ति की साधना, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर, 2009।



The Legacy of Teaching and Philosophy of Chaitanya Mahaprabhu

Dr. Abhishek Agrawal, Assistant Professor
Department of History, Faculty, Arts & Humanities
Kalinga University, Kotni, Naya Raipur (C.G.)

The Bhakti movement which was a movement throughout India produced manifold effects. Though it failed to achieve its two motives, namely, reformation in Hindu religion and establishment of Hindu-Muslim unity, it affected the entire society.

On the evening of Phalguni Purnima in the year 1486 AD, Sri Chaitanya Mahaprabhu appeared at Sridham Mayapur in Bengal. Lord Chaitanya's Vaishnavism is also known as Gaudiya Vaishnavism and Hare Krishna. Chaitanya, a great devotee of Lord Krishna, showed great interest in education from his very childhood and studied Sanskrit. Later at the age of 24, he renounced the worldly life and became a *sanyasi*. He traveled all over the Deccan, Bihar, Bengal and Orissa. His followers regarded him as an incarnation of Lord Vishnu. He helped the old and the needy. He was opposed to the inequalities of the caste system. He emphasized the need for tolerance, humanity and love. He spread the message of Bhakti in Bengal. He popularized 'Sankirtan' or public singing of God's name. His songs are still very popular in Bengal. He was addressed 'Mahaprabhu' by his followers. Chaitanya was the greatest saint of the Bhakti Movement. He gave up the world at the age of 25 and became a Sanyasi and several parts of the country. He preached the doctrine of love of Krishna and Radha.

Chaitanya Mahaprabhu was the main architect of Vaishnavism that over the length and breadth of not only India but throughout the world. Chaitanya Mahaprabhu followed the traditions of the Vedanta that "Reality is one". Chaitanya Mahaprabhu established the theory of "Achinta Bheda Bheda veda" (Incomprehensible difference in non-difference).

Chaitanya Mahaprabhu was the last Vaishnava saint of Bengal, who had succeeded Nimbarka and Vallabha. His method of propagating the Vaishnava movement called "Achinta Bheda Bheda veda" was through Kirtana (Singing in Chorus in name of god). The followers of Chaitanya consider him as the greatest incarnation of Lord Krishna, who preached ardent love (Prema-Bhakti) for god and they often find the similarity of Chaitanya with Jesus Christ also. Chaitanya wrote only eight Verses which were later elaborated by his followers that form a vast literature. Like Madhava, Chaitanya preaches 'Bheda Abheda' or difference in non-difference thus Chaitanya presents an "Idealistic Monism" which reconciles all dualities. One of the most important missions of Chaitanya's life was to abolish caste-systems.

As the matter of fact Chaitanya's ardent "Radha-krishna-Bhakti" seems to be much inspired by the final teaching of Lord Krishna contained in sixty-sixth sloka (verse) of the eighteenth chapter of Bhagava Gita in which Lord Krishna finally says—"Sarva Dharman

parityajya Manekam Sarnam Vrajah, Aham tva Sarva pape bhyo Mokshayishami man suchah. “Surrendering all duties to me, seek refuge in me alone. I shall absolve you of all sins grieve not.”

Chaitanya Mahaprabhu’s Philosophy-

Though initiated into the Madhvacharya tradition, Chaitanya Mahaprabhu’s philosophy is considered slightly different from that of other followers and teachers of Madhvacharya tradition. According to historians and scholars, Chaitanya Mahaprabhu did not pen down any written text. However, his words were recorded by one of his followers, which came to be known as ‘Siksastaka’ (eight verses). These eight verses are believed to house the philosophy of Gaudiya Vaishnavism. Though Chaitanya Mahaprabhu did not write down his teachings and philosophy, he did request a few of his followers (Six Gosvamis of Vrindavan) to systematically present his teachings in their own writings.

Peace, freedom and gay abundance which are transcended through divine rhythm and cosmic dance is the main plank of Chaitanya Mahaprabhu’s preaching. One can attain treasures of happiness and surmount the sorrows by abandoning oneself at the feet of the Lord, the Guru and the Master who is the personified image of the Almighty. ‘Sankirtan’ that is singing the song of glory in praise of the Creator and His Creations should be the goal of all human beings and self-imposed hurdles and barriers of caste, creed and race should be conquered with love and respect for each and every living being.

Chaitanya Mahaprabhu propounded his theory of “Achintya Bheda”, according to which the supreme reality Shri Krishna and his creation is qualified with the attributes of difference and non-difference both. According to him, the name of Shri Krishna and the ‘Shabd Avatara’ (Incarnation of Words). Hence according to him mere chanting the name of Shri Krishna is sufficient for his realization. Therefore according to him the Kirtana (regular chanting and singing chorus of Krishna’s name) was the best way to attaining the ultimate aim of human life. He himself was mostly lost in performing kirtans. His kirtans were so enchanting, that people lost themselves and wept and dance along with him on the magic spell of tunes of his kirtans.

Chaitnya’s concept of reality is based of his philosophy of “Achintya Bheda Bheda Vada” (The theory of inconceivable difference in non-difference) which is considered to be his unique contribution to vaishnavism. According to him param Brahman Lord Vishnu is the ultimate reality, who possess the attributes of Sat, Chit, Ananda, Vashudeva, Vishnu, Narayan, Shiva, and ultimately Shri Krishna all are merely the different forms of ultimate reality. He is the God of love and grace. He is both ‘Nirguna’ (Devoid of qualities) and ‘Saguna’. He is Nirguna because he is free from qualities of prakriti and he is also ‘Saguna’ (having qualities), because he possess the quality of Omniscience, Omnipotence and omnipresence.

Shri Chaitanya Mahaprabhu was almost drowned in the love of Krishna and felt his presence in the gardens of Vrindavan. Once he said, ‘Neither do I want followers, nor wealth, nor, learning, nor poetical powers. Give unto my soul a bit of devotion for Thee. Great pride never produces any good. How will he who is called the vanquisher of the proud bear with your pride.’

According to Chaitanya Mahaprabhu Lord Krishna is the ultimate Brahman having the ultimate powers of creation, substance and annihilation. Thus the ultimate reality according to Chaitanya Mahaprabhu is lord Krishna, who is the adobe of infinite qualities which includes “Satya Karmatva” (desire of truth), “Satya Sankaltva” (true determination), “Sarvajantva” (omniscience), “Sarvavidyartva” (omnipresence). There exists complete non difference between ‘Guna’ (quality), and ‘Guni’ (abode of quality). Therefore these qualities are

completely non different and identified with him. The “Bhagvada Vighraha” (The image of God) and his qualities are identical.

Gaudiya Sampradaya-

Gaudiya Sampradaya is also known as the Bengal school of Vaishnavism. Chaitanya is considered by Gaudiya Vaishnavas to be Lord Krishna in disguise (channa avatar) who emerged in the Kali Yuga as his own disciple to demonstrate the simplest path to Krishna Consciousness. Though Chaitanya possessed the magnetic attraction of overpowering and charming the minds of masses, but did not ever declare himself as incarnation of God. Latter on, when ever he was addressed by his followers as Lord Krishna, he denied it and put his hands over his ears, protesting that one should not be addressed as the Supreme Lord. But the followers of his sampradaya adore Lord Shri Chaitanya Mahaprabhu as Shri Lord Krishna himself.

TEACHINGS OF CHAITANYA MAHAPRABHU: -

The Teachings and Philosophy of Chaitanya Mahaprabhu become popular not in Bengal and Orissa but also in other parts of the country. He preached a gospel which went straight to the hearts of the people. His message of love for a personal God acted as a balm for suffering humanity. It showed that human heart could rise above political and social sufferings. “It imparted freshness to life creative power to literature and richness to human relations.” Prof R.K. Mukherjee writes “The Chaitanya Vaisnava movement added a new strand of morality and goodness to the Indian Character, the maturing and the transcendent quality of authentic human approach to the deity.

Through him Vaishnavism, which is the philosophical expression of the ideal of love for God, ushered in a new era.” The view of Theodore Gold tucker is that “Chaitanya comprehended five stages of Bhakti-quietism as that of sage, servitude which every votary takes upon himself, friendship for the deity honoured with his acquaintance, tender affection for the deity of the same nature as love of parents for their children and the highest degree of affection such passionate attachment as the Gopis felt for their beloved Krishna.”

It is said about Chaitnya that “No one man has left a more indelible stamp upon the social and emotional life of Bengalis and exerted a more lasting influence on the very elements of Bengali character. The Bengali mind, as it shows itself today, has been largely shaped and moulded by Chaitanya and his associates. He released the tidal waves of emotion, faith and the ecstasy of mystic vision that lay dormant in the Bengali mind, all its poetry and pathos and high strung emotionalism.

Chaitanya had too much love for the poor and the weak. Whenever he saw their sorrows, his heart melted with pity. He was opposed to the caste system. He believed in the universal brotherhood of man. His conviction was that the name of Lord Krishna does not know the barriers of caste and race. Haridas was one of the followers of Chaitanya and he was an outcaste. He asked Chaitanya not to touch him. While embracing him, Chaitanya said “You have dedicated yourself to me, that body of yours is mine in every respect, the all-sacrificing and all-loving spirit dwells in it, it is holy as a temple. Why should you consider yourself unclean? He rejected casteism and preached universal brotherhood.

Shri Chaitanya Mahaprabhu did not outright reject the Varnashrama Dharma, but he was not favorable towards the previledge caste system. He says that the categorization of Varnas of Brahman, Kshyriya, Vaishya and Shudra should be based on qualities not by birth. Chaitanya Mahaprabhu did not accept the birth as the determining factor of varna and Caste. He admitted so many persons of lower caste and even the Muslims in his Gaudiya Sampradaya. His closest disciplines came mostly from the so called lower cast.

He wandered about the country and taught the people to love and worship Krishna. Wherever he went, thousands of people flocked to him. He gave them the message of love and peace. He was so much absorbed in love for Lord Krishna that the very thought of him playing upon his flute in the woods of Brindaban, threw him into ecstasy. He wanted his followers to have perfect humility in their actions and absolutely no pride in whatever they did. He quote “Krishna dwells in every soul and therefore give respect to others, without seeking any for himself.” Again He says “Neither do want followers, nor wealth nor learning, nor poetical powers. Give unto my soul a bit of devotion for the. Great pride never produces any good.

Love was the watchword of the cult of Chaitanya. To quote him “Every man must offer body and soul to Him and must disdain his personal gratification. He must be prepared to carry out his Lord’s will and in doing so must not shrink from any sacrifice. He must worship His image, he must talk to Him,, he must wreath flowers for him, he must burn incense and wave the Chamaris in His temple and offer his service day and night to the Lord and to the word as well. Vaisnavism, it must be repeated, is not the religion of the recluse, nor is it a non-proselytising creed.”

References:-

1. Banerjee, Chitrita, ‘Chaitanya Mahaprabhu: The Story of Bengal’s Greatest Bhakti Saint’, Juggernaut Publication, 2018.
2. Teachings of Lord Chaitnya, Bhaktiveda Books trust Publications, 1991.
3. Thakur, Srila Bhaktivinoda, ‘Chaitnya Mahaprabhu-His life & percepts, golden age media, new Delhi, 2023.
4. Bhaktiveda, A.C., ‘Sri Chaitanya’, Bhaktiveda Book Trust, 1975.
5. Bhativeda A.C. & Swami Prabhuveda, ‘Sri Chaitnya Charitmrata’, The past times of lord Chaitnya Mahaprabhu.
abhishek.agrawal@kalingauniversity.ac.in



नेताजी की दृष्टि में स्वतंत्र भारत

रोशनी पारीक, शोध छात्रा,

सेंट विल्फ्रेड पी.जी. कॉलेज, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,(राजस्थान)

प्रस्तावना:-

नेताजी की दृष्टि में स्वतंत्र भारत एक ऐसा राष्ट्र था जो आत्मनिर्भर, शक्तिशाली, और सभी प्रकार की आंतरिक और बाहरी शक्तियों से स्वतंत्र हो। उनकी दृष्टि में यह भारत जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर विभाजित नहीं होगा, बल्कि एक समग्र, एकीकृत और सशक्त राष्ट्र होगा। एक राजनेता और अंतर्राष्ट्रीय कद के नेता जी का वर्णन उनके समकालीन विदेशी समाचार माध्यमों ने अलग अलग रूपों में किया, जैसे ब्रिटिश अखबार ने उन्हें 'इंडियास दी वलेरा' कहा जबकि फासीवादी समाचार पत्र 'पोपोलोड', इटालिया ने उन्हें 'बुद्ध के समान, श्रेष्ठ बुद्धि वाले और एशियाई भद्रता के प्रतीक' के रूप में प्रस्तुत किया। वही इतिहासकार ई. जे. हॉब्सबोन ने उन्हें यूरोप के बाहर के राष्ट्रवाद कुछ समझने के लिए अति महत्वपूर्ण और उनके सामरिक सिद्धांत को उपनिवेश विरोधी स्वतंत्रता आंदोलन का महत्वपूर्ण साधन माना, जहाँ राष्ट्रीय हितों को अन्य अंतरराष्ट्रीय 'आदर्शवादी' उद्देश्यों के ऊपर रखा जाता है। उनकी पुस्तकों, लेखन, भाषण और पत्थरों के अध्ययन से हमें व्यावहारिक विश्लेषण और रचनात्मक सुझावों के साथ बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की विश्व व्यवस्था, अंतरराष्ट्रीय संबंधों का पूर्वाग्रह से भरा चित्र मिलता है। सर्वाधिक प्रतिष्ठित क्रांतिकारियों में से एक के रूप में वह सच्चे दूरदर्शी नेता थे, जिन्हें खुर्शीदबेन नौरोजी "नेहरू से अधिक लोकप्रिय और उनके प्रति आकर्षण को कुछ स्थितियों में गांधी की तुलना में अधिक प्रबल"¹ मानती थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भविष्य की भारत, उसकी सरकार के स्वरूप, नीतियों, योजना, सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के प्रति उनकी अपनी एक सोच थी।

स्वतंत्र भारत के लिए नेताजी के योगदान:- नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जीवन और सफर एक व्यक्ति की स्वयं को "नितांत महत्वहीन प्राणी"² मानने से स्वयं को अस्थायी आजाद हिन्द सरकार और सेना के राज्य प्रमुख के रूप में घोषित करने तक का सफर है। नेताजी के निजी अनुभवों से भी भविष्य के भारत के प्रति उनके विचारों का विकास हुआ। सामाजिक आर्थिक पुनर्निर्माण आदि कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें उन्होंने अपने कार्य पर व्यापक स्तर पर ध्यान दिया।

योजना आयोग :- स्वतंत्र भारत के लिए नेता जी की जो महान योगदान है, उनमें से एक योजना आयोग था, जिसकी स्थापना स्वतंत्र भारत में की गई। यह आयोग औद्योगिक योजना और नीतिनिर्माण से संबद्ध अन्य कार्यों में महती भूमिका निभाता है। इसकी आवश्यकता पर सबसे पहले नेता जी ने सी.आर. दास को लिखे अपने पत्र में अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला था, जिनसे उन्होंने नीतिनिर्माण की भूमिका पर विचार किया था, और फिर बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में इसे खुलकर सामने रखा जब उन्होंने जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में योजना आयोग की आधारशिला रखी। फरवरी, 1938 में हरिपुरा में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 51 वें अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था, “पुनर्निर्माण की एक व्यापक योजना तैयार करने हेतु एक आयोग का गठन करना हमारी भावी राष्ट्रीय सरकार का पहला कदम होगा। इस योजना के दो भाग होंगे – एक तत्काल कार्यक्रम और दूसरा दीर्घकालिक कार्यक्रम। पहला भाग तैयार करते समय जिन तात्कालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखा होगा, वे त्रिआयामी होंगे— पहला, देश को आत्म त्याग के लिए तैयार करना; दूसरा, भारत को एक करना; और तीसरा, स्थानीय व सांस्कृतिक स्वायत्तता के स्थान देना। राष्ट्रीय योजना की अवधारणा में उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन और तीव्र औद्योगिकरण की आवश्यकता जैसे मुद्दों को भी शामिल किया। इन सभी मुद्दों पर कांग्रेस ने पहले कभी गंभीरता से विचार नहीं किया। नगरपालिका की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए नेताजी ने कहा “आधुनिक नगरपालिका को न केवल पीने के शुद्ध पानी, सड़को, बिजली, आदि की व्यवस्था करनी है, बल्कि प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा सेवा और साथ साथ समस्याओं का समाधान करना है, जिस पर कुछ सालो पहले तक नगरपालिकाओं ध्यान नहीं देती थी।”³

सरकार का स्वरूप :- नेताजी एक ऐसी संघीय, लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक सरकार चाहते थे जो राष्ट्रवाद और समाजवाद के अटल आदर्शों इस पर आधारित हो भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर पर आधारित फासीवाद और साम्यवाद का संश्लेषण उनके समाजवाद के विचार का आधार था। उन्होंने इसे ‘साम्यवाद’ की संज्ञा दी, बुद्धकालीन भारत में समाजवाद के लिए प्रयुक्त शब्द, जो भारतीय स्थितियों के अनुकूल था। ‘ए ग्लिंप्स ऑफ फ्यूचर’ शीर्षक एक अध्ययन में नेता जी ने इस आदर्श का समर्थन किया है। वह एक ऐसी मजबूत केंद्रीय सरकार चाहते थे, जिसमें सभी अल्पसंख्यक समुदायों और प्रांतों को सांस्कृतिक व सरकारी मामलों में बृहत स्तर पर स्वायत्तता हो। नवंबर, 1944 में टोक्यो विश्वविद्यालय में एक भाषण में उन्होंने कहा, “उस आर्थिक कार्यक्रम को यथासंभव सर्वोत्तम तरीके से कार्यान्वित करने के लिए आप तथाकथित लोकतांत्रिक प्रणाली हासिल नहीं कर सकते, यदि उस प्रणाली को एक समाजवादी आधार पर आर्थिक सुधार सफलतापूर्वक पूरे करने हो। इसलिए अधिनायकवादी चरित्र की एक राजनैतिक व्यवस्था— एक राज्य— होना जरूरी है।⁴ सत्ता ग्रहण करने के नेता जी के दृष्टिकोण का बचाव करते हुए सुगाता बोस ने लिखा है, “धन-सम्पत्ति, सांसारिक सुख और

आनंद का त्याग उनके संपूर्ण जीवन की विशेषता थी। उनके चरित्र में आत्मनिष्ठा की तुलना में आत्महत्या का गुण अधिक मजबूत था।” यही बात उनके पत्र व्यवहार में देखी जा सकती है, जो उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने की बाद लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था, “भारत एक विचित्र देश है जहाँ लोगों को इसके लिए प्यार नहीं किया जाता कि उनके पास शक्ति है, बल्कि इसलिए कि वे सत्ता का त्याग कर देते हैं।”⁵ उनका मानना था कि जितनी लोकप्रियता उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के बाद मिली उतनी पद पर रहते हुए नहीं मिली।

विदेश नीति :- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में ऐसे बहुत कम नेता थे जिनका अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और भूराजनीति के प्रति विचार नेताजी की तरह व्यावहारिक हो। वह हमेशा अध्ययन करते रहते थे और प्राचीन भारतीय दर्शन से विदेशी मामलों से निपटने में व्यावहारिक होने की प्रेरणा लेते थे। वह गीता के “आत्मवत् मनयते जगत” सिद्धान्त में विश्वास रखते थे, (अर्थात् मनुष्य अपने स्वभाव के अनुरूप विश्व का न्याय करेगा)। उन्हें भारत का शत्रु भारत से बाहर नहीं बल्कि भारत के भीतर ही दिखाई देता और अंग्रेजों के विरुद्ध व फासिस्टों और कम्युनिस्टों से सहायता लिया करते थे। अंतर्राष्ट्रीय मामलों के प्रति उनकी अनुभवजन्य समझ का विकास स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुआ और उनका दृढ़ मत था, कि “भारत की विदेश नीति पर किसी भी देश की आंतरिक राजनीति या उसके राज्य के स्वरूप का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।” नेता जी ने बताया कि ऐसी विदेशनीति, जो ‘यथार्थवादी’ की बजाय अधिक ‘आदर्शवादी’⁶ है, के परिणाम किस प्रकार के रहे। इस प्रकार, भारत में एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की है, जो विश्व राजनीति में एक समान भागीदार के रूप में उसे अन्य देशों से मान्यता दिलाएगी। एक ऐसा भारत जो अपने आचार विचार से अन्य सभी रास्तों को नहीं जोड़ता; बल्कि ऐसा भारत जो स्वार्थ से परे दूसरे देशों के हितों को मान्यता और सम्मान देता है, ताकि भारत के हितों को भी मान्यता और सम्मान मिले।

रक्षा :- सन 1857 उसके बाद भारत के असैनिकीकरण नेताजी भारत के इतिहास की सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण घटना मानते थे। इसके चलते स्वतंत्रता और स्वाधीनता का संपूर्ण समर्पण हो गया, जो संभवतः अंग्रेजों को बहुत पहले ही बाहर कर सकती थी। वह सैन्य शक्ति के महत्त्व को समझते थे, कोई राष्ट्र केवल इसी की बदौलत किसी भी साम्राज्यवादी विस्तार से अपनी रक्षा और भूराजनीति व अंतर्राष्ट्रीय मामलों में स्वयं को अपने बराबर के देशों के बीच प्रस्तुत कर सकता था। वह मानते थे कि स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान पर बड़े उद्योग तेजी से सेना का आधुनिकीकरण और सुधार करेंगे। उन्होंने कहा कि ‘अपने तीव्र औद्योगिकीकरण के साथ साथ अपनी थलसेना, नौसेना और वायुसेना के संगठन के लिए भारत को विदेशों से सहायता की जरूरत होगी। इसीलिए उसे सभी प्रकार की मशीनरी, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान व उपकरण, और वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी। अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए एक दीर्घकालिक अभिविन्यास प्रेरणा व आत्मविश्वास निर्माण कार्यक्रम हेतु उसे सैन्य विशेषज्ञों तथा सैन्य उपकरण की जरूरत भी होगी। इसलिए स्वतंत्र

भारत को सबसे पहले आत्मरक्षा के लिए आधुनिक युद्ध उद्योगों की स्थापना करनी होगी, जिसके लिए निस्संदेह तीव्र औद्योगिकीकरण की जरूरत होगी। जहाँ तक आंतरिक रक्षा का संबंध है वह समरसता, आंतरिक-शांति और सद्भावना को बढ़ावा देने हेतु एक नागरिक सुरक्षा निकाय का गठन करना चाहते थे।

औद्योगिकीकरण :- प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्य आवश्यक होता है जो नेताजी में भरा था। उनके व्यस्त राजनीतिक जीवन में भी उनके पास औद्योगिकीकरण की पूरी योजना थी और उसे वह राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे, जो 38 करोड़ भारतीयों की गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी को दूर करने में सहायता करेगा। वह लघु कुटीर और भारी उद्योगों को साथ लेकर राज्य प्रयोजित औद्योगिकीकरण चाहते थे। वह मानते थे कि भारत को आत्मनिर्भर और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र बनाने के लिए केवल खेती में सुधार पर्याप्त नहीं होगा, इसीलिए योजना आयोग की सहायता से तीव्र औद्योगिक विकास जरूरी है, मेघनाद शाह को दिए अपने साक्षात्कार में उन्होंने औद्योगिकीकरण से जुड़े मुद्दों पर प्रकाश भी डाला है। उन्होंने उद्योगों का “तीन शीर्षों के अंतर्गत वर्गीकरण किया भारी, मध्यम और कुटीर उद्योग। वह जातिगत बाधा को दूर कर गरीबी अशिक्षा और बेरोजगारी के पूर्ण उन्मूलन और सभी के लिये समान मौलिक अधिकारों के पक्षधर थे। ब्रिटिश शासन सामाजिक मतभेदों का एकमात्र कारण है, और स्वतंत्रता मिल जाने पर भारत अपना पूरा ध्यान सामाजिक समस्याओं के समाधान पर केन्द्रित करेगा। गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं में सर्वाधिक गंभीर सामाजिक समस्या है। ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की गरीबी के मुख्यतः दो कारण थे, –ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय उद्योगों का सुनियोजित विनाश और वैज्ञानिक खेती का अभाव। इसके साथ साथ वे पूरे विश्व में भारतीय दर्शन का प्रचार प्रसार भी करना चाहते थे, जिसके प्रति उनका मानना था कि उनमें कुछ ऐसा नया है, जिससे विश्व का परिचय कराया जाना चाहिए।

सामाजिक-आर्थिक पुनर्संरचना :- नेताजी सच्चे राष्ट्रवादी थे और मानते थे कि इस राष्ट्रभक्ति ने उनके सत्यम् (सत्यता), शिवम् (शुभत्व), सुंदरम् (सौंदर्य) और त्याग (बलिदान) के गुणों का संचार किया था। वे मानते थे कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता से प्रेरित यह सर्वोच्च मानवीय गुण है। उन्होंने भारतीय समाज को एक ऐसे रूप में देखा जहाँ व्यक्ति की पहचान उसके काम और कर्तव्यों से हो, न कि उसकी जाति, धर्म या लिंग से। उनकी सामाजिक अवधारणा का मुख्य लक्ष्य भारत को एक स्वतंत्र, समतामूलक और प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था। समानता और सामाजिक न्याय के अंतर्गत बस ने एक ऐसे समाज की परिकल्पना की, जहाँ जाति, धर्म और लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न हो। उनका मानना था कि स्वतंत्र भारत तभी सफल हो सकता है जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और अधिकार प्राप्त हों। आर्थिक समानता के तहत नेताजी का मानना था कि स्वतंत्र भारत में आर्थिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें गरीब और पिछड़े वर्गों को भी समुचित संसाधन मिल सकें। उन्होंने साम्यवाद से प्रभावित होकर आर्थिक नीतियों में सरकारी नियंत्रण और समाजवाद की वकालत की, जिससे गरीबी और बेरोजगारी का उन्मूलन किया जा सके। सुभाष

चंद्र बोस ने शिक्षा को समाज सुधार और जागरूकता का महत्वपूर्ण साधन माना। उनका मानना था कि शिक्षा को प्रगतिशील और व्यावहारिक होना चाहिए, ताकि यह केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रहे, बल्कि राष्ट्र निर्माण में सहायक हो। बोस का मानना था कि युवा शक्ति देश की सबसे बड़ी ताकत है। सुभाष चंद्र बोस का महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण उनके समाजवादी और प्रगतिशील विचारों का अभिन्न हिस्सा था। वे मानते थे कि किसी भी समाज या राष्ट्र की प्रगति में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है और उन्हें समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए। वे न केवल महिलाओं की समानता के पक्षधर थे, बल्कि उनके सशक्तिकरण और राष्ट्रनिर्माण में उनकी भूमिका को भी महत्व देते थे।

निष्कर्ष:- नेताजी सुभाष चंद्र बोस की दृष्टि में स्वतंत्र भारत एक समतामूलक, धर्मनिरपेक्ष और सशक्त राष्ट्र होगा, जो न केवल आंतरिक रूप से आत्मनिर्भर और एकजुट होगा, बल्कि वैश्विक मंच पर एक नेतृत्वकारी भूमिका निभाएगा। नेताजी का सपना था कि भारत एक सशक्त राष्ट्र बने, जो अपनी रक्षा के लिए सक्षम हो और विश्व मंच पर सम्मानजनक स्थान प्राप्त करे। उन्होंने सैन्य शक्ति को राष्ट्र के विकास और सुरक्षा का महत्वपूर्ण अंग माना, जिससे देश आंतरिक और बाहरी खतरों से सुरक्षित रह सके। उनका सपना था कि भारत अपने नागरिकों के लिए समानता, न्याय और स्वतंत्रता सुनिश्चित करे, और विश्व समुदाय में सम्मानित राष्ट्र के रूप में खड़ा हो।

संदर्भ सूची :-

1. बोस, सुगाता; 2011, हिज मैजेस्टी अपोनेंट: सुभाष चंद्र बोस एंड इंडिया'ज स्ट्रगल अगैस्ट एम्पायर, लंदन : हावर्ड विश्वविद्यालय प्रेस; पृ. 3
2. बोस, सुभाष चंद्र ; 1980, नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स, खंड 1 (ऐन इंडियन पिलीग्रीम एंड लेटर्स (1912-1921); कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान, पृ. 3
3. प्रसारण, सूचना मंत्रालय ; 1962, सेलेक्टेड स्पीचेस ऑफ सुभाष चंद्र बोस, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, सूचना एवं मंत्रालय, पृ. 92
4. बोस, सुभाष चंद्र ; 2016, नेताजी के संकलित आलेख, खंड 12, (चलो दिल्ली राइटिंग्स एंड स्पीचेस 1943-1945) ; कोलकाता:नेताजी शोध संस्थान, पृ. 295-296
5. बोस, लेटर्स टू एमिली, (जून,1939-जुलाई,1939); पृ. 211-215
6. पेलिंका, एंटन: 2017, डेमोक्रेसी इंडियन स्टाइल, सुभाषचन्द्र बोस एंड द क्रिएशन ऑफ इंडियाज पॉलिटिकल कल्चर, न्यू-यॉर्क राउटलेज टेलर एंड फ्रांसिस, पृ. 280-281

Contact no. :- 7357963107

Email:- pareekroshni060@gmail.com



राजा राम मोहन राय - सती प्रथा अंत के पुरोध

संध्या टम्टा,

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चंपावत
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा।

इस सोध पत्र में राजा राम मोहन राय द्वारा सती प्रथा का अंत करने के लिए किए गये उनके कार्य एवं उनके विचारों की जांच की जाएगी तथा राजा राम मोहन राय द्वारा सती प्रथा का खत्म करने में उनके दिए गये योगदान का अध्ययन किया जाएगा।

राम मोहन राय भारतीय समाज और धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में कई योगदान दिए जिसके आज भी लोग शुक्रगुजार हैं। राम मोहन राय ने भारत में स्वतंत्रता आंदोलन और पत्रकारिता के कुशल सहयोग से दोनों क्षेत्रों को गति प्रदान की उनके आंदोलनों ने जहा पत्रकारिता को चमक दी, वही उनकी पत्रकारिता ने आंदोलन को सही दिशा दिखने का कार्य किया। राम मोहन राय की जीवन के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी सती प्रथा का निवारण। इसका विरोध इतना था कि एक अवसर पर तो उनका जीवन ही खतरे में पड़ गया था वह अपने शत्रुओं के हमले से कभी नहीं घबराए उनके पूर्ण और निरंतर समर्थन का ही प्रभाव था, कि 1829 में वह सती प्रथा को बंद कराने में समर्थ हो सके।

इस शोध पत्र का उद्देश्य राजा राम मोहन राय द्वारा समाज में स्त्रियों की दशा देखते हुए महिला वर्ग के लिए किए गये कार्य को विभिन्न चरणों में बताना तथा प्राथमिक श्रोत एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों की समीक्षा के माध्यम से पूर्ण करना तथा बताना कि प्राचीन काल से आ रही इस सामाजिक बुराई को खत्म करने के लिए कैसे प्रेरणा के श्रोत बने।

- शब्द कुंजिया - ब्रह्म समाज के संस्थापक , भारतीय भाषाई प्रेस के प्रवर्तक , जन जागरण और सामाजिक सुधार आंदोलन के प्रेरणेता तथा बंगाल में नव जागरण युग के पितामह थे।

राजा राम मोहन राय के सतीदाह विरोधी आंदोलन का विवरण देते हुए यह बताया जा चुका है कि 'ब्रह्म सभा' और 'धर्म सभा' के बीच विवाद का मुख्य विषय था - सती प्रथा

लॉर्ड एमहर्स्ट का कार्यकाल 11 मार्च, 1818 को समाप्त हुआ था सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलन और कई एक उच्च स्तरीय सरकारी शिफारिसों के बावजूद लॉर्ड एमहर्स्ट इस प्रथा पर रोक लगाने को राजी नहीं हुए उन्होंने स्पष्ट ही इस प्रकार के किसी कानून बनाने के

विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था। सौभाग्य से जुलाई, 1818 को लॉर्ड विलियम बेन्टिक ने शासन और कार्यभार संभाला ब्रिटिश सरकार इस नृशंस प्रथा का उन्मूलन तो चाहती थी लेकिन उसे हमेशा डर बना रहता था कि कहीं इसे धर्म में सीधा हस्तक्षेप न समझा जाए। लॉर्ड बेन्टिक दृढ़ विचारों वाले व्यक्ति थे उनके सामने सती प्रथा के उन्मूलन का सवाल मुह बाएं खड़ा था। बेन्टिक के सामने एक ही प्रश्न था कि इस कार्य में सेना का सहयोग मिलेगा या नहीं? उन्हें इस मुद्दे पर विश्वास हो गया। दूसरी ओर न्यायालय से संबंधित सरकारी अधिकारी भी इस घृणित प्रथा के उन्मूलन के पक्ष में थे। अब वे जनता और प्रतिष्ठित वर्ग के विचारों को जानना चाहते थे। रूढ़ीवादी वर्ग के विचारों को वे पहले ही जानते थे इसी से अब उनके पास राम मोहन के सिवाय और कोई मोहरा न था। राम मोहन के साथ इस विषय पर लॉर्ड बेन्टिक की मुलाकात के बारे में एक रोचक विवरण प्रसिद्ध है।

लॉर्ड बेन्टिक ने राम मोहन से परामर्श करने के लिए निजी सचिव (एडी काँग) को भेजा। एडी काँग ने राम मोहन के घर जाकर बताया कि आपको गवर्नर जनरल साहब याद फरमाते हैं। राम मोहन ने जवाब दिया कि मैं अभी शास्त्र अध्ययन और धर्म चर्चा में व्यस्त हूँ इसलिए कृपया लॉर्ड साहब को सूचित करें कि मुझे उनके दरबार में जाने की फुरसत नहीं है एडी काँग ने लौटकर बेन्टिक को ठीक वैसा ही बता दिया। फिर उन्होंने एडी काँग को दुबारा भेजा कि जाकर कहो - मिस्टर बेन्टिक के साथ अनुग्रह पूर्वक साक्षात्कार कर सकें तो बड़ी कृपा होगी गवर्नर जनरल के शिष्टाचार और इस आग्रह को राम मोहन ठुकरा नहीं सके। इस साक्षात्कार का विवरण 17 जुलाई, 1819 के 'इंडिया गजट' में छपा था।¹

'इंडिया गजट' के इसी अंक में आगे लिखा था कि इस समय सरकार के सामने तीन रास्ते खुले हैं - पहला रास्ता केवल वर्तमान कानूनों का कड़ाई से पालन, दूसरा बंगाल और बिहार के प्रदेश में जहां, सती प्रथा का प्रचलन अधिक है, इस प्रथा पर निषेधाज्ञा जारी करना और तीसरे पूरे ब्रिटिश अधिकृत भारत में सती प्रथा पर कानूनी रोक लगाना।² यद्यपि राम मोहन पूरी तरह रोक लगाने के पक्ष में थे लेकिन वस्तुस्थिति का ध्यान रखते हुए वे इस प्रथा को धीरे-धीरे चुपचाप समाप्त करवाना चाहते थे क्योंकि उन्हें भी भी था की कहीं प्रतिक्रियावादी तत्वों के बहकावे में आकर अशिक्षित जनता विद्रोह न कर बैठे। लॉर्ड बेन्टिक ने अपनी कार्य-विवरणी में इस ओर संकेत किया था। उस काल की पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर जोर-सोर से समाचार और वाद-विवाद छापते रहते। अंग्रेजी पत्रिका 'बंगाल हरकारु' में 26 नवंबर, 1829 को फ्रांसिस किथ मार्टिन नामक एक अंग्रेज का पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध सफल आंदोलन का सर श्रेय राम मोहन को दिया था लेकिन इसी पत्रिका के संपादकीय लेख में 28 नवंबर, 1829 को राम मोहन और लॉर्ड बेन्टिक दोनों को ही समान रूप से इस उद्देश्य की सफलता के लिए सम्मानित करते हुए लिखा कि राम मोहन को लॉर्ड बेन्टिक की सहायता के बिना अपने उद्देश्यों में सफलता मिलने में कठिनाई का सामना करना पड़ता और बेन्टिक को इस ऐतिहासिक कदम में, राम मोहन के सहयोग के बिना सफलता मिलना कठिन होता।³

बेन्टिक और राम मोहन की मुलाकात और विचार विनिमय का फल यह हुआ था कि 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा पर रोक लगा दी गई।⁴

इधर 'धर्मसभा' भी चुप नहीं बैठी प्रतिक्रियावादी पुराण पंथी हिन्दुओं ने 17 जनवरी को संस्कृत कॉलेज के प्रांगण में एक सभा बुलाई। सभा में गवर्नर जनरल से प्राप्त उत्तर पढ़कर सुनाया गया और बताया गया की सरकार उनका आवेदन-पत्र विलायत भेजने को राजी हैं। धर्म सभा की ओर से सती प्रथा निरोधक अधिनियम के विरोध में ब्रिटिश पार्लियामेंट में अपील दायर कर दी गई। इसी सभा ने यह प्रस्ताव भी पास किया कि जो लोग हिन्दू धर्म का और शास्त्रीय नियमों का विरोध कर रहे हैं उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाए।⁵ उनका इशारा राम मोहन और उनके सहयोगियों की ओर था। तत्कालीन समाचार पत्रों में भी इस अध्यादेश के विरोध में भारी वाद-विवाद आरंभ हो गया, लेकिन राम मोहन भला कहा घबराने वाले थे। 1830 में उन्होंने इन आरोपों का उत्तर प्रकाशित किया - "Abstract of the arguments regarding of the burning of widows considered religious rites", जो इस विषय पर उनका अंतिम लेख था। धर्म सभा के घोषणा पत्र का यह सबसे करारा उत्तर था। इसी बीच 'ब्रह्म समाज' या सभा के अनुकरण पर 'धर्म सभा' की स्थापना के लिए रुढ़ीवादी हिन्दुओं की ओर से 6 फरवरी, 1830 को एक अपील प्रचारित की गई। इसके लिए एक भवन बनाने का भी प्रस्ताव रखा गया और निर्णय लिया गया की बीस हजार रुपये जमा हो जाने पर किसी उपयुक्त स्थान पर जमीन खरीदकर भवन निर्माण कार्य आरंभ किया जाएगा।⁶ इसमें बताया गया कि तब जंजातमक कविताएं भी प्रकाशित होने लगी थी जो लोगों की जुबान पर चढ़ने लगी थी। गली-कूचों में हंसी और मजाक के फवारे छूटा करते थे। आंदोलन कलकत्ता शहर से निकालकर गाँव और कस्बों में भी फैल गया जहां लोग प्रतिद्वंदी दलों में बटकर बहसों में हिस्सा लिया करते। कई ब्राह्मणों का जो राम मोहन के 'ब्रह्म समाज' में सम्मिलित हुए थे, समाज से बहिष्कार कर दिया गया। इसी भयंकर तनाव के बीच ब्रह्म समाज के नए भवन का 23 जनवरी, 1830 को उद्घाटन हुआ।

सती प्रथा उन्मूलन के सफल प्रयास ने हिन्दू नारी समाज को सदियों से चले आए अत्याचार से मुक्त किया था इन्हीं दिनों राम मोहन नारी जाति से संबंधित अन्याय, कुछ और सामाजिक दुराचारों के विरुद्ध भी आवाज उठा रहे थे नारी समाज के प्रति राम मोहन के मन में कितनी करुणा और ममता और दया थी उसका परिचय उनके सती प्रथा संबंधित लेखों में अच्छी तरह मिलता है। इन लेखों में उन्होंने बहुविवाह के विरोध में भी आवाजें उठाईं। इसके अतिरिक्त कन्या-विक्रय या कुलीन प्रथा का भी विरोध किया था। बहुविवाह के बारे में उनका विचार था कि सरकारी अनुमति के बिना किसी को एक पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी की इजाजत न दी जाए। इस विषय में उन्होंने मनु संहिता और याज्ञवल्क्य संहिता से उद्धृत करके अपने तर्क की पुष्टि करते हुए दिखाया था कि बहुविवाह का रिवाज हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध है क्योंकि शास्त्रों में स्पष्टतः दुश्चरित्र, बीमार या निसन्तान होने पर ही दूसरे विवाह की अनुमति दी गई है इसी से राम मोहन का सुझाव था मैजिस्ट्रेट या

सरकारी अफसर को कानूनी अधिकार दिया जाए कि वह आवेदन-पत्र के आधार पर केवल प्रमाणित होने पर दूसरे विवाह की अनुमति दें। इस प्रकार नारी जाति को दुर्गति से राहत मिलेगी और आत्महत्या की संख्या में भी कमी होगी।

यह स्पष्ट है कि राम मोहन को इस काल में भारी मानसिक तनाव और परिश्रम का सामना करना पड़ा। उनके जैसे स्वस्थ व्यक्ति पर भी इसका प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था। फलस्वरूप 1827-28 के दौरान वे दो-तीन बार गम्भीर रूप से बीमार पड़ गए। इन बीमारियों का हवाला उस काल के पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध है।⁷

संदर्भ और टिप्पणिया

- 1 राजा राम मोहन राय : पृष्ठ 155 से 156 ये घटना रेवरंड मैकडोनाल्ड के एक व्याख्यान से उद्धृत है जो बाद में हेराल्ड प्रेस से 1879 में प्रकाशित हुई थी।
- 2 राजा राम मोहन राय : 156 पृष्ठ
- 3 Majumdar : Ram mohan roy and progressive movement in India : पृष्ठ 153 में 'बंगाल हरकारा' में 16 नवंबर से 30 नवंबर 1819 तक मार्टिन के पत्र।
- 4 पृष्ठ 159 : सती प्रथा का अंत
- 5 मुखोपाध्याय : राम मोहन राय ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगाल) : पृष्ठ 311 से पृष्ठ 313
- 6 Majumdar : पृष्ठ 163 से 165 अपील की पूरी प्रतिलिपि के लिये।
- 7 राम मोहन : पृष्ठ 237 संपादकीय पाद टिप्पणी में मजूमदार की पुस्तक का हवाला देते हुए राम मोहन की बीमारी से संबंधित विवरण प्रस्तुत किए गए हैं।



डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार : प्रखर राष्ट्रवादी एवं मातृभूमि के उपासक

विजय सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

परिचय

अपने जीवन के आरंभिक वर्षों से ही देश भक्ति एवं मातृभूमि के लिए समर्पण की भावना से ओतप्रोत 'डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार' राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में क्रांतिकारी गतिविधियों एवं अभियानों के माध्यम से सक्रिय रहे। 'डॉ. हेडगेवार के पूर्वज तेलंगाना के गांव में रहने वाले एक तेलुगु ब्राह्मण परिवार से थे। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में इन भूमिहीन ब्राह्मण परिवारों को मुगल शासन के दौरान अपना गांव छोड़कर महाराष्ट्र आना पड़ा और वे लोग नागपुर के पास आकर बस गए।'¹

'डॉ. हेडगेवार का जन्म उगाडी त्यौहार (हिंदू नववर्ष) के दिन वर्ष 1889 में नागपुर में हुआ। वे जन्मजात देशभक्त थे। जब वे प्राथमिक विद्यालय में पढ़ रहे थे, तब भी उन्होंने 22 जून 1897 को महारानी विक्टोरिया के राज्याभिषेक की साठवीं वर्षगांठ के अवसर पर बांटी गई मिठाई खाने से इनकार कर दिया था। उनके देशप्रेम का एक और उदाहरण देखने को तब भी मिला, जब डॉ. साहब नागपुर के 'नील सिटी हाई-स्कूल' में पढ़ रहे थे, तो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी परिपत्र का उल्लंघन करते हुए 'वंदे मातरम' गाने के कारण उन्हें निष्कासित कर दिया गया।'²

क्रांतिकारी गतिविधियों में डॉ. हेडगेवार की भूमिका

'वर्ष 1910 में 'डॉ. बी.एस. मुंजे' के सहयोग से डॉ. हेडगेवार मेडिकल की शिक्षा के लिए कोलकता गए, जहां उन्होंने 'श्याम सुंदर चक्रवर्ती' जैसे क्रांतिकारियों के साथ रहते हुए 'युगांतर' एवं 'अनुशीलन समिति' जैसे गुप्त क्रांतिकारी संगठनों में कार्य किया। अनुशीलन समिति में कार्य के दौरान उन्होंने कई क्रांतिकारियों से संबंध विकसित किए जिनमें 'रामप्रसाद बिस्मिल' भी शामिल थे।'³ 'अपने कॉलेज की पढ़ाई के दौरान डॉ. हेडगेवार बंगाल और मध्य प्रांत की क्रांतिकारी गतिविधियों के बीच कड़ी के तौर पर काम कर रहे थे। डॉ. हेडगेवार अक्सर नागपुर आते वक्त अपने साथ शस्त्र छुपा कर लाते थे।'⁴

‘वर्ष 1916 में नागपुर लोटने पर उन्होंने क्रांतिकारी संघर्ष में बने रहने का निर्णय लिया। ‘नागपुर जिला गजेटियर’ में यह बताया गया कि वह नागपुर में क्रांतिकारी आंदोलन के पीछे का दिमाग थे। गजेटियर में यह भी बताया गया कि उन्होंने भारत के अन्य हिस्सों में क्रांतिकारी समूहों के साथ संपर्क विकसित किए और अप्रत्यक्ष रूप से वह इंग्लैंड के शत्रुओं के साथ संपर्क में थे।⁵ वर्ष 1916 में, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, डॉ. हेडगेवार क्रांतिकारियों को जुटाने में लग गए और मध्य प्रांत में उन्होंने करीब 150 क्रांतिकारियों का दल ‘क्रांति दल’ तैयार किया। डॉ. हेडगेवार ने पंजाब, राजस्थान और देश के अन्य हिस्सों के क्रांतिकारियों से संपर्क बनाएं। उन्होंने वर्ष 1918 में कांग्रेस के कुछ नुमाइंदों के साथ मिलकर ‘राष्ट्रीय मंडल’ का गठन भी किया। इस मंडल ने पूर्ण स्वराज के लिए आंदोलन शुरू किया और एक पत्रिका ‘संकल्प’ भी निकाली।

डॉ. हेडगेवार की कांग्रेस में सक्रियता

‘प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की हार के साथ ही क्रान्तिकारियों का जोश कम हो गया। जनता की उदासीनता और कई साथी क्रांतिकारियों की ओर से प्रतिबद्धता की कमी ने डॉ. हेडगेवार को क्रोधित किया। यह संभव है कि उनके राजनीतिक गुरु रहे ‘डॉ. बी.एस. मुंजे’ ने उन्हें ‘भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस’ में शामिल होने के लिए राजी किया हो।⁶ डॉ. हेडगेवार ‘तिलक’ के समर्थकों में से एक थे। ‘तिलक कांग्रेस में शामिल हुए तो तिलक समर्थकों की बड़ी तादाद कांग्रेस में शामिल हुई। डॉ. हेडगेवार भी कांग्रेस में तिलक को देखते हुए भी शामिल हुए थे।⁷ ‘वर्ष 1920 के दशक की शुरुआत में हेडगेवार कांग्रेस पार्टी की गतिविधियों में और भी अधिक गहराई से शामिल हो गए।⁸ तिलक की मृत्यु के बाद डॉ. हेडगेवार निराश अवश्य हुए, परंतु फिर भी वह कांग्रेस में सक्रिय रहे।

वर्ष 1920 में ‘महात्मा गांधी’ द्वारा ‘असहयोग आंदोलन’ शुरू किया गया। ‘गांधी से डॉ. हेडगेवार की असहमति की एक बड़ी वजह थी, गांधी द्वारा ‘ऑल इंडिया खिलाफत कॉन्फ्रेंस’ में मुसलमानों की मांगे पूरी न होने पर ‘असहयोग आंदोलन’ शुरू करने का ऐलान करना। हालांकि हेडगेवार ‘खिलाफत मूवमेंट’ के खिलाफ थे, लेकिन उन्होंने गांधी के असहयोग आंदोलन का समर्थन किया।⁹ इस आंदोलन में डॉ. हेडगेवार ने भी सक्रिय भूमिका निभाई। ‘वर्ष 1921 में राजद्रोह कानून के तहत ब्रिटिश प्रशासन द्वारा उन्हें 1 वर्ष की सजा सुनाई गई।¹⁰ ‘कांग्रेस द्वारा अपनाई गई मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति से चिंतित होकर और गांधी के विचारों से उनकी असहमति के कारण, डॉ. हेडगेवार ने कांग्रेस की गतिविधियों से दूरी बना ली।¹¹

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना

‘डॉ. हेडगेवार ने क्रान्तिकारी अभियानों, सत्याग्रह और संवैधानिक सुधारों की मांगों जैसी पद्धतियों के साथ प्रयोग किए थे, लेकिन उन्हें जल्द ही यह एहसास हो गया, कि उपरोक्त तीनों पद्धतियां, राजनैतिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय कायाकल्प हासिल करने में असफल रहीं थीं। अपनी युवावस्था से ही उन्होंने भारत की विदेशी प्रभुत्व को रोकने में असमर्थता को समझने के लिए कारणों की खोज करी। वह इस बात से परेशान थे, कि औपनिवेशिक प्रशासकों

का एक छोटा समूह इतनी आसानी से भारत जैसे एक विशाल देश पर शासन कैसे कर सकता है। डॉ. हेडगेवार का मानना था कि स्वतंत्रता और राष्ट्रीय पुनरुत्थान का लक्ष्य केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब भारत की कमजोरी का मूल कारण खोज लिया जाए। वर्ष 1924-25 में किसी समय उन्होंने खुद को संतुष्ट किया, कि उन्होंने कारण का पता लगा लिया है। उनके अनुसार, एक बार राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए प्रतिबद्ध व्यक्तियों का एक केंद्र तैयार हो जाने के बाद, राष्ट्रीय पुनरुत्थान के मिशन को जारी रखने में कोई कठिनाई नहीं होगी, जिसमें निस्संदेह, स्वतंत्रता को इसके उद्देश्यों में से एक के रूप में शामिल किया जाएगा। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण मार्ग था, एक अनुशासित संगठन तैयार करना ताकि कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जा सके।¹²

‘इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 27 सितंबर 1925 को विजयदशमी के दिन ‘राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ’ की स्थापना की।¹³ डॉ. हेडगेवार कहते थे, कि हिंदू समाज को संगठित करने के लिए विचार पद्धति के साथ-साथ कार्य पद्धति की भी आवश्यकता है। इसके लिए दैनिक ‘शाखा’ का मॉडल तैयार हुआ, जिसमें सब एक साथ, एक जगह और एक विचार के लिए इकट्ठा हों।¹⁴ डॉ. हेडगेवार का मानना था, कि जब भारत की आबादी के एक फ़ीसदी हिस्से को हम संघ का स्वयंसेवक बना लेंगे तो भारत में हम जैसा चाहेंगे, वैसा ही होगा।¹⁵ ‘संघ को शुरू करने से पहले डॉ. हेडगेवार कोलकता में अनुशीलन समिति के सदस्य रहे थे, उन्होंने समिति के ट्रेनिंग के तरीकों को भी संघ में इस्तेमाल किया।¹⁶

‘डॉ. हेडगेवार संघ को शुरुआत से ही राजनीति से दूर रखना चाहते थे, इसलिए जब उन्होंने वर्ष 1930 में जंगल सत्याग्रह में शामिल होने का फैसला किया, तो सरसंघचालक के दायित्व से इस्तीफा दे दिया और जिम्मेदारी अपने मित्र डॉ. एल.वी.परांजपे को सौंपकर जेल चले गए। फिर सत्याग्रह खत्म होने पर लौटकर सरसंघचालक की जिम्मेदारी संभाली।¹⁷ ‘उनका संघ को राजनीति से दूर रखने का एक और उदाहरण देखने को तब मिलता है, जब हैदराबाद के निजाम के खिलाफ आंदोलन में संघ के शामिल होने के लिए स्वयंसेवकों का दबाव हुआ, तो डॉ. हेडगेवार ने स्पष्ट कर दिया कि संघ किसी भी तरह के राजनीतिक आंदोलन या गतिविधियों में शामिल नहीं होगा।¹⁸ डॉ. हेडगेवार ने जब संघ को राजनीतिक मंच में बदलने और फिर वर्ष 1935 के बाद के चुनावों में हिस्सा लेने से भी इनकार कर दिया, तो बहुत से स्वयंसेवकों को निराशा हुई।¹⁹ ‘अंततोगत्वा ‘सिंदी बैठक’ में यह तय हुआ कि संघ राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेगा, लेकिन स्वयंसेवक चाहे तो निजी स्तर पर शामिल हो सकेंगे। लेकिन संघ के नेताओं को उनमें हिस्सा लेने से रोका गया।²⁰ इस प्रकार, डॉ. हेडगेवार ने संघ को एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन के रूप में स्थापित कर दिया।

डॉ. हेडगेवार ‘राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ’ के माध्यम से भारत को एक मजबूत राष्ट्र के रूप में खड़ा करने का सपना लिए व्यक्ति निर्माण से राष्ट्र निर्माण का कार्य अपने अंत समय तक करते रहे। ‘जैसा कि वह कहते थे, “हमें राष्ट्र के उत्थान के लिए पूरी तरह समर्पित लाखों-लाख युवकों की आवश्यकता है, वे ही अत्यंत आवश्यक राष्ट्रीय जागृति ला सकते हैं और इस

राष्ट्रीय चेतना को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचना होगा। तभी हमारे देश को घेरने वाली गंभीर समस्याओं का समाधान हो सकेगा”।²¹

निष्कर्ष

अतः 'डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार' की संपूर्ण जीवन यात्रा को एक देशभक्त सामाजिक सन्यासी के द्वारा अपनी मातृभूमि को दासता के बंधनों से मुक्त कराने एवं भारत को एक मजबूत राष्ट्र के रूप में खड़ा करने के उनके निरंतर संघर्ष के तौर पर देखा जा सकता है। डॉ. हेडगेवार का राष्ट्रवादी दर्शन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार पर आधारित था। उन्होंने प्राचीन हिंदू दर्शन एवं मूल्यों को अपनी हिंदू राष्ट्र की संकल्पना का आधार बनाया, जिसे प्राप्त करने हेतु उन्होंने 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसे अनुशासित एवं मजबूत संगठन का निर्माण किया। आज भी, डॉ. हेडगेवार द्वारा स्थापित विचार-परंपरा, भारतीय राजनीति एवं समाज को अत्यधिक प्रभावित कर रही है और निरंतर अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिवेदी, विजय, “संघम् शरणम् गच्छामि: आरएसएस के सफ़र का एक ईमानदार दस्तावेज़”, एका वेस्टलैंड बुक्स, चेन्नई, 2020, पृ.सं-94.
2. सिंह, एम.के., “राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: सिंस इनसेप्शन”, सुरेंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं- 69.
3. वही; पृ.सं-03.
4. त्रिवेदी, विजय, “संघम् शरणम् गच्छामि: आरएसएस के सफ़र का एक ईमानदार दस्तावेज़”, एका वेस्टलैंड बुक्स, चेन्नई, 2020, पृ.सं-96.
5. एंडरसन, वॉल्टर एवं डामले, श्रीधर, “द ब्रदरहुड इन सैफरॉन: द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एंड हिन्दू रिवाइवलिज्म”, पैंगुइन बुक्स, इंडिया, 2019.
6. वही;
7. वाजपेई, पुण्य प्रसून, “आर.एस.एस: संघ का सफ़र 100 वर्ष, बुक्स प्रकाशन, इंडिया, 2020, पृ.सं-12.
8. एंडरसन, वॉल्टर एवं डामले, श्रीधर, “द ब्रदरहुड इन सैफरॉन: द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एंड हिन्दू रिवाइवलिज्म”, पैंगुइन बुक्स, इंडिया, 2019.
9. त्रिवेदी, विजय, “संघम् शरणम् गच्छामि: आरएसएस के सफ़र का एक ईमानदार दस्तावेज़”, एका वेस्टलैंड बुक्स, चेन्नई, 2020, पृ.सं-101.
10. सिंह, एम.के., “राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: सिंस इनसेप्शन”, सुरेंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं- 03.
11. वाजपेई, पुण्य प्रसून, “आर.एस.एस: संघ का सफ़र 100 वर्ष, बुक्स प्रकाशन, इंडिया, 2020, पृ.सं-13.
12. एंडरसन, वॉल्टर एवं डामले, श्रीधर, “द ब्रदरहुड इन सैफरॉन: द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एंड हिन्दू रिवाइवलिज्म”, पैंगुइन बुक्स, इंडिया, 2019.

- 13.सिंह, एम.के., "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: सिंस इनसेप्शन", सुरेंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं-72.
- 14.त्रिवेदी, विजय, "संघम् शरणम् गच्छामि: आरएसएस के सफ़र का एक ईमानदार दस्तावेज़", एका वेस्टलैंड बुक्स, चेन्नई, 2020, पृ.सं-109.
- 15.वही; पृ.सं-105.
- 16.वही; पृ.सं-104.
- 17.वही; पृ.सं-109.
- 18.वही; पृ.सं-114-115.
- 19.वही; पृ.सं-114.
- 20.वही; पृ.सं-115.
- 21.सिंह, एम.के., "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: सिंस इनसेप्शन", सुरेंद्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं-09.



लाल बहादुर शास्त्री - एक विशिष्ट व्यक्तित्व

जोया, शोधार्थी, राजनीतिशास्त्र विभाग,
प्रभात रंजन सिंह, शोधार्थी, राजनीतिशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रारंभिक जीवन

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्टूबर, 1904 को मुगलसराय, उत्तर प्रदेश में मुंशी शारदा प्रसाद श्रीवास्तव के घर हुआ था। जब वह अठारह महीने के हुए, तो उनके पिता का निधन हो गया। उनकी मां अपने पिता हजारीलाल के घर मीरजापुर चली गयीं। कुछ समय बाद उनके नाना भी नहीं रहे। बिना पिता के बच्चे के पालन-पोषण में उनके मामा रघुनाथ प्रसाद ने उनकी माँ की बहुत मदद की। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा अपने ननिहाल में रहकर ही प्राप्त की। उनकी आगे की शिक्षा हरिश्चंद्र हाई स्कूल और काशी विद्यापीठ में हुई। काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि प्राप्त करते ही उस प्रबुद्ध बालक ने जन्म से प्रचलित जाति सूचक शब्द श्रीवास्तव को हमेशा के लिए हटा दिया और अपने नाम के आगे शास्त्री जोड़ लिया। इसके बाद 'शास्त्री' शब्द 'लाल बहादुर' के नाम का पर्याय बन गया।

शैक्षिक जीवन

लाल बहादुर शास्त्री की शिक्षा ने उनके राजनीतिक और वैचारिक दृष्टिकोण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा मुगलसराय में पूरी की और बाद में काशी विद्यापीठ, वाराणसी में उच्च शिक्षा प्राप्त की। शिक्षाविदों के प्रति उनका समर्पण और सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों में उनकी रुचि उनके विश्वविद्यालय के वर्षों के दौरान उभरने लगी।

वित्तीय बाधाओं के बावजूद, शास्त्री ने अपनी शिक्षा जारी रखी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डिग्री पूरी की। शैक्षणिक माहौल ने उन्हें भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों से अवगत कराया और वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष में सक्रिय रूप से शामिल हो गए।

देश के लिए उनका योगदान - राजनीतिक जीवन

शास्त्री जी ने राजनीति में प्रवेश करके देश की दिशा और दशा बदलने का प्रयास किया। वर्ष 1937 में प्रांतीय विधानसभाओं के चुनाव में उन्होंने उत्तर प्रदेश विधान सभा की सदस्यता

प्राप्त की। इसी क्रम में आजादी के बाद सत्ता में आई कांग्रेस ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के नेता लाल बहादुर शास्त्री के महत्व को समझा। परिणामस्वरूप, वर्ष 1947 में उन्हें उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में मंत्री के रूप में शामिल किया गया। वर्ष 1951 में वे पार्टी महासचिव बने। इसके बाद शास्त्री जी को केंद्रीय रेल और परिवहन मंत्री के रूप में चुना गया। लेकिन, उसी समय, वर्ष 1955 में दक्षिण भारत में अरियालुर के पास एक रेल दुर्घटना में कई लोग घायल हो गए, जिसके लिए उन्होंने स्वयं को जिम्मेदार ठहराते हुए रेल मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। रेल दुर्घटना पर चली लंबी बहस का जवाब देते हुए उन्होंने कहा- "शायद मेरे छोटे कद और नम्रता के कारण लोग सोचते हैं कि मैं ज्यादा ताकतवर नहीं बन पाता, हालांकि शारीरिक तौर पर मैं ताकतवर नहीं हूँ लेकिन मुझे लगता है कि अंदर से मैं वैसा कमजोर भी नहीं हूँ।"

वर्ष 1961 में उन्हें भारत के गृह मंत्री और 'भ्रष्टाचार विरोधी समिति' में नियुक्त किया गया। उसी समय, भारत-चीन युद्ध से हताश हुए नेहरू जी का समर्थन करने के लिए शास्त्री जी को बिना विभाग के मंत्री के रूप में कैबिनेट में शामिल किया गया था। भारत-पाकिस्तान युद्ध (1965) के दौरान भारत खाद्य संकट से जूझ रहा था। इस समस्या का समाधान "हरित क्रांति" के माध्यम से किया गया। परिणामस्वरूप, भारत खाद्यान्न निर्यातक देशों में से एक बन गया।

शास्त्री जी हमेशा भारत के पड़ोसी देशों के साथ अपने संबंधों में शांति और संतुलन बनाए रखने का प्रयास करते थे। शास्त्री जी ने कई वर्षों तक अपनी निस्वार्थ सेवा भावना, कर्तव्य परायणता, ईमानदारी और करुणा जैसे गुणों के कारण जनता के बीच अपनी अलग पहचान बनाई। विनम्र, दृढ़ इच्छाशक्ति वाले, सहनशील और जबरदस्त आंतरिक शक्ति वाले शास्त्री जी लोगों के बीच एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरे जो लोगों की भावनाओं को समझते थे। उन्होंने अपनी दूरदर्शी सोच से भारत को विश्व पटल पर एक अलग पहचान दिलाई।

प्रधान मंत्री (1964-1966)

तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की 27 मई 1964 को कार्यकाल के दौरान मृत्यु हो गई। तत्कालीन कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के. कामराज ने 9 जून को शास्त्री जी को प्रधान मंत्री बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 11 जून 1964 को प्रधान मंत्री के रूप में अपने पहले प्रसारण में, शास्त्री जी ने कहा कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक समय आता है जब वह इतिहास के चौराहे पर खड़ा होता है और उसे चुनना होता है कि उसे किस रास्ते पर जाना है। लेकिन हमारे लिए किसी कठिनाई या झिझक की जरूरत नहीं है, दाएं या बाएं देखने की जरूरत नहीं है। हमारा रास्ता सीधा और स्पष्ट है - सभी के लिए स्वतंत्रता और समृद्धि के साथ समाजवादी लोकतंत्र का निर्माण, और सभी देशों के साथ विश्व शांति और मित्रता बनाए रखना।

शास्त्री जी की विदेश नीतियाँ

शास्त्री जी ने नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति को जारी रखा लेकिन सोवियत संघ के साथ भी घनिष्ठ संबंध बनाए। 1962 के भारत-चीन युद्ध और चीन और पाकिस्तान के बीच सैन्य संबंधों के गठन के बाद, शास्त्री सरकार ने देश के रक्षा बजट का विस्तार करने का

निर्णय लिया। 1964 में, शास्त्री ने भारतीय धरती पर उतरने पर प्रवासियों को आश्रय देने के लिए पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने के लिए स्थानीय सरकारों की प्रतिबद्धता पर हस्ताक्षर किए।

शास्त्री जी की घरेलू नीतियां

शास्त्री ने नेहरू की मंत्रिपरिषद के कई सदस्यों को बरकरार रखा। लाल बहादुर शास्त्री के कार्यकाल में 1965 का मद्रास हिंदी विरोधी आंदोलन देखा गया। भारत सरकार ने लंबे समय से हिंदी को भारत की एकमात्र राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया था। इसका गैर-हिन्दी भाषी राज्यों विशेषकर मद्रास राज्य द्वारा विरोध किया गया। स्थिति को शांत करने के लिए, शास्त्री ने आश्वासन दिया कि जब तक गैर-हिंदी भाषी राज्य चाहेंगे तब तक अंग्रेजी को आधिकारिक भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहेगा। शास्त्री के आश्वासन के बाद दंगे शांत हो गए, साथ ही छात्र आंदोलन भी शांत हो गया।

शास्त्री जी के काल में पाकिस्तान से युद्ध

1 अगस्त 1965 को, आतंकवादियों और पाकिस्तानी सैनिकों की बड़ी घुसपैठें शुरू हुईं। भारत ने अपनी सेनाएं युद्धविराम रेखा (अब नियंत्रण रेखा) के पार भेज दीं और सामान्य पैमाने पर युद्ध छिड़ जाने पर लाहौर के पास अंतर्राष्ट्रीय सीमा पार करके पाकिस्तान को धमकी दी। पंजाब में बड़े पैमाने पर टैंक युद्ध हुए, और पाकिस्तानी सेना ने उपमहाद्वीप के उत्तरी भाग में बढ़त हासिल की, भारतीय सेना ने कश्मीर में हाजी पीर में प्रमुख चौकी पर कब्जा कर लिया, और पाकिस्तानी शहर लाहौर को तोपखाने और मोर्टार से आग के हवाले कर दिया। भारत-पाक युद्ध 23 सितंबर 1965 को संयुक्त राष्ट्र-आदेशित युद्धविराम के साथ समाप्त हुआ।

ताशकंद घोषणा [1966]

ताशकंद घोषणा, भारत के प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा 10 जनवरी, 1966 को हस्ताक्षरित समझौता है। मोहम्मद अयूब खान ने पाकिस्तान और भारत के बीच अगस्त 1965 से सितंबर 1965 तक चलने वाले युद्ध को समाप्त कर दिया। 22 सितंबर, 1965 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा सीज़ फायर सुरक्षित कर लिया गया था।

भारत और पाकिस्तान के बीच झड़पें अप्रैल 1965 में शुरू हुईं और अगस्त में गहन शत्रुता में बदल गईं, जब अयूब ने कश्मीर के विवादित क्षेत्र में पाकिस्तानी सेना की घुसपैठ के लिए एक अभियान चलाया ताकि भारतीय शासन के खिलाफ विद्रोह चलाया जा सके। भारत ने दृढ़ता से जवाब दिया, और दोनों देशों ने एक व्यापक संघर्ष लड़ा जिसमें दोनों पक्षों ने उल्लेखनीय जीत हासिल की और क्षेत्र पर कब्जा कर लिया, जबकि सैनिकों और सामग्री की काफी हानि भी हुई। पाकिस्तान को कश्मीर में जिस विद्रोह के पनपने की उम्मीद थी, वह भी जड़ें जमाने में नाकाम रहा। जिस समय पाकिस्तान और भारत संघर्ष विराम पर सहमत हुए, पर्यवेक्षकों ने माना कि संघर्ष गतिरोध पर पहुँच गया है। हालाँकि, पाकिस्तान ने कश्मीर में

हमले की पहल की थी जिससे युद्ध शुरू हुआ, युद्ध को अयूब के लिए एक रणनीतिक और कूटनीतिक विफलता के रूप में देखा गया और शास्त्री की पूरे भारत में सराहना की गई।

संघर्ष के अधिक स्थायी समाधान को सुरक्षित करने के लिए, जनवरी 1966 में उज़्बेक सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक (वर्तमान उज़्बेकिस्तान) के ताशकंद में एक बैठक आयोजित की गई थी। समझौते की मध्यस्थता सोवियत प्रधान मंत्री एलेक्सी कोसिगिन ने की थी, जिन्होंने शास्त्री और अयूब को ताशकंद में आमंत्रित किया था। जैसा कि ताशकंद घोषणा में कहा गया है, दोनों व्यक्तियों ने “अपने देशों के बीच सामान्य और शांतिपूर्ण संबंधों को बहाल करने और अपने लोगों के बीच समझ और मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ावा देने के लिए अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त किया।”

रहस्यमय अंत

11 जनवरी 1966 की रात को ताशकंद में लाल बहादुर शास्त्री की आकस्मिक मृत्यु आज भी रहस्य में डूबी हुई है। आज भी ज्यादातर लोग ये मानने को तैयार नहीं हैं कि उनकी दिल का दौरा पड़ने से स्वाभाविक मौत हुई थी। दरअसल, तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ताशकंद समझौते के लिए सोवियत संघ के शहर ताशकंद गए थे। वहां उन्होंने 10 जनवरी 1966 को पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खान के साथ एक ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते को लेकर उन पर काफी दबाव था। समझौते के बाद रात 1:32 बजे दिल का दौरा पड़ने से उनकी मौत हो गई।

निष्कर्ष

शास्त्री जी को उनकी सादगी, देशभक्ति और ईमानदारी के लिए पूरा भारत श्रद्धा से याद करता है। वर्ष 1966 में उन्हें **भारत रत्न** से सम्मानित किया गया। शास्त्री जी ने एक स्वतंत्रता सेनानी के साथ-साथ हमारे देश के प्रधान मंत्री के रूप में भी हमारे देश को बहुत कुछ दिया है। उन्होंने भारतीयों का सम्मान और प्यार अर्जित किया है। उनका नारा ‘जय जवान जय किसान’ आज भी लोकप्रिय है। वह एक सच्चे देशभक्त थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन देश की सेवा में समर्पित कर दिया। वह सबसे पसंदीदा भारतीय राजनीतिक नेताओं में से एक थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत: लाल बहादुर शास्त्री (1966)। द राउंड टेबल: द कॉमनवेल्थ। जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स
2. कोठारी आर. (1964). भारत में कांग्रेस “सिस्टम”। एशियाई सर्वेक्षण, 4(12), 1161-1173.
3. मनकेकर डीआर (1965)। लाल बहादुर: एक लोकप्रिय राजनीतिक जीवनी ।
4. प्रसाद आर. (1991). लाल बहादुर शास्त्री के साथ दिन : पिछले सात वर्षों की झलकियाँ . एलाइड पब्लिशर्स.

5. शास्त्री ए., और चौधरी पी. (2014). लाल बहादुर शास्त्री: नेतृत्व के सबक . विजडम विलेज.
6. शास्त्री एल.बी. (1974)। लाल बहादुर शास्त्री के चुनिंदा भाषण, 11 जून, 1964 से 10 जनवरी, 1966 तक। प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
7. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Lal_Bahadur_Shastri
8. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Tashkent_Declaration
9. “श्री लाल बहादुर शास्त्री” , pmindia.gov.in , भारत सरकार , मूल से 17 जून 2019 को पुरालेखित , 19 मई 2019 को पुनः प्राप्त
10. गुहा, रामचंद्र. गांधी के बाद भारत: दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र का इतिहास (2007) पृ. 390-405.
11. गुजराती, बलवंत सिंह, सं. लाल बहादुर शास्त्री का अध्ययन (स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1966).
12. श्रीवास्तव, सी.पी. लाल बहादुर शास्त्री: राजनीति में सच्चाई का जीवन (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995)आईएसबीएन 0-19-563499-3
13. जॉन नॉयस. लाल बहादुर शास्त्री: एक अंग्रेजी भाषा ग्रंथ सूची . लुलु.कॉम, 2002.
14. पवन चौधरी और अनिल शास्त्री , लाल बहादुर शास्त्री: नेतृत्व के सबक। विजडम विलेज पब्लिकेशन्स, 2014 आईएसबीएन 9789380710365



“यशवंतराव होलकर की जीवनी”

प्रथम भनोत्रा, शोध छात्र,

डॉ सुनीता मालवीय, प्राध्यापक इतिहास,

श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय महाविद्यालय इंदौर (मध्यप्रदेश)

होलकर वंश की स्थापना और यशवंत राव होलकर से पूर्व होलकर वंश के शासकों की पृष्ठभूमि :

भारत के हर प्रांत हर क्षेत्र का गौरवशाली रहा है जिससे हमारा मध्यप्रदेश भी अछूता या विलग नहीं। मालवा के होलकर राजवंश ने अपनी गौरवशाली परम्परा और वीरोचित कार्यों से इतिहास में एक गरिमामय स्थान प्राप्त किया था।

होलकर वंश के पूर्वज 13 वीं शताब्दी में मुस्लिम अराजकता के समय उत्तरभारत के मथुरा से चित्तौड़ पहुँचे और फिर चित्तौड़ से महाराष्ट्र “होलगांव” में निवास करने लगे। इसी गांव के नाम पर वंश का नाम होलकर पड़ गया। संस्थापक मल्हाराव होलकर ने 26 मई 1728 ई. को मालवा में होलकर राज्य की नींव डाली थी। उन्होंने 52 युद्धों के विजेता के रूप में इतिहास में खास पहचान बनाई। परंतु 20 मई 1766 ई. में आलमपुर में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र खंडेराव का पहले ही देहांत हो गया था। इस कारण उनके पौत्र मालेराव होलकर सिंहासन पर बैठे। और राज्य सिंहासन की संरक्षिका के तौर पर मां अहिल्याबाई ने जिम्मेदारी संभाली थी। परंतु राज सम्भाल रहे महाराजा मालेराव होलकर का शासक बनने के 1 वर्ष बाद ही सन् 1767 ई. को मृत्यु हो गई। फिर शासिका के तौर पर माता अहिल्याबाई होलकर जी ने राज्य की बागडोर संभाली। अहिल्याबाई होलकर ने सामाजिक क्षेत्र में अनेकों योगदान दिए। परंतु लगभग 30 वर्ष तक शासन के पश्चात 1795 ई. में उनका देहान्त हो गया। उनके पश्चात राजसिंहासन पर तुकोजीराव होलकर बैठे और अहिल्याबाई की ही शासन प्रणाली को जारी रखा परंतु जल्द ही तुकोजी राव होलकर का 1797 ई. को देहान्त हो गया। तुकोजी राव होलकर के कुल चार पुत्र थे। काशीराव इसमें सबसे बड़े पुत्र थे। फिर मल्हार राव होलकर दूसरे बड़े पुत्र थे। दो अन्य पुत्र विठोजी राव होलकर और यशवन्त राव होलकर थे। यही पुत्र आपसी विवाद के कारण बनेंगे।

यशवंतराव होलकर (1799-1811)

यशवंतराव होलकर ने मात्र 13 साल की उम्र में अहिल्याबाई होलकर के शासन काल में सन् 1790 ई. के दौरान जोधपुर शासक के विरुद्ध हुये युद्ध में भाग लेकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया था।¹ तुकोजीराव होलकर की मृत्यु के उपरान्त बड़े पुत्र काशीराव होलकर को 15 अगस्त 1797 में राजसिंहासन पर स्थापित किया गया । काशीराव होलकर में कई अवगुण(दोष) थे जबकि मल्हारराव होलकर सर्वगुण सम्पन्न थे । दोनों भाई विठोजीराव होलकर एवं यशवंतराव होलकर ने मल्हारराव का समर्थन किया था ।²

काशीराव होलकर भाईयों से खतरा जान के ग्वालियर के सिंधिया के ज्यादा करीब आ गए। काशीराव ने सिंधिया की मदद से भाई मल्हारराव पर आक्रमण कर दिया। और एक भाले के वार से उनकी मृत्यु हो गयी । मल्हार भाई की मृत्यु के उपरान्त यशवंतराव होलकर ने नागपुर के रघुजी भोंसले से सहयोग लिया और नागपुर चले गए । सिंधिया ने रघुजी भोंसले को पत्र भिजवाया और कहा कि यशवंतराव होलकर नियम विरुद्ध काम कर रहा है । रघुजी भोंसले ने 20 फरवरी 1798 ई. को यशवंतराव होलकर को गिरफ्तार कर लिया।³

नागपुर कैद से भवानीशंकर ने यशवंतराव होलकर को युक्ति करके पहरेदारों से भगा दिया। जल्द भवानी शंकर यशवंतराव का प्रियपात्र बन गया । नागपुर कैद से भागने के बाद जब धार के राजा आनंद पवार ने अपने राज्य के विद्रोही सेनापति रंगनाथ को सजा देने यशवंतराव होलकर से मदद माँगी । यशवंतराव ने युद्ध कर विद्रोही सेनापति रंगनाथ को मार भगाया । धार में मित्र सहयोगी स्थापित करने के बाद यशवंतराव ने आगे बढ़ कर अब महेश्वर (काशीराव राजधानी) पर कब्जा करने की तैयारी शुरू की । काशीराव के सेनानायक डूड्रेस था । डूड्रेस सेना युद्ध हार गयी ।

यशवंत राव होलकर का महेश्वर नगर पर पूर्ण अधिकार हो गया । यशवंतराव ने 6 जनवरी 1799 ई. को महेश्वर में अपना राज्याभिषेक करवाया । इसी बीच ग्वालियर में सिंधिया वंश के महादजी सिंधिया की तीन विधवा पत्नियां थीं । महादजी सिंधिया की विधवाएं महेश्वर पहुंची और यशवंतराव से मदद मांगी ।⁴

महाराज ने उन्हें उज्जैन में स्थापित करवाया । यशवंत राव होलकर और दौलतराव सिंधिया के बीच ठन गया । उज्जैन से कुछ दूरी पर पनवहार नामक स्थान पर सिंधिया की सेना से युद्ध हुआ । सिंधिया सेना जब हराने लगी तो उज्जैन रवाना हो गई परंतु अंत में दौलतराव सिंधिया के हाथ से उज्जैन 18 जुलाई 1801 ई. को निकल गया । तभी सूचना मिली कि सिंधिया की सेना सर्जाराव घाटगे के नेतृत्व में इंदौर युद्ध के लिए पहुँच रहे हैं । 14 अक्टूबर 1801 को निर्णायक युद्ध हुआ । यशवंतराव की बारिश होने के कारण तोपें कारगर सिद्ध नहीं हुईं । और यशवंत राव को भी वापस महेश्वर लौटना पड़ा । दौलतराव सिंधिया के सेनापति सर्जाराव घाटगे ने इंदौर के शानदार राजवाड़े में आग लगा दी ।

इधर भाई विठोजीराव होलकर महाराष्ट्र में हमले कर तहलका मचा रहा था । पेशवा ने अप्रैल 1800 ई. में धोखे से विठोजी को गिरफ्तार कर लिया । बालाजी कुंजर के उकसाने पर बाजीराव पेशवा ने विठोजी को हाथी के पांव के नीचे कुचल दिया⁵

अपने भाई की हत्या के प्रतिशोध के लिए यशवतराव ने पूना में आक्रमण कर दिया । और बारामती से अंतिम चेतावनी भेजी- यदि पेशवा की इच्छा रक्तपात रोकने की है तो बालोजी कुंजर (विठोजी राव होलकर हत्यारा) तुरन्त भेज दें यदि नहीं आर्येंगे तो मैं सशस्त्र निर्णय प्राप्त करने पर विवश हो जाऊंगा ।⁶ परंतु समझाते के सभी प्रयास निसफल हुए ।

हड़पसर का युद्ध (25 अक्टूबर 1802) होलकर ने पेशवा और सिंधिया की संयुक्त सेना को हराया:-

25 अक्टूबर 1802 को दीपावली त्यौहार था । यह भीषण युद्ध घोरपडी, हड़पसर और बनवाड़ी गाँवों के मैदानों में हुआ था, परंतु प्रसिद्धि हड़पसर गाँव को मिली ।⁷

“ यशवंत राव होलकर विरोधियों सैनिकों पर इस प्रकार झपटे जैसे हिरणाँ पर बाघ टूट पड़ता है होलकर के आक्रमण के आगे सैनिक ऐसे इधर उधर हो गई जैसे हवा के समाने भूसा ” ।⁸

सरदेशाई लिखते हैं कि “यह सफलता उसके जीवन की शायद महत्तम उपलब्धि थीं” ।⁹

हड़पसर की लड़ाई में पेशवा और सिंधिया की संयुक्त सेनाओं को यशवंतराव की सेना ने करारी हार दे डाली थी । बाजीराव पेशवा ने पूना से भगाकर बेसिन में अंग्रेजों से संधि कर ली थी । हड़पसर विजय के उपरान्त पूना पर यशवंत राव होलकर का अधिकार हो गया था ।¹⁰

जब 1 जनवरी 1803 ई. को बेसीन की संधि जब यशवंत राव होलकर को पता लगी तो उन्होंने अमृतराव को पेशवा बना दिया । परंतु पूना के ज्यादातर अधिकारी सिंधिया समर्थक थे... इससे खिन्न होकर यशवंतराव ने पूना छोड़ वापस इंदौर/महेश्वर जाने का मन बना लिया । पूना में 12 नवम्बर 1802 ई. को नवीन शासन चार महीने तक रहा । मार्च 1803 ई. को यशवंत राव होलकर ने पूना नगर छोड़ दिया । तेरह मई को 1803 ई. को अंग्रेज गवर्नर वेलेजली ने बाजीराव पेशवा को एक बार पुनः गद्दी पर बैठाया । जल्द बाजीराव पेशवा समझ गया कि अंग्रेजों ने सभी अधिकारों का हनन कर दिया है । अब उनकी इच्छा थी कि पुनः मराठा संघ के सभी सहभागियों में सुलह हो जाए । इसी बीच अंग्रेजों ने सिंधिया को युद्ध धमकी दे डाली थी । तभी वेलेजली ने सिंधिया और भोंसले के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । यशवंत राव होलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध को तैयार थे । उसी बीच दौलतराव सिंधिया द्वारा लिखा एक गुप्त पत्र यशवंत राव को प्राप्त हुआ जिसमें यह लिखा गया कि “यशवंत राव होलकर के बारे में चिंता करने की कोई बात नहीं है जैसे युद्ध समाप्त होगा तो हम दोनों मिलकर यशवंत राव से अपना पूरा बदला लेंगे । यह पत्र सिंधिया ने पेशवा को लिखा था । अतः यशवतराव मराठा संघ में शामिल नहीं हुए । अंग्रेजों के साथ हुये युद्ध में सिंधिया और भोंसले की करारी हार हुई ।

यशवंत राव होलकर यह समझते थे कि अंग्रेजों से कभी न कभी उनका युद्ध अवश्य होगा । इसलिए उन्होंने नागपुर, जोधपुर, भरतपुर तथा अन्य राजाओं के पास राजदूत भेजे । यशवंतराव होलकर ने अपने दूत तेहरान में भेजकर फ्रांस और रूस से पत्र व्यवहार आरम्भ किया ।¹¹

तभी जयपुर रियासत अंग्रेजों से सहायक संधि कर ली तो यशवंत राव होलकर ने जयपुर पर हमला किया । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गर्वनर जनरल ने अप्रैल 1804 ई. को सेनापति लार्ड लेक व मानसन को सूचना भेजी । अंग्रेजों ने तीन तरफ से 1804 ई. में आक्रमण किया उत्तर में लेक ने, पश्चिम से कर्नल मानसन ने और दक्षिण से आर्थर वेलेजली ने यशवंत राव होलकर पर आक्रमण किया । कोटा में जब युद्ध हुआ तो यशवंत राव होलकर ने बड़ी बहादुरी के साथ अंग्रेजी सेना को परास्त करा । होलकर की सेना ने मानसन की कोटा की सेना को करारी सिकस्त दी ।¹² मानसन के आगरा की तरफ भागते ही यशवंतराव होलकर ने आगे बढ़कर अंग्रेजी कंपनी के इलाके मथुरा पर हमला कर दिया । विजयी यशवंत राव होलकर ने मथुरा पर कब्जा कर लिया ।¹³ यशवंतराव मथुरा से बढ़कर दिल्ली पर कब्जा कर लेना चाहते थे । हरनाथ सिंह को दिल्ली पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया और उन्होंने युद्ध की तैयारियां शुरू कर दी । ग्रांट डफ अनुसार - 15 जुलाई 1804 ई. यशवंतराव होलकर की वीरता की प्रसिद्धि पूरे भारतवर्ष में फैल गई थी ।

दिल्ली में 7 अगस्त से 13 अगस्त 1804 ई. के बीच हरनाथ सिंह (यशवंत के सेनापति) की कर्नल आक्टरलोनी से कई मुठभेड़ हुईं, किन्तु वह दुर्ग की सुरक्षात्मक क्षमता की वजह से बच निकल रहा था । यशवंतराव 8 अक्टूबर 1804 को दिल्ली के सामने उपस्थित हुए । मुगल सम्राट शाहआलम ने यशवंतराव को राजराजेश्वर अलीजाबहादुर सम्मान की उपाधि दी थी । 14 अक्टूबर 1804 ई. को दशहरा का दिन था। अंग्रेज और होलकर दोनों तरफ भयंकर गोलीबारी हुई, तभी अचानक एक गोली विश्वासपात्र भवानी शंकर को लग गई और वह घायल हो गया, इस प्रकार दिल्ली पर कब्जा करने की नीति को सफलता नहीं मिली ।

इधर कर्नल मरे ने यशवंत राव होलकर की अनुपस्थिति में मालवा पर कब्जा करना शुरू कर दिया था । कर्नल मरे उज्जैन पर कब्जा कर लिया था । यशवंत राव होलकर दिल्ली से मथुरा-गोवर्धन की ओर से डींग होते हुए भरतपुर दुर्ग पहुंचे । भरतपुर राजा रणजीत सिंह ने उनका स्वागत किया। अंग्रेजों ने भरतपुर में हमला किया । भरतपुर दुर्ग की चौड़ी खाई के कारण अंग्रेज जनरल लेके की सेना का काफी नुकसान हुआ । दुर्ग खाई इतनी अधिक चौड़ी और गहरी निकली कि उसे पार करना नामुमकिन सा था ।

मानसन की कोटा में पराजय , दिल्ली का घेरा और भरतपुर में जनरल लेके की असफलता ने वेलेजली के जादू का अंत कर दिया । लार्ड लेक ने गर्वनर को लिखा कि भरतपुर के रणजीत सिंह के साथ पत्र व्यवहार बना है । 10 अप्रैल 1805 ई. को भरतपुर ने अंग्रेजों से प्रस्तावित संधि कर ली थी । 7 नवम्बर 1805 ई. को लार्ड लेक दिल्ली आया और यशवंतराव के विश्वासपात्र

भवानी शंकर को नफजगढ़ जागीर दी । भवानी शंकर को दिल्ली में एक हवेली के लिए भूमि दी गई । जिसका नाम नमक हराम की हवेली पड़ा । यह एक बहुत बड़ा विश्वासघाट था । यशवतराव ने सितम्बर 1805 के शुरुआत में भरतपुर से अजमेर और फिर अजमेर से पंजाब की ओर कूच किया । पंजाब के सिख महाराजा रणजीत सिंह ने सहायता देने की जगह वह कहने लगे कि आप अंग्रेजों से संधि कर लीजिए, क्योंकि अंग्रेजों ने स्वयं संधि का प्रस्ताव आपके लिए भेजा है ।

लार्ड लेक ने स्वयं संधि प्रस्ताव भेजा था । पहले तो यशवंत राव होलकर ने संधि से इंकार कर दिया । लेकिन अपने समर्थकों के बहुत जोर देने के बाद स्वीकार कर लिया । और एक अन्य कारण कई समर्थकों का अंग्रेज के साथ आंतरिक गठबंधन कर लेना भी था । परंतु यह सहायक संधि न हो कर युद्ध विराम संधि थी ।

संधि के अनुसार महाराजा यशवंतराव होलकर को अंग्रेजों ने एक स्वाधीन महाराजा स्वीकार कर लिया गया । राजपुरघाट की संधि 1805 के बाद यशवंतराव होलकर मालवा की ओर लौटे । महाराजा यशवंतराव होलकर ने भानपुरा को अपनी राजधानी बनाकर हिंगलाजगढ़ को सेना को केन्द्र बनाया ।¹⁴

नावली (भानपुरा) महाराजा यशवंतराव की विशाल तोप कारखाने का निर्माण हुआ था । यशवंतराव अंग्रेजों के विरुद्ध एक बार पुनः जंग छेड़नी चाहते थे ।¹⁵

परंतु यशवंतराव होलकर मस्तिष्क में बन रहे एक “ ट्यूमर” ने उनकी मुसीबतों को और बढ़ा दिया । यशवतराव ने राजवैद्यों को भी दिखाया लेकिन कोई भी औषधि उचित रंग नहीं लाई । मृत्यु के दिन महाराजा अपने तोप कारखाने का अवलोकन भानपुरा/नावली में ही कर रहे थे । यशवंतराव राष्ट्र से अटूट प्रेम करते थे । देश की स्वतंत्रता के लिये उनमें जुनून सवार था । इस समर्पित भाव और लगन को देखकर अंग्रेजों ने इसे मानसिक अवसाद ग्रस्त कहना शुरू कर दिया, जबकि वह उनकी देशभक्ति का जीता जागता उदाहरण था ।¹⁶

28 अक्टूबर 1811 ई. यशवंत राव होलकर की मृत्यु हो गई । महाराजा यशवंतराव होलकर का अंतिम संस्कार भानपुरा में रेवा नदी के किनारे किया गया ।

निष्कर्ष -

भारत के इतिहास में जब-जब राष्ट्र निर्माण की बात होती है तो यशवतराव होलकर का नाम बड़े ही गौरव और सम्मान के साथ लिया जाता है । यशवतराव होलकर ने पूरे भारत के राजाओं को पत्र लिखकर अंग्रेजों के विरुद्ध एक साथ और एकजुट होकर युद्ध करने की बात यह बताती है कि यशवतराव होलकर छत्रपति शिवाजी के अखंड भारत की अवधारणा का कितना अधिक सम्मान करते थे । उनकी सेना में हिंदू, मुस्लिम तथा सभी धर्मों के लोगो को स्थान मिला था । यशवतराव होलकर का जीवन बड़ा ही कठिन रहा उन्होंने पग-पग पर कठिन चुनौतियों और विपदाओं का डटकर सामना किया । दिल्ली तक विजय की जो पताका उन्होंने लहराई थी वह उस

काल का सबसे रोचक भाग था । परंतु इतिहास के पन्नों से उन विजय को प्रायः धूमिल सा कर दिया गया। अंत में उनकी मृत्यु मस्तिष्क ट्यूमर से हो गई । जीवनभर देश के लिए जीने वाले शासक ने बीमारी के अंतिम क्षणों में भी देश के लिए तोप कारखाने का निरीक्षण करते हुए बिताए । यह देश के प्रति उनके समर्पण भाव को प्रदर्शित करता है । साथ ही साथ यशवंत राव होलकर ने क्षेत्रीय राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भावना के साथ अपना राज्य संचालन किया था । यही एक प्रमुख कारण था कि वे भारतीय देशी राज्यों के समकालीन शासकों में एक खास पहचान रखते थे।¹⁷ इस महान् शासक को अब इतिहास के पन्नों में पुनः लाना अब हमारे इतिहास के विद्वानजनों और युवा पीढ़ी दोनों का काम है । इसी उद्देश्य को साकार करते हुए ये लेख लिखा गया है । जिसमें कई पुस्तकों के लेखकों के स्रोत का सहारा लिया गया है । सभी लेखकों का धन्यवाद ।

संदर्भ सूची -

- 1) भागवत अनंतनारायण, होलकरांची कैफियत भाग-3 पृ. सं. 67
- 2) सरदेशाई गोविन्द सखाराम, मराठों का नवीन इतिहास तृतीय खण्ड, प्रकाशक- शिवलाल अग्रवाल अस्पताल रोड, आगरा पृ. सं. 352
- 3) सरकार जदुनाथ, मुगल साम्राज्य का पतन पुस्तक के भाग 4, प्रकाशक शिव-लाल अग्रवाल एंड कम्पनी , दिल्ली, पृ. सं. 129
- 4) सिंह मोहन, वाकई होलकर पृ. सं. 97
- 5) होलकर मधुसूदन राव,होलकरों का इतिहास पुस्तक, पृ. सं.372
- 6) सरदेशाई गोविंद सखाराम, मराठों नवीन इतिहास के भाग संख्या 3, प्रकाशक - शिवलाल अग्रवाल अस्पताल रोड, आगरा पृ. सं. 399
- 7) एशियाटिक एन्सूअल रजिस्टर सन् 1803 ई.
- 8) सरकार जदुनाथ, मुगल साम्राज्य का पतन भाग-4, प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, दिल्ली पृ. सं. 192
- 9) सरदेशाई गोविंद सखाराम, मराठों का नवीन इतिहास भाग 3 पृ. सं. 398
- 10) सिंघल हनुमान, टोंक राज्य का इतिहास, प्रकाशक नदीम अकेडमी टोंक, पृ. सं. 28
- 11) ठाकुर वा.वा., होलकर शाहीचं इतिहास भाग 2 पृ. सं. 185
- 12) होलकर मधुसूदनराव, होलकरों का इतिहास, पृ. सं. 421
- 13) लाल सुंदर,भारत में अंग्रेजी राज पुस्तक के भाग 2, पृ. सं. 494
- 14) श्रीवास्तव डॉ. कुमार एवं पाठक नरेश कुमार, नीमच इतिहास एवं पुरा संस्कृति, पृ. सं. 14
- 15) फाडके आनंद भाऊ, शिंदे शाही इतिहास चे साधने भाग-2 पृष्ठ संख्या 133
- 16) चितले प्रतिभा, यशवंत राव होलकर,पृ. सं. 29
- 17) होलकर घनश्याम, महाराजा यशवंतराव होलकर भारतीय स्वतंत्रता के महानायक, पृ. सं.



महात्मा गांधी एवं विकसित भारत का अध्ययन

हंसराज पुर्बिया, एम. ए. पूर्वाद्ध (इतिहास),
गांव तिरोली, तहसील सहाड़ा, जिला भीलवाड़ा, (राजस्थान) भारत

मोहनदास करमचंद गांधी जो कि महात्मा, राष्ट्रपिता आदि विरुदो (उपाधि, उपनाम) से जाने जाते हैं। गांधी एक महान मानव एवं अहिंसा के पुजारी थे। वे समानता, स्वतन्त्रता, बंधुत्व, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी प्रयोग एवं सामाजिक समन्वय को बढ़ा महत्त्व देते थे। मूलतः गांधी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 पोरबंदर, काठियावाड़ के गुजरात प्रांत में हुआ। उनके पिता काठियावाड़ के दीवान थे। इंग्लैण्ड से बेरिस्टरी पास करने के उपरांत वे गुजरात के एक व्यापारी दादा अब्दुला का मुकदमा लड़ने दक्षिण अफ्रीका गये। वहां उनके द्वारा काले लोगों से रंगेभेद की नीति के विरुद्ध विरोध प्रकट किया। वहीं उन्होंने प्रथम बार सत्याग्रह का प्रयोग किया। तथा सभी भारतीयों को संगठित कर "नेटाल भारतीय कांग्रेस" की स्थापना की तथा 'इंडियन ओपिनियन' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

जनवरी 1915 को गांधी जी भारत आये। और अपने राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले से मिले तथा उनके कहने पर भारत भ्रमण किया। पूरे देश को जानने के बाद समझ में आया कि भारत को स्वतंत्र राष्ट्र बनाना हे तो ग्रामीण स्तर पर लोगों को संगठित किया जाए। भारतीय राजनीति में गांधी की पहली सार्वजनिक उपस्थिति 1916 बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना दिवस पर हुई। तत्पश्चात गांधी 1916 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। जहां उनसे मिलने रामचन्द्र शुक्ल आए और चंपारण की स्थिति बताई, फिर कुछ दिनों पश्चात गांधी चंपारण गए। तब उन्होंने किसानों की दयनीय स्थिति पहचानी जिसमें अंग्रेजी हुकूमत द्वारा प्रत्येक किसान को अपने खेत के 3/20 भाग पर नील की खेती करनी पड़ती थी। जिसे 'तीन कटिया प्रथा' कहा जाता था। जिससे उनकी उपजाऊ जमीन खराब व खाद्यान्न की कमी हो रही थी। तब गांधी ने सूचना इकलठ्ठा की तथा स्थानीय नेता राजेन्द्र बाबू, ब्रजकिशोर बाबू, मजहर उल हक आदि से मिले। तत्पश्चात आंदोलन शुरू किया तथा अंत में ब्रिटिश सरकार को जुकना पड़ा। यह गांधी का भारत में प्रथम सफल आन्दोलन था। उसके बाद 1918 में अहमदाबाद मिल मालिक की मनमानी के विरुद्ध भूख हड़ताल की गयी। और अंत में मजदूरों व मालिक के मध्य समझौता कराया। "यह गांधी की भारत में पहली भूख हड़ताल थी"। तत्पश्चात 1918 खेड़ा नामक गांव में अकाल पड़ने पर भी अंग्रेजों द्वारा किसानों से लगान वसूला जा रहा था। गांधी ने किसानों को साथ लेकर आन्दोलन को सफल बनाया, यहां पर सर्वप्रथम सरदार पटेल से मुलाकात हुई। गांधी प्रारम्भ में ब्रिटिश शासन के समर्थक थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता की ओर भारतीयों को ब्रिटिश सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया। लेकिन युद्ध खत्म होने पर भी अंग्रेजों की नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और 1919 अमृतसर में अंग्रेजों द्वारा निर्मम जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड किया। उसके बाद गांधी का अंग्रेजों से विश्वास उठ गया तथा उन्होंने 'केसर-ए-हिन्द' की उपाधि त्याग दी थी। फिर 1920 में असहयोग व खिलाफत सत्याग्रह आंदोलन आरंभ किया जिसमें हिंदू, मुस्लिम, कांग्रेस व संपूर्ण राष्ट्र ने भाग लिया "पर चोरा चोरी कांड होने से आंदोलन को रद्द करना पड़ा। जिससे कुछ लोग उनसे से नाराज हुए। तत्पश्चात गांधी अपने को राजनीति से दूर कर त्रि - सूत्री कार्यक्रम चलाया जिसमें हिंदू मुस्लिम एकता, खादी, व अस्पष्टता उन्मूलन आदि। 1930 में 240 मील

चलकर दांडी यात्रा कर नमक कानून तोड़ा। उसके बाद उन्होंने छुआछूत और जातिवाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी तथा अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया।

गांधी जी के आंदोलन के मुख्य आधार अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी, सर्वोदय मुख्य थे। अहिंसा गांधी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक है उन्होंने अहिंसा के तीन प्रकार बताए हैं जागृत अहिंसा, औचित्यपूर्ण अहिंसा, और भीरुओं की अहिंसा वह कायरता को अहिंसा ने मानते हुए कहते हैं "यदि मुझे कायरता और हिंसा में से चुनाव करना पड़े, तो मैं हिंसा को ही चुनूंगा।" गांधी अहिंसा को केवल एक दर्शन नहीं मानते हैं अपितु उसे कार्य करने की एक पद्धति मानते हैं वह हृदय परिवर्तन का साधन है गांधी की अहिंसा पारलौकिक शांति अथवा मोक्ष प्राप्ति का साधन ही नहीं वरन् सामाजिक शांति, राजनीतिक व्यवस्था, धार्मिक समन्वयी के निर्माण का साधन है। गांधी कहते हैं "सत्य और अहिंसा सर्वोच्च धर्म है सांप्रदायिक एकता के लिए हमें इन सिद्धांतों को अपनाना होगा। हमें अपने पड़ोसियों से प्रेम करना सीखना होगा, चाहे वह किसी भी धर्म के हो, याद रखें हिंसा से कभी शांति नहीं आएगी केवल प्रेम और करुणा से ही हम इस संकट से बाहर निकल सकते हैं।" 2

सत्य शब्द का प्रादुर्भाव सत् से हुआ है गांधी की दृष्टि में 'सत्य ही ईश्वर है सत्य वही है जिसकी सत्ता होती है' इसलिए उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन सत्य साधना में लगाया। गांधी कहते हैं— 3 " मेरे निरंतर अनुभव ने मुझे यह विश्वास दिला दिया है कि सत्य से पृथक कोई ईश्वर नहीं है और सत्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय अहिंसा है। अहिंसा की अखंड साधना से ही सत्य का संपूर्ण साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।" 3

स्वदेशी का जन्म भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 19वीं सदी में दादाभाई नौरोजी के ' ट्रेन थ्योरी ' व रमेश चंद्र दत्त की ' भारत का आर्थिक इतिहास ' जैसी पुस्तकों में मिलता है, पर स्वदेशी को बहुआयामी और राष्ट्रीय स्वरूप देने का श्रेय महात्मा गांधी को जाता है उन्होंने असहयोग आंदोलन के दौरान विदेशी वस्त्रों की होली जलाई तथा स्वदेशी को प्रोत्साहन देने के लिए खादी का प्रयोग व प्रसार किया। 4" वह सूक्ष्म, लघु उद्योग में सीमित मशीनों के प्रयोग का समर्थन कर आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात करते हैं। " 4

सर्वोदय का अभिप्राय ' सार्वभौमिक उत्थान ' से है। यह शब्द गांधी जी पहली बार जॉन रस्किन की पुस्तक " अन्टू दिस लास्ट " में पढ़ा। इसका प्रयोग वह वर्गविहीन, जातिविहीन, और शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए करते हैं। पाश्चात्य विचारक जेरेमी बेंथम " उपयोगितावाद का सिद्धांत" देते हुए कहते हैं – "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख" जिसमें वह व्यक्ति के अव्यावहारिक सुख की बात करता है जो संभव नहीं है पर गांधी भारतीय दर्शन के आधार पर " सर्वोदय "में अंतिम व्यक्ति के सुख, शांति, न्याय, स्वतंत्रता, समानता की बात करते हैं।

गांधी का संपूर्ण जीवन समन्वयी सहयोग एवं भाईचारे से भरा पड़ा है उन्होंने सत्य और अहिंसा को प्रतिरोध के विज्ञान से जोड़कर एक नई तरह की राजनीति को जन्म दिया जिसमें राष्ट्रवाद के साथ अंतरराष्ट्रवाद और मानवतावाद के स्वर हैं।

गांधी का साहित्य में गहरा संबंध रहा। उनके व्यक्तित्व निर्माण में टॉल्स्टॉय, रस्किन, तुलसीदास, नरसी मेहता आदि का विशेष योगदान रहा है। 5" वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाणे रे " 5 यह गांधी का पसंदीदा भजन है जिसमें 'पर' को सर्वदा 'स्व' से ऊपर रखा गया। बचपन में देखा नाटक 'सत्यवादी हरिश्चंद्र' से उनको सत्य का भान हुआ। जैन व बौद्ध से 'अहिंसा का सिद्धांत' लिया महाभारत, रामायण, भगवतगीता, जैसे पौराणिक ग्रंथों से कर्म, नेतृत्व, करुणा, दया, प्रेम, बंधुत्व आदि भावों को जीवन में आत्मसात किया।

6"हिंदी साहित्य में कबीर, तुलसीदास, जायसी जैसे कवियों ने अपने लेखन में 'आदर्श लोगों' की कल्पना की और पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो ने 'आदर्श राज्य' की कल्पना की थी उसी प्रकार गांधी ने तुलसीदास के 'रामराज्य' की अवधारणा से प्रभावित होकर 'सर्वोदय' की विचारधारा रस्किन की पुस्तक

‘अन्दू दिस लास्ट’ से ली थी।⁶ यही वह शस्त्रास्त्र हैं जो ‘हृदय परिवर्तन’ एवं ‘सर्वोदय प्रेमी’ गांधी को ‘रामराज्य’ की परिकल्पना ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है उनके शब्दों में “रामराज्य ही स्वराज” गांधी कहते हैं⁷ राम राज्य से मेरा मतलब हिंदू राज्य नहीं है, मेरे रामराज्य का अर्थ है, ईश्वर का राज्य, मेरे लिए राम ओर रहीम एक ही है, मैं सत्य और धार्मिकता के ईश्वर के अलावा किसी और ईश्वर को स्वीकार नहीं करता। चाहे मेरी कल्पना के राम कभी इस धरती पर रहे या न रहे हो। रामायण का प्राचीन आदर्श निः संदेह सच्चे लोकतंत्र में से एक है, जिससे एक बहुत बुरा नागरिक भी एक त्वरित न्याय को लेकर आश्वस्त हो सके।⁷

उनके द्वारा सत्य व अहिंसा के प्रयोग से आज भारत आजाद है मगर उन मूल्यों का पतन हो गया है जो मनुष्य को धरातल से ऊपर उठाकर मानव बनाता हैं तत्कालीन समय गांधी दर्शन हमें जीवन यथार्थ का सामना करना, सभी चुनौतियों को स्वीकार करना, सादगी और सरलता से जीना आदि मूल्यों को सीखता है। गांधी के विचार में अच्छे मनुष्य बने, भूत से सीखे और वर्तमान को सुखमय बनाए। यह चिंतन समूची मानतवता को चरम शिखर पर पहुंचा सकता है। इकबाल ने कहा, “खुदा तो मिलता है, इंसान नहीं मिलता” और हमें इंसानियत का संदेश गांधी ने दिया है उनका कहना है कि आप जो बदलाव दुनिया में देखना चाहते हैं उसे खुद में बदलिए।

गांधी अतीत ही नहीं वर्तमान में भी प्रासंगिक है, उनका संघर्ष महिलाओं, दलितों, किसानों, मजदूरों, को समाज की मुख्य धारा में लाने का था। तत्कालीन समय में सामाजिक विभाजन का फैलाव गहरा हो रहा है। ऐसे में गांधी के संघर्ष को पुनर्जीवित करना आवश्यक है, गांधी ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता की बात करते हुए कहा⁸ “मैंने रामराज्य का वर्णन किया है, जो नैतिक अधिकार के आधार पर लोगों की संप्रभुता है “⁸ आज भारत विश्व में सबसे बड़ा संप्रभुता संपन्न राष्ट्र हैं जिसमें सभी लोगों के लिए सुशासन की व्यवस्था की गयी है जिससे त्वरित न्याय मिल सके। गांधी कहते हैं भारत को सच्चे मायने में आजादी तब मिल सकती है जब शासन की बागडोर अंतिम व्यक्ति के हाथ में हो। उसी खगांधी मॉडल, से प्रेरणा लेकर पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा दिया गया। जिसमें पंचायत स्तर पर गांव के लोगों व नगरीय निकाय में नागरिकों को सच्चे लोकतंत्र को जानने का अवसर व राष्ट्र निर्माण में कार्य करने का मौका मिल सके। गांधी कहते हैं “⁹मेरे सपनों की रामायण, राजा और निर्धन दोनों के लिए समान अधिकार सुनिश्चित करती हैं।”⁹ इसी आधार पर विकसित राष्ट्र में अंत्योदय योजना लागू की गई जिससे अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति का विकास हो सके। देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाओं को हाशिए से मुख्य धारा में लाने के लिए गांधी जी ने अथक प्रयास किये, इन्हीं प्रयासों को साकार करने के लिए संसद ने ‘नारी शक्ति वंदन अधिनियम’ पारित कर महिलाओं को 33: आरक्षण दिया गया। जिससे पुरुष प्रधान समाज में उनको राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, स्वतंत्रता मिल सके।

भारत को आर्थिक रूप से संपन्न करने के लिए विकसित राष्ट्र में लघु, सूक्ष्म व कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया जा रहा है जो गांधी के ग्रामोद्योग पर आधारित हैं। शिक्षा लोकतंत्र का एक स्तंभ है इसलिए संपूर्ण राष्ट्र को शिक्षित करने के लिए संसद द्वारा 86वां संविधान संशोधन कर 6 से 14 वर्ष के छात्रों के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य की गयी, जिसको मूल कर्तव्य में सुपुर्द किया गया तथा नयी शिक्षा नीति 2020 लागू कर प्राथमिक स्तर तक मातृभाषा में शिक्षा देकर क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया गया।

भविष्य में गांधी चिंतन को आधार बनाकर सभी समस्या का समाधान भारत की युवा पीढ़ी करेगी। गांधी के शब्दों में “ कुछ ऐसा जीवन जियो जैसे तुम कल मरने वाले हो कुछ ऐसा सीखो जिससे कि तुम हमेशा के लिए जीने वाले हो। ”

150 वर्ष बाद भी यदि सत्य व अहिंसा की चर्चा होगी, हमें गांधी की याद आएगी वह हमारे सामने उत्पन्न समस्याओं के समाधान का विकल्प सुझाते हैं। आज जब विश्व पूंजीवाद के चरम भोगवाद के जाल में जकड़ा है, गांधी द्वारा सुझाया संयम मार्ग हमें विकल्प देता है।

आज का वातावरण देखते हैं तो एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांतों पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र इस आधुनिक युग में जीवित रह सकता है? तो इसका उत्तर है कि गांधीवादी मूल्यों को समाज में स्थापित करने से राष्ट्र खड़ा रह सकता है।

जब तक मनुष्य रहेगा, तब तक गांधी चिंतन रहेगा मनुष्य के जीवन को सुधारने का मार्ग मिलता रहेगा। युग को नयी प्रेरणा, मिलती रहेगी। गांधी चिंतन प्रेम और आत्मिक शांति का इतिहास ही नहीं, यह मानव का वर्तमान और भविष्य भी है सोहनलाल द्विवेदी अपनी कविता युगबोध में कहते हैं---

10" युग प्रवर्तक, युग संस्थापक

युग संचालक, हे युगाधार

युग निर्माता, युग मूर्ति तुम्हें

युग – युग तक युग का नमस्कार ।"10

गांधी युग पुरुष थे। आजादी के आंदोलन में महात्मा गांधी कि महत्वपूर्ण भूमिका थी सारी आजादी का ताना-बाना उनके इर्द-गिर्द ही बुना गया जिन्होंने भारत के नए युग का सूत्रपात किया गांधी के बहुमुखी जीवन एवं विचारों का क्षेत्र अनंत है।

संदर्भ ग्रंथ —

1. गांधी के आंदोलन, कक्षा –12 राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल, जयपुर।
2. गांधी के संग्रहित कार्य, खंड 86।
3. सत्य के साथ प्रयोग, आत्मकथा।
4. हिंद स्वराज (1909)।
5. पूर्व उद्धत (सत्य के साथ प्रयोग)।
6. साहित्य, संस्कृति ओर गांधी : संपादक पयोद जोशी।
7. यंग इंडिया (19 सितम्बर, 1929)।
8. हरिजन पत्रिका (2 जनवरी, 1937)।
9. अमृत बाजार पत्रिका (2 अगस्त, 1934)।
10. सोहन लाल द्विवेदी : युगपुरुष, कविताकोश।

मोबाइल :- 8094719542

ई-मेल %& hansrajpurbiya37@gmail-com



मध्यकालीन भारतीय सामाजिक एकीकरण के प्रणेता :

अमीर खुसरो

पूजा कुमारी, यूजीसी नेट इतिहास

मधुबनी (बिहार)

मूल आलेख- अमीर खुसरो बहुमुखी प्रतिभा संपन्न सूफी संत महान कवि, बहु भाषाविद् एवं निष्णात संगीतज्ञ थे। मध्य युगीन भारतीय इतिहास में अमीर खुसरो का नाम साहित्य, संगीत, राजनीति, इतिहास और धर्म के संदर्भ में बड़े ही गौरव के साथ लिया जाता है। अमीर खुसरो का जन्म 3 मार्च, 1253 ईस्वी में पटियाली, जिला एटा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। अमीर खुसरो का मूल नाम अबुल हसन यामिनुद्दीन था तथा 'खुसरो' उनका उपनाम था। 'अमीर' की उपाधि उन्हें उनके कविता से प्रसन्न होकर जलालुद्दीन खिलजी ने दी थी। साहित्य जगत में वो अमीर खुसरो के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। खुसरो के पिता सैफुद्दीन तुर्क थे और माता भारतीय थी। खुसरो के आध्यात्मिक गुरु हजरत निजामुद्दीन औलिया थे जिन्हें सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता थी। वो खुसरो को 'तुर्कल्लाह' नाम से पुकारते थे। उनके नाना इमाद उल मुल्क भी साहित्य और संगीत के प्रेमी थे। उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि उनके चारित्रिक गुणों के विकास में अनुकूल वातावरण प्रदान की।

अमीर खुसरो को अपनी मातृभूमि भारत से अगाध प्रेम था। उनका यह देश प्रेम और श्रद्धा की भावना उनकी रचनाओं में व्यापक रूप से परिलक्षित होता है। भारत के कण-कण से उनका भावनात्मक लगाव था। खुसरो अपने भारतीय होने पर गर्व का अनुभव करते थे। वह लिखते हैं--

"हस्त मरा मौलद व मावा व वतन"

अर्थात्, यही मेरा जन्म स्थान और यही मेरी मातृभूमि है। खुसरो भारत को विश्व में सर्वश्रेष्ठ देश मानते थे। उन्होंने अपनी मसनवी नुहे-सिपेहर में भारत की जलवायु फल-फूल, पशु-पक्षी, भाषा-साहित्य, कला और विज्ञान की भुरी भुरी प्रशंसा की है। वह भारत को पृथ्वी का स्वर्ग मानते थे-

"किश्वरे हिन्द अस्त वहिश्ते वजमी"

(नुहेसिपेहर)

अर्थात्, भारत पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है। उनके रग रग में भारतीयता की भावना समाहित थी।

अमीर खुसरो मध्यकालीन भारतीय इतिहास में हिंदू-मुस्लिम समन्वयात्मक संस्कृति के सुंदर प्रतीक हैं। पूर्व - मध्यकाल राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि से काफी उथल-पुथल भरा काल था और देश का संपूर्ण वातावरण अशांत था। चारों ओर अराजकता फैली थी। खुसरो के शब्दों में:

"बाल नुचे कपड़े फटे मोती लिए उतार

अब विपता कैसी बनी जो नंगी कर दी नार। "

मध्यकाल में मुसलमानों का भारत में आगमन एवं पूर्णतया बस जाना भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इससे पहले भारत एक हिंदू राष्ट्र था। समाज की नींव धर्म पर आधारित

थी।नीना सक्सेना ने लिखा है "हिंदू समाज जाति -पांति और भेदभाव की भावना से ग्रसित था ।" तत्कालीन समय में हिंदू - मुस्लिम एकता स्थापित करना एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या बनी हुई थी । अमीर खुसरो ने अपने काव्य और संगीत के माध्यम से संपूर्ण समाज को एकता के सूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। अमीर खुसरो ने हिंदू मुसलमान के बीच की खाई पाटने में अग्रणी भूमिका निभाई ।अमीर खुसरो अपने विशाल व्यक्तित्व एवं उदार धार्मिक विचारधारा के कारण हिंदुओं के बीच भी बहुत लोकप्रिय हुए।

अमीर खुसरो के व्यक्तित्व की सबसे प्रमुख विशेषता समन्वय की भावना थी ।12-13वीं सदी मे भारतीय समाज मे एकता और समानता की भावना विलुप्त हो चुकी थी। समाज मे धर्म और जाति के नाम पर शोषण होने लगी थी । अमीर खुसरो ने हिंदुओं और मुसलमान में निकटता लाने के लिए मुसलमान में यह विश्वास पैदा किया कि दोनों धर्म की मूल बातें एक ही हैं। उन्होंने ईस्लाम धर्मावलंबियों को समझाया कि हिंदू भी परमात्मा को अजर , अमर , निर्गुण और निराकार ही मानता है। मूर्ति उपासना तो माध्यम मात्र है। खुसरो ने कहा -

“ ए के ज बुत ताअना व हिन्दू बरी
हमजवे आमोज परस्तिश गरी।।”

अर्थात् , जो हिंदुओं पर उसके मूर्ति पूजक होने के कारण कटाक्ष करता है , वह उससे प्रेरित होकर इबादत करना भी सीखे । इस प्रकार उन्होंने धार्मिक सोहार्द और सहिष्णुता का वातावरण तैयार करने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

खुसरो ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदू और मुसलमानों में एकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। पूर्व मध्यकाल में साहित्य का स्वरूप या तो धर्म प्रधान था या राजाओं के यशोगान का साधन । खुसरो ने साहित्य को इन दोनों विधाओं से मुक्त कर जनसाधारण पर केंद्रित किया और आम भाषा में काव्य और संगीत की रचना कर इसे आम - जनों के मनोरंजन का साधन बनाया । इन्होंने फारसी और हिंदी दोनों साहित्यों में खूब रचनाएं की । अमीर खुसरो की उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं में गुर्तुलकमाल, वाकिया-नकिया ,लैला मजनू ,सिरी फरहाद, हस्त बिहस्त आदि फारसी भाषा में तथा पहेलियां ,मुकरीयां, दो सूखने, ढकोसले, लोकगीत हिंदी में उपलब्ध हैं। खुसरो को मनोरंजन साहित्य का जनक माना जाता है।खुसरो की पहेलियां आज तक आमजनों मे खूब लोकप्रिय है ।

" हिंदी बोली आईना ,तुर्की बोली पाईना।
हिन्दी बोली आरसी आए ,मुंह देखे जो
उसे बताए।"

" सावन भादो बहुत चलत है, मास पूस में
थोड़ी

अमीर खुसरो यूं कहे, तु बुझ पहेली मोरी ।।”

अमीर खुसरो की संपूर्ण साहित्य रचना का केंद्र -बिंदु सांस्कृतिक समन्वय ही रहा है। वर्तमान हिंदी शैली हमें प्रथम बार अमीर खुसरो की काव्य रचनाओं में ही दृष्टिगत होता है ।अमीर खुसरो ने हिंदी -फारसी मिश्रित समन्वयात्मक भाषा शैली का प्रयोग करके तत्कालीन समाज में भाषाई एकता स्थापित करने की कोशिश की ।उसने भाषायी एकता स्थापित करने के लिए एक 'खालिकबारी ' नामक ग्रंथ लिखी । यह हिंदी- फारसी का प्रथम शब्दकोश है - जिसमें हिंदी शब्दों का फारसी पर्याय और फारसी शब्दों का हिंदी पर्याय दिया हुआ है ।

“इस्मे अल्लाह खुदा का नाऊ
गर्म है धूप साया है छांऊ।।”

अमीर खुसरो ने जिस तरह दो संस्कृतियों के साहित्य में समन्वय का प्रयास किया, ठीक उसी तरह हिंदू और इस्लामी संस्कृतियों की संगीत कला को भी एक दूसरे के समीप लाकर सामंजस्य स्थापित करने का ऐतिहासिक कार्य किया। उन्होंने ईरानी और भारतीय रागों के मेल से कई नये राग- रागनियों का आविष्कार किया। काल, शहाना, खयाल, निगार, तलाना जैसे सुंदर रागों के नवीन परंपरा को जन्म दिया। खुसरो ने भारतीय परंपरा से प्रभावित होकर बसंत के गीत को भी दरगाह और खानकाहों में लोकप्रिय बनाया। कालांतर में दिल्ली के दरगाहों में 15 दिन तक बसंत मेला लगने लगा और पीला वस्त्र पहनकर बसंत मनाने की परंपरा स्थापित की। यह अमीर खुसरो की ही सांस्कृतिक देन है। अमीर खुसरो के लिखे हुए कव्वाली और गजल आज भी भारत के साथ साथ विदेशों में भी बहुत लोकप्रिय है।

"जे हाल मिस्की मुकुंब तगाफुल,
दुराय नैना बनाय बतियां...।
किताब हिजरा न दारम ऐ जा,
न लेहु काहे लगाय छतिया।।"

लोक जीवन के प्रति अभिरुचि ने अमीर खुसरो को स्थानीय भाषाओं में भी रचना करने को अभिप्रेरित किया। उनके गाए हुए लोकगीत आज भी लोगों के जुबान पर हैं

“ अम्मा मेरी बाबा को भेजियो रे कि सावन आया
अम्मा मेरी भैया को भेजियो रे कि सावन आया”

अमीर खुसरो ने संगीत के क्षेत्र में भी अपने समन्वयकारी प्रवृत्ति की अनुकूल अनेकानेक चमत्कारिक कार्य किया। उनकी गायन शैली इस्लामी और भारतीय हिंदू समाज दोनों में बराबर रूप से लोकप्रिय हुई और दोनों को एक दूसरे के निकट लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अमीर खुसरो बहुभाषाविद थे। वह अरबी, तुर्की, संस्कृत, फारसी आदि सभी भाषाओं के ज्ञाता थे। खुसरो भारत का ऐसा पहला कवि थे जिसने समस्त भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण किया और सारे भाषाओं का सम्यक् विश्लेषण भी किया। खुसरो ने अपने भाषा सर्वेक्षण में दिल्ली की समीपवर्ती क्षेत्र में बोली जाने वाले जिस भाषा का उल्लेख किया वह 'हिंदवी' या 'देहलवी' कहलाता है। उसने इस हिन्दवी भाषा को साहित्यिक रूप दिया और उसमें खूब काव्य रचनाएं की। आज की परिष्कृत हिंदी और उर्दू भाषा की नींव इस प्रकार से अमीर खुसरो ने ही रखी थी जिसके लिए हम सब खुसरो के ऋणी हैं। खुसरो ने देश को भाषाई स्तर पर जोड़ने का काम किया।

भारतीय इतिहास में अमीर खुसरो का विशिष्ट स्थान है। खुसरो धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर सामंजस्य के पोषक थे। उन्होंने हिंदू और मुस्लिम की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर पूरे भारतीय समाज को एकीकृत करने का अविस्मरणीय प्रयास किया। मध्यकालीन इतिहास में उन्हें विश्व कवि की संज्ञा दी जाती है। 27 सितंबर, 1335 ई० में इस महान सूफी संत कवि ने अपने गुरु के वियोग में इस दुनिया को अलविदा कह दी परन्तु उनका जीवन दर्शन आज भी समस्त भारतवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

निष्कर्ष : अमीर खुसरो का व्यक्तित्व और कृतित्व निश्चय ही हिंदू-मुस्लिम सभ्यता के संगम की अभिव्यक्ति प्रकट करती है। अमीर खुसरो की धर्मनिरपेक्षता, सर्व धर्म - समभाव का व्यापक संदेश देता है। उन्होंने जिस तरह अपनी रचनाओं और संगीत के माध्यम से दो पृथक सभ्यताओं को एकाकार किया, वो हमें वस्तुनिष्ठ भाव से लेखन की ओर प्रेरित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पांचाल, डॉ. परमानंद, भारत के महान विभूति : अमीर खुसरो(व्यक्तित्व एवं कृतित्व), हिंदी बुक सेंटर दिल्ली, 2001
2. तिवारी, डॉ. भोलानाथ, अमीर खुसरो ओर उनकी हिन्दी रचनाएँ, न्यू लिटरेचर दिल्ली 1976

3. मोहम्मद, डॉ. मल्लिक, अमीर खुसरो भावात्म एकता के अग्रदूत, राजपाल एंड संस दिल्ली,1975
4. खान, सायमा हसन, अमीर खुसरो की हिन्दी रचनाएँ,अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,2008.
5. चंद्रा, सतीश, मध्यकालीन भारत, राजनीति, समाज और संस्कृति,ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन, 2007.
6. वर्मा, हरिशचंद्र, मध्यकालीन भारत,भाग-1, दिल्ली विश्वविद्यालय,2014.
7. हबीब, ईरफान, मध्यकालीन भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ,1983.
8. स० चौपड़ा, सुदर्शन, हिन्दी के लोकप्रिय संत कवि, पॉकेटस बुक्स प्रा० लि०, दिल्ली
Kumarip68738@gmail.com 8271076800,9852512538



“भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा”

कु.सपना प्रजापति,

चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय (मेरठ)

सारांश :

19वीं शताब्दी में संपूर्ण भारत ही जातिगत, भेदभाव, छुआछूत, अस्पृश्यता, सतीप्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्या शिशु हत्या, विधवा विवाह निषेध, आडम्बरपूर्ण मूर्ति पूजा तथा धार्मिक अंधविश्वास आदि बुराइयों से भारतीय समाज पीड़ित था। निम्न जाति के लोगों को सार्वजनिक कुआं तथा तालाब से पानी पीने का अधिकार भी नहीं था इनकी स्थिति जानवरों से भी बदतर थी। उनके जीवन में ने तो कोई उत्साह था और नहीं कुछ सरसता थी। आधुनिक भारत में डॉ भीमराव अंबेडकर जी ने 1924 में समाज सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। इसके लिए इन्होंने कई सभाओं का गठन किया। डॉ अंबेडकर द्वारा मंदिर में प्रवेश के लिए 2 मार्च 1930 में आंदोलन चलाया गया। (महाड आंदोलन, मनुस्मृति का दहन, नासिक स्थित कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए आंदोलन, गोलमेज सम्मेलन, पूना पैक्ट) में डॉ अंबेडकर चाहते थे कि अछूतों (दलितों) की स्थिति में सुधार के लिए उन्हें अलग से अधिकार दिए जाए। बाबा साहब ने ऐसे अनेक कार्य किए जिससे असमानतामूलक, बर्बर व घिनौनी सभ्यता पर प्रहार किया। आज समाज की इस कुप्रथा को अवैध घोषित कर दिया गया है। यह बाबा साहब के प्रयासों का ही सफल है।

आजादी के अमृत काल में इस शोध पत्र के माध्यम से डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का दलितों के उत्थान में क्या योगदान रहा का तार्किक रूप से विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी : छुआछूत, अस्पृश्यता, आडंबरपूर्ण, अंधविश्वास, कुप्रथा, जातिप्रथा।

प्रस्तावना :

दलितों के मसीहा बाबा साहब भीमराव अंबेडकर जी का जन्म 14 अप्रैल 1891 में मध्य प्रदेश के इंदौर के निकट महु छावनी में महार परिवार में हुआ था। आंबाड़वे पैतृक गांव होने के कारण डॉ भीमराव का नाम आंबाड़वेकर पड़ा। उनके स्कूल के एक ब्राह्मण अध्यापक कृष्ण केशव आंबेडकर ने भीमराव के उपनाम आंबाड़वेकर को बोलने में असविधाजनक और कठिन बताते हुए आंबाड़वेकर के बजाय अंबेडकर अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। डॉ भीमराव अंबेडकर को जात-पात, ऊंच-नीच, छुआछूत, भेदभाव से अपने जीवन में लगातार जूझना पड़ रहा था।

इन्होंने वर्ष 1924 में समाज सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया। जिसका उद्देश्य दलित वर्ग में शिक्षा का प्रसार और उनके सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए काम करना था।

इसका घोष वाक्य था- **शिक्षित करो आंदोलित करो और संगठित करो "Educate Agitate & Organize"**²

बाबा साहब ने अपना जीवनोद्देश्य प्रकट करते हुए मार्च 1924 की बहिष्कृत हितकारिणी सभा के सदस्यों की बैठक में भीम प्रतिज्ञा की "दलित वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक विकास के लिए पूर्ण निष्ठा के साथ अत्यंत कठोर परिश्रम करूंगा"। मैंने इतना ज्ञान अर्जित किया कि अपनी प्रज्ञा शक्ति का उपयोग अपने परिवार व अपनी जाति तक सीमित करने वाला नहीं हूँ। मैं इसे संपूर्ण दलित वर्ग के लाभ के लिए, उनके सामाजिक आंदोलन की स्थापना एवं संघर्ष के लिए अर्पित कर दूंगा।³

सन् 1920 और सन् 1927 में डॉ अंबेडकर ने नितांत साधनहीन होते हुए 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत भारत' पाक्षिक पत्रों को प्रकाशित किया। इन पत्रिकाओं में बाबा साहब ने दलितों और बहिष्कृतों की तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को उजागर किया है। उनकी लेखनी से निकला हर वक्तव्य संदेशात्मक होता था। इनसे दलित आंदोलन⁴ में उनकी उत्कट अभिरुचि और योगदान का पता चलता है। अंग्रेज राज्य ने भी उनके शोषण और दमन के चक्र को रोका नहीं, उसे और मजबूत और गतिशील बनाया इन सब विसंगतियों, विषमताओं, दुहरे शोषण के कुचक्र को तोड़ने के लिए ही अंबेडकर जी ने पत्रिकाओं का संपादन- प्रकाशन किया।⁵

महाड़ तालाब आंदोलन :

पानी प्राप्त करने की सार्वजनिक स्थानों से पानी लेने का अधिकार पाने के लिए जो प्रयास किए गए, उनमें चावदार तालाब के मामले का उल्लेख पर्याप्त होगा। यह चावदार तालाब बंबई प्रेसिडेंसी के कोलाबा जिले के महाड़ नगर में स्थित है। यह एक प्राचीन तालाब है, कोई नहीं जानता कि उसे किसने और कब बनवाया लेकिन 1869 में जब सरकार ने महाड़ नगर के लिए नगरपालिका की स्थापना की, तो सरकार ने उसे नगरपालिका को सौंप दिया। तब से उसे सार्वजनिक तालाब माने जाने लगा। चावदार तालाब ही एकमात्र ऐसा तालाब था, जहां से बाहर से आने वाला कोई भी व्यक्ति पानी ले सकता था। तथा इस तालाब से कुत्ते बिल्ली पानी पी सकते थे, लेकिन अछूत जाति के लोगों के लिए पानी लेना वर्जित था। अतः पानी के मामले में अस्पृश्यों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता था।⁶ महाड़ नगर पालिका ने 5 जनवरी, 1924 को इस आशय का संकल्प पारित किया कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है कि अस्पृश्यों को तालाब का इस्तेमाल करने दिया जाए। इसके पश्चात महाड़ में कोलाबा जिले के अस्पृश्यों का सम्मेलन अंबेडकर जी की अध्यक्षता में हुआ। सम्मेलन की बैठक दो दिन- 18 और 20 मार्च, 1927 को हुई सम्मेलन में 2500 से अधिक अस्पृश्यों ने हिस्सा लिया⁷ और डॉ. भीमराव अंबेडकर ने आंदोलन चलाया व अपने अनुयायियों के साथ तालाब से पानी लेकर पिया। बाद में ब्राह्मणी

व्यवस्था के समर्थकों द्वारा गाय के गोबर और गोमूत्र से इस तालाब का शुद्धिकरण किया गया।

नासिक मंदिर प्रवेश आंदोलन :

डॉ अंबेडकर ने तीन महीने की श्रमसाध्य और सावधानीपूर्वक तैयारीयों के बाद नासिक में मंदिर प्रवेश आंदोलन शुरू किया, नासिक में दलित वर्गों की सत्याग्रह समिति ने प्रसिद्ध कालाराम मंदिर के ट्रस्टियों को सूचित किया था कि यदि ट्रस्टी अछूतों को मंदिर में प्रवेश करने और अपने भगवान श्री राम की पूजा करने की अनुमति नहीं देते हैं तो एक सत्याग्रह, पूरी तरह से अहिंसक प्रकृति का शुरू किया जाएगा। सत्याग्रह समिति के आवाहन पर, लगभग 15000 स्वयंसेवक और प्रतिनिधि शहर के मुख्य अछूत क्षेत्र में एक विशेष रूप से बनाए गए पंडाल में एकत्र हुए। 2 मार्च 1930 को डॉ अंबेडकर की अध्यक्षता में एक सम्मेलन हुआ। 3 मार्च 1930 की सुबह मंदिर के द्वार के सामने अहिंसक संघर्ष शुरू करने का निर्णय लिया गया व सत्याग्रही द्वारा मंदिर के प्रवेश द्वार के सामने भजन गाए गये। इस आंदोलन में डॉक्टर भीमराव अंबेडकर को चोटें भी आई थी।⁸

मनुस्मृति दहन :

हिंदू धर्म की प्राचीन पुस्तक मनुस्मृति में जात-पात, ऊंच-नीच, छुआछूत, भेदभाव आदि सामाजिक बुराइयां विद्यमान हैं। मनुस्मृति में शुद्रो, अछूतों और महिलाओं को उनेक मूलभूत अधिकारों से वंचित किया गया है। अतः 25 दिसंबर 1927 को महाराष्ट्र के महाड़ नगर में बाबा साहब डॉ भीमराव अंबेडकर ने अपने हजारों अनुयायियों के साथ मनुस्मृति का दहन किया।⁹

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन :

डॉ अंबेडकर गोलमेज सम्मेलन में कहते हैं कि मुझे विश्वास है। कि आप इस बात से सहमत होंगे कि दलित वर्ग की समस्याएं रखने का जो दायित्व मुझे सौंपा गया है। वह काफी कठिन है। यह पहला अवसर है, जब दलितों की समस्याओं पर राजनीतिक दृष्टिकोण से विचार किया जा रहा है।¹⁰ दरअसल, अल्पसंख्यको के प्रतिनिधित्व का मामला ही सारे मामले का निचोड़ है। अगर बहुसंख्यक चाहते हैं कि सभी अल्पसंख्यक वर्ग उनका साथ देकर एक ऐसे संविधान का निर्माण करें, जो भारत में जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता की सरकार के गठन का मार्ग प्रशस्त कर सके।¹¹

भारतीय संविधान की रचना :

डॉ अंबेडकर भारत के संविधान के निर्माण कार्य में पूरी तरह से डूब चुके थे, अपने स्वास्थ्य में गिरावट के बावजूद भी वे अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित थे। 5 नवंबर, 1948 को संविधान सभा ने श्री टी•टी• कृष्णामाचारी द्वारा दिए गए भाषण से पता चलता है कि डॉ अंबेडकर वास्तव में हमारे लोकतांत्रिक संविधान के मुख्य निर्माता थे।¹² संविधान निर्माण में 2 वर्ष 11 माह 18 दिन लगे, जो 26 नवंबर सन् 1949 को संविधान राष्ट्र को समर्पित किया गया। 26 जनवरी सन् 1950 को संविधान पूरी तरह से लागू हो गया। संविधान लागू होने के

बाद पुरानी रूढ़ियां परंपराएं और ऐसे कानून जो संविधान विरुद्ध हैं उन्हें अमान्य घोषित कर दिया गया।¹³

निष्कर्ष : इस प्रकार हम देखते हैं कि अंबेडकर पहले अस्पृश्य थे। जिन्होंने जाति व्यवस्था ऊंच-नीच, भेदभाव के खिलाफ खुले आम बगावत की। अंबेडकर के कंधों पर मुक्ति का ऐसा कार्यभार था जो स्वयं के साथ दूसरे लोगों के भी हित में था। डॉक्टर अंबेडकर के कठिन परिश्रम से दलित वर्ग की स्थिति में बहुत सुधार हुआ उन्हें सामाजिक आर्थिक राजनीतिक शैक्षिक आदि अधिकार प्राप्त हुए। डॉ अंबेडकर जी ने जीवन के पांच सूत्र बताये हैं- **"शिक्षित बनो, आंदोलन करो, संगठित हो, आत्मविश्वास बनाए रखें, धीरज कभी ना खोए"**।

संदर्भ सूची :

01. चौधरी, वी. के. "डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जीवन परिचय एवं संघर्ष" द्वितीय संशोधित संस्करण. प्रिंट आर्ट ऑफ़सेट, लखनऊ.2024. पृष्ठ संख्या - 5
02. वही. पृष्ठ संख्या - 10
03. सिंह, हनुमान. "राष्ट्र ऋषि बाबा साहब अंबेडकर" पृष्ठ संख्या - 14
04. कन्हैयालाल चंचरीक, आर. चंद्रा. "आधुनिक भारत का दलित आंदोलन" प्रथम संस्करण. जी.के. फाइन आर्ट प्रेस, दिल्ली. 2003. पृष्ठ संख्या - 135
05. वही. पृष्ठ संख्या - 136
06. डॉ अंबेडकर, बाबा साहब. "संपूर्ण वाङ्मय खंड- 10". 11वां संस्करण. डॉ अंबेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली. 2019. पृष्ठ संख्या - 142
07. वही पृष्ठ संख्या - 143
08. SHAHARE, M.L." DR. BHIMRAO AMBEDKAR. his life and work" NEW DELHI. 1986. पृष्ठ संख्या - 36
09. चौधरी, वी.के. "डॉ भीमराव अंबेडकर जीवन परिचय एवं संघर्ष" द्वितीय संस्करण. प्रिंट आर्ट ऑफ़सेट, लखनऊ.2024 पृष्ठ संख्या - 11
10. डॉ अंबेडकर, बाबा साहब. "संपूर्ण वाङ्मय खंड-5" 11वां संस्करण. डॉ अंबेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली. 2019. पृष्ठ संख्या - 30
11. वही पृष्ठ संख्या - 136
12. SHAHARE, M.L." DR. BHIMRAO AMBEDKAR. his life and work" NEW DELHI .1986. पृष्ठ संख्या - 94
13. चौधरी, वी. के. "डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जीवन परिचय एवं संघर्ष" द्वितीय संशोधित संस्करण. प्रिंट आर्ट ऑफ़सेट, लखनऊ.2024, पृष्ठ संख्या - 18



मीराबाई

ज्योति, शोध छात्रा,

इतिहास विभाग, B. M. U. रोहतक, हरियाणा.

मीरा बाई का जन्म राजस्थान के मेवाड़ में राव दूदा जी के छोटे पुत्र रतन सिंह व पत्नी वीर कुँवरी घर 16वीं शताब्दी में हुआ। मीरा का बचपन दूदा जी की छत्रछाया में बीता। दूदा जी अपना सारा समय चतुर्भुजानाथ की भक्ति में बिताते। उनकी संगत में मीरा पर भी भक्ति का रंग चढ़ने लगा। एक बार एक संत आए, वो ठाकुरजी की सेवा करते थे। उन्हें देखकर मीरा का मन भी ठाकुरजी की सेवा करने का होता एक दिन मीरा ने संत से ठाकुरजी को मांग लिया। परन्तु संत ने अपने आराध्यदेव को देने से इनकार कर दिया। उसी रात को संत के सपने में ठाकुर जी स्वयं आये और कहा मुझे मीरा को सौंप दो। मैं उसके पास रहना चाहता हूँ। तो अगले दिन संत मीरा को ठाकुर जी देने आये। मीरा पूरे भक्तिभाव से ठाकुरजी की सेवा करने लगी। और दूदा जी से कह कर अपने ठाकुर के लिए अलग से मंदिर बनवा लिया जिसका नाम “सेवा कुंज” रखा।

मीरा ने झरोखे से पहली बार किसी की बारात देखी। माँ से पूछा ये सब क्या है? तब माँ ने बताया बारात है और वो बीद है अपनी बीदणी को ब्याहने जा रहा है। तो मीरा पूछने लगी मेरा बीद कौन है भाबू (माँ)? तब उन्होंने कहा मुझे क्या पता कौन है तेरा बीद? मीरा कई दिनों तक पूछती रही तब माँ ने हारकर कहा ये है तेरा बीद। मीरा चौंककर बोली ये? ये तो मेरे गिरधर गोपाल हैं। हाँ तो यही है तेरा बीद। तब मीरा ने अपने गिरधर को गौर से देखा और प्रेम भाव में गाया :-

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो ना कोई,
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई,

उम्र के साथ मीरा की भक्ति भी बढ़ती जा रही थी। माँ को बेटी का ये भक्ति-भाव अच्छा नहीं लगता। तो शादी की चर्चा शुरू की गई। मीरा ने जब सुना तो रोते हुए दूदा जी के पास गई और पूछने लगी कि एक बीदणी के कितने बीद होते हैं? तो दूदा कहने लगे की एक ही होता है पर तू ये सब क्यों पूछ रही है बेटी? क्योंकि दूदा सभी मेरा ब्याह कराना चाहते हैं।

गुरु पूर्णिमा पर मीरा को गुरु की अभिलाषा हुई। मीरा ने सोचा कि आज जो भी संत आएंगे वो ही मेरे गुरु होंगे। शाम को रैदास जी का आये। मीरा ने उन्हें गुरु मानकर दंडवत प्रणाम किया और कहा कि मुझे अपनी शिष्या के रूप अपनाएं। रैदास जी मीरा के व्यक्तित्व को पहचान गए तो वो भी मीरा को शिष्या के रूप में पाकर प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने गले से “जप की माला” और “इकतारा” मीरा को दिया। मीरा ने हर्ष से तान छेड़कर गाया :-

पायो जी मैंन राम रतन धन पायो

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, कृपा कर अपनायो

एक दिन माँ वीर कुवँरी आई और कहनें लगी बेटी ऐसे ही भजन गाकर जिंदगी काटनी हैं? ब्याह के बाद ससुराल जाएगी पति की सेवा करनी होगी। मीरा ने कहा पति की सेवा ही तो कर रही हूँ माँ। ये सुनकर माँ को थोडा क्रोध आया और कहा पीतर की मूर्ति भी कहीं पति होती है क्या? और कब हुआ तेरा ब्याह? किसी ने देखा? तो मीरा ने कहा अभी कर दो भाबू (माँ) वर भी यही है और कन्या भी। माँ कुछ नहीं बोली और चली गई।

मीरा के ब्याह की चर्चा तेज हों गई। वीरमदेव जी (मीरा के बड़े बाबो सा) की पत्नि के भतीजे भोजराज से बात चलाई गई। जल्द ही मीरा का रिश्ता भोज के साथ तय हो गया। भोज भुआ को ले जाने के लिए उनके घर आये। मीरा ये सब कुछ देखकर रोते हुए अपने गिरधर से कहने लगी :-

जो तुम तोड़ो पिया मैंन ना ही तोड़ूँ रे,

मैं ना ही तोड़ूँ....

तौसे प्रीत तोड़ कृष्णा कोण संग जोड़ूँ?

भोज, जयमल (वीरमदेव के पुत्र) के साथ श्याम कुंज तक आये। मीरा को भोज व जयमल के आने का पता नहीं चला। जब दोनों ठाकुर जी को प्रणाम करके जाने लगे तब मीरा ने पूछा कौन? तब जयमल ने उत्तर दिया मैं हूँ जीजा सा। जयमल ने उनके दुःखी होने का कारण पूछा तो मीरा रोते हुए कहने लगी भाई! सब लोग मेरा ब्याह भोज के साथ करना चाहते हैं परन्तु मेरा ब्याह तो पहले ही गिरधर गोपाल के साथ हो चुका है। भोज सब सुनने के बाद कहने लगे देवी! मैं आपका अपराधी हूँ और आपको वचन देता हूँ कि बिना आपकी इच्छा के आपको स्पर्श नहीं करूँगा। शीघ्र ही भोज चित्तोड़ चले गए। चित्तोड़ से मीरा के लिए बहुत से वस्त्र और आभूषण भेजे गए परन्तु मीरा ने नहीं पहने।

अक्षय तृतीया के दिन विवाह होना तय हुआ लेकिन जब मीरा ब्याह की सुबह जगी तो वो पहले से ही दुल्हन की तरह सजी थी, सभी मीरा को ऐसे देखकर हैरान थे। क्योंकि शादी तो शाम को होनी थी। मीरा के गले में बेशकीमती हीरो का हार था और बहुत सारी सामग्री थी। तो माँ ने मीरा से पूछा ये सब कहाँ से आया तो मीरा ने कहा वर पक्ष से, आप सभी मेरा ब्याह कराना चाहते थे ना तो कल रात मेरे गिरधर ने मुझसे ब्याह कर लिया। मीरा ने भोज के साथ भी विवाह

की सभी रस्में पूरी की और माँ से आज्ञा लेकर अपने ठाकुर को साथ लेकर गईं। मीरा ने ठाकुर को अलग कक्ष में विराजमान किया। भोज मीरा का खुब सम्मान करते व उनके भक्ति मार्ग से जुड़े जो प्रश्न व संशय होते सब मीरा से पूछते ऐसे ही एक दिन भोज ने प्रभु के साक्षात् दर्शन के बारे में मीरा से पूछा तो मीरा ने अक्षय तृतीया की रात्रि का सारा वृत्तांत सुना दिया। और प्रभु द्वारा दिया बहुमूल्य हार व अन्य सामग्री दिखाई तो भोज के आश्चर्य का ठिकाना ना रहा। क्योंकि चित्तोड से भेजी गई सामग्री भी बिल्कुल वैसी ही थी, परंतु उनके सामने तुच्छ थी। भोज ने मीरा को गुरु मानकर राह दिखाने को कहा तब मीरा ने कहा कि आप सभी कार्यों को प्रभु की आज्ञा मानकर करें।

तीज पर मीरा को प्रभु दर्श की इच्छा हुई। मीरा साज-श्रृंगार करके प्रभु के आने का इंतकार करते हुए पद गाने लगीं। जैसे ही आँखें खोली प्रभु सामने बैठे थे। मीरा की खुशी का ठिकाना ना रहा। उन्होंने अपनी दासी (मंगला) से प्रभु के लिए भोग लाने व भोज को बुलाने के लिए कहा। भोज आए परन्तु उन्हें प्रभु के दर्शन नहीं हुए, उन्होंने दुःखी मन से मीरा से इसका कारण पूछा तो मीरा ने बताया कि **"समय आने पर आपको भी दर्शन होंगे"**। ऐसा प्रभु ने कहा है। भोज और रत्नसिंह दोनों भाईयों का आपस में बोहोत स्नेह था। एक दिन भोज ने रत्नसिंह को अपने और मीरा के बारे में सब वृत्तांत से बता दिया। जिसे सुनकर रत्नसिंह की आँखें भर गईं। भोज ने रत्नसिंह से इसके बारे में किसी से ना कहने वचन भी लिया। मीरा भक्ति- भावों में इतनी खो जाती कि उन्हें खुद का ध्यान नहीं रहता और घायल हो जाती। भोज जब बाहर युद्ध के लिए या किसी अन्य कार्य के लिए जाते थे तो मीरा की बोहोत फिक्र करते। एक बार जब भोज युद्ध को गए तो विषैले तीर से घायल हो गए। उनका घाव थोड़ा ही ठीक हुआ था। कि एक रात मीरा **"मेरे श्याम"** **"मेरे माधव"** पुकारती अपने कमरे से निकली और झरोखे से नीचे गिरने ही वाली थीं कि भोज ने उन्हें पकड़ लिया। जिससे उनका घाव उभर गया और फिर ठीक नही हुआ। मीरा ने पूरी लगन से भोज की देखभाल की, परन्तु कोई असर नहीं हुआ। भोज को लगा कि अब अंत समय नजदीक है तो उन्होंने मीरा से कहा कि मृत्यु के पहले एक बार प्रभु के दर्शन हो जाते। तभी ठाकुर जी की मूर्ति जैसे जीवित हो कहने लगी **भोज! तुमने मीरा की नही मेरी सेवा की है, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ।** फिर भोज के अपने अपराध प्रभु से कहे, तब प्रभु ने कहा स्वार्थ से कए गए कार्य अपराध बनते हैं भोज, निस्वार्थ भाव से किए गये कार्यों का कर्मफल तो मुझे ही अर्पित होता है। तुम मेरे ही भोज कहो क्या चाहिए तुम्हें? ऐसा कहकर प्रभु ने भोज को गले से लगा लिया। भोज ने रत्नसिंह को बुलाकर उनसे वचन लिया कि भाभी के ऊपर कोई कष्ट नही आने दोगे। और प्रभु के चरणों मे भोज लीन हो गए । मीरा को भोज के जाने का दुःख तो हुआ पर ज्यादा समय के लिए नहीं। सभी ने मीरा से श्रृंगार त्यागने को कहा परन्तु मीरा ने ये कहकर मना कर दिया कि भोज केवल उनके सखा थे मेरे पति द्वारिकाधीश हैं। सबको ये सब सुनकर बहुत अचंभा हुआ और क्रोध भी आया। फिर जब रत्नसिंह ने भी मीरा का समर्थन किया तब सब चुप हुए। परन्तु रत्नसिंह भी

शीघ्र ही इस दुनिया से चले गए। अब राणा विक्रमादित्य व नन्द उदयकुंवरी ने मीरा के मन्दिर जाने पर, संतो से प्रभु चर्चा करने पर पाबंदी लगाई। परंतु मीरा की भक्ति इनसे भी नहीं रुकी तो ठाकुर की मूर्ति को गायब कर दिया। मीरा ने जब सिंहासन खाली देखा तो करुण पुकार में गाने लगी। थोड़ी देर बाद ठाकुर फिर से सिंहासन पर विराजमान थे। मीरा की भक्ति की ख्याति सुनकर **सारंगपुर के नबाव** वेश बदलकर अपने वजीर की साथ मीरा का भजन सुनने आए व भेंट में हीरे का हार देने लगे जिसे मीरा ने लेने से इनकार करते हुए कहा कि इसे प्रजा की सेवा में लगा दें। जब राणा को ये सब बात पता चली तो उसे बहुत क्रोध आया। इसके बाद राणा ने मीरा को मारने का प्रयत्न किया। राणा ने **विष का प्याला जगन्नाथ जी** का चरणामृत कहकर मीरा के पास भिजवाया। जब मीरा पीने लगी तो उदयकुंवरी ने मीरा को पीने से मना किया व राणा की सच्चाई बताई। परन्तु मीरा ने कहा मेरे लिए तो यह जगन्नाथ जी का चरणामृत ही है और मीरा ने उसे पी लिया। विष का मीरा पर कोई असर ना हुआ ये सुनकर राणा को बहुत क्रोध आया। और उसने एक बार फिर से दो बहुत जहरीले **सांप,शालीग्राम** कहकर भिजवाए। परन्तु जब मीरा ने देखा तो वे **दो फूलों के हार** बन गए। राणा के इन सभी विरोधाभासों पर मीरा कहती:-

राणा जी मैं तो गोविंद के गुण गा सँ,
 राजा रुठे, नगरी रुठे, हरि रूठ कहाँ जा सँ?
 राणा जी मैं तो.....

मीरा अब चित्तोड़ में नहीं रहना चाहती थी। उन्होंने पत्र लिखकर तुलसीदास जी से सलाह मांगी और उनके कहने पर 30 वर्ष की आयु में चित्तोड़ छोड़ मेडता आ गई। और कुछ समय बाद मेवाड से वृंदावन चली गई। वृंदावन में एक दिन मीरा पूज्य श्री जीव गोस्वामी पाद के दर्शन करने गईं। तो उनके सेवक ने ये कहकर मना कर दिया कि **वो किसी स्त्री से नहीं मिलते।** तब मीरा ने कहा कि **धन्य हैं श्री गोस्वामी पाद मुझे तो आज तक यही लगता था कि वृंदावन् में केवल एकमात्र पुरुष श्री कृष्ण ही हैं।** परन्तु आज आपने मेरी भूल को सुधार दिया। जीव गोस्वामी इसे सुनकर बाहर आए और मीरा से कहा **"क्षमा करे मांते मुझसे भूल हो गई।** इसके बाद बहुत देर तक दोनों प्रभु की चर्चा करते रहे। वृंदावन में ही मीरा को अपने पूर्व जन्म में **गोपी** होने का ज्ञान हुआ कि उनका नाम **माधवी** था। जिसका विवाह नन्दगाँव में हुआ था। कृष्ण ने जब गोवर्धन पर्वत उठाया था तब पहली बार माधवी ने उनको देखा था। और देखते ही कृष्ण पर मुग्ध हो गई थी। मीरा अब अक्सर अपने पूर्व जन्म में पहुंच जाती थी। उनकी भक्ति ने उनके लिए ये सब सहज व सरल कर दिया। मीरा की भक्ति की गाथा **बादशाह अकबर** तक पहुंच गई। वो भी **तानसेन** के साथ आये और मीरा के करुण स्वर को सुनकर भाव-विभोर हो गए। मीरा संसार से विरक्त हो जोगन बन प्रभु से मिलन की आस में फिरती। प्रभु के ओदश पर सन **1621** में **25 वर्ष वृंदावन** में रहने के बाद मीरा द्वारिका के लिए चल पड़ीं। मीरा के साथ केवल उनकी दासी (मंगला) जो सखी समान थी रहती थी। द्वारिका में मीरा को अपने खाने-पीने या आराम की कोई सुध नहीं रहती। जिसके

कारण मीरा का शरीर क्षीण होता जा रहा था। एक दिन मीरा अचेत हो गई। उनकी दासी का रो-रो कर बुरा हाल था। तभी एक दिव्य साधु आये। मंगला ने उन्हें मीरा का हाल सुनाया। जैसे ही उन्होंने मीरा के सिर पर हाथ रखा उसके बाद ही मीरा उठ कर बैठ गई। मीरा को वो साधारण संत नहीं लगे तो मीरा ने उनसे पूछा आप कौन हो? तब उन्होंने बताया कि मैं प्रभु का निजी सेवक हूँ और उन्होंने आपके लिए संदेश दिया है। कि शीघ्र ही आप प्रभु से मिल जाएगी, अब ज्यादा समय नहीं रह गया है। मीरा को यह सुनकर प्रसन्नता हुई। और बाद में अहसास हुआ कि प्रभु स्वयं उससे मिलने आए थे। जब से प्रभु मीरा से मिल कर गए उसके बाद मीरा समुद्र के रास्ते सःशरीर प्रभु की दिव्य नगरी में पहुँच कर प्रभु के दर्शन करती व रानियों से भी मिलती। चित्तौड़ व मेवाड़ से कुछ लोग मीरा से क्षमा मांगने व पुनः लेकर जाने के लिए अनशन करने बैठ गए। मीरा ने उन लोगों की बात सुनकर कहा मैं प्रभु द्वारिकाधीश से आज्ञा लेकर आप लोगों को बताती हूँ। सुबह की आरती व भोग के बाद मीरा पुजारी जी से पूछ कर मंदिर के अन्दर गर्भगृह में गई। प्रभु को प्रणाम कर मीरा करुण स्वर में गाने लगी :-

मीरा को प्रभु..... साँची दासी बनाओ.....

द्वारिकाधीश स्वयं प्रकट हो गए व मीरा प्रभु में लीन हो गईं। घंटे-घडियाल स्वयं एक साथ बज उठे तब मंदिर का द्वार खोल देखा तो मीरा कहीं नहीं थीं। मीरा का तो मिलन प्रभु से हो गया था। इसका प्रमाण प्रभु की मूर्ति में से मीरा की साडी के निकले टुकड़े ने दे दिया।

निष्कर्ष:- मीरा ने भक्ति को एक नया आयाम दिया। मीरा का जो प्रभु के प्रति प्रेम था वो उनको अमर कर गया। मीरा को समकालीन लेखकों व कवियों ने अपने लेखों व काव्यों में वो स्थान नहीं दिया जो मिलना चाहिए था। परन्तु भक्तिकालीन काव्य में मीरा को यथा स्थान दिया गया। यदि उनके द्वारा भी मीरा उल्लेख नहीं किया गया होता तो मीरा गुमनामी में खो जाती। और भोज के कहने पर मीरा की दासी उनके भजनों, व पदों की ना लिखती तो वो भी प्राप्त नहीं होते। अपनी आलौकिक भक्ति व प्रेम के कारण **मीरा ध्रुव तारों की तरह सदैव चमकती रहेगी।**

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. राणावत कुंवरी सौभाग्य "मीरा चरित " प्रकाशक- मृत्युञ्जय सिंह सिसोदिया, 45 रविंद्र पथ, पो. बडनगर, जिला उज्जैन, संस्करण - 2017 ।
2. स्वरूप आनन्द स्वामी "मीरा सुधा-सिन्धु" प्रकाशक श्री मीरा प्रकाशन समिति, भीलवाडा (राजस्थान) 1962
3. ठाकुर रामचन्द्र "मीरा प्रेम दीवानी" प्रकाशक - बोरा एन्ड कम्पनी पब्लिशर्स लिमिटेड, 3, राउंड बिल्डिंग बबई प्रथम संस्करण - 2017
4. वेंकटेश कार्तिक, अनुवाद - रुचिका, "Dally o" www. Thelallantop. Com, 26 DEC-2017।
5. देवव्रत "मीरा बाई कौन है?" समाचार पत्रिका 2024 केरल www. Dervrat yoga. Com



जमशेदजी टाटा : भारत का निर्माण

रीना कुमारी, शोधार्थी,

इतिहास विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश:-

परतंत्र भारत की गोद में जन्मी उन्नीसवीं शताब्दी, जिसे विश्वभर में परिवर्तनशील युग का आधारशिला माना जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ ही जिज्ञासाओं से वशीभूत मानव की आविष्कारिणी बुद्धि ने अपने करतब दिखाने शुरू कर दिए। विश्व की धरातल पर आविष्कारों की होड़ लग गयी। विशेषकर पश्चिमी देशों में इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। यद्यपि भारत का संपर्क उस समय पश्चिमी देशों से जुड़ चुका था, परन्तु गुलामी की जंजीर में जंकड़े होने के कारण भारतीय मानवता की मानसिकता अंदर ही अंदर ज्वालामुखी बनती जा रही थी। यह कैसी विडम्बना थी? किस अभिशाप का दुष्प्रभाव था यह? जिसका शिकार होकर दुनिया को 'सत्यमेव जयते' और 'अहिंसा परमो धर्मः' की पवित्र सीख देकर कुत्तार्थ करने वाला, धर्म अध्यात्म और संस्कृति की नीतिगत तस्वीर को मानवता के बीच स्थापित करने वाला और विश्व में समृद्धि के दृष्टिकोण से 'सोने की चिड़िया' कहलाने वाला भारत 'गुलामी' की मानसिकता में फँसकर सिसकियाँ भरने तक सीमित रह गया था। भारतीयों की औकात अंग्रेजी हुकूमत के चंद सफेदपोश सामंतों के चंगुल में फँसकर 'गुलाम' और 'ब्लेक मंकी' (काला बन्दर) के न्यूनतम स्तर तक गिर चुकी थी। अपने ही देश में भारतीय सात समुंदर पार से आए अंग्रेजों के सामने सिर उठाने की जुर्रत नहीं कर पाते थे। वैदिक काल से समृद्धि का सिरमौर रह चुके भारत पर अपना आधिपत्य कायम करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने जमकर भारतीय संपदा की लूट-खसोट की। परिणामस्वरूप 'माल महाराज के मिरजा खेले होली' की कहावत को चरितार्थ करते हुए इंग्लैण्ड आधुनिकता के मार्ग पर कदम रखकर "विश्व की उद्योगशाला" कहा जाने लगा। दूसरी ओर अपने स्वर्णिम अतीत को खोकर गुलामी के गलियारे में कराह रहे भारतीयों का नए आविष्कारों की ओर कदम रखना तो दूर अंग्रेजों की दासता का खुलकर विरोध करने की हिम्मत भी बड़ी मुश्किल से जुटानी पड़ती थी। यदा-कदा विद्रोह की भनक लगते ही ब्रिटिश सामंतों द्वारा स्वाधीनता की आवाज उठाने वाले भारतीयों को इस तरह कुचला जाता कि उस दरिंदगी को देखने के बाद कोई अन्य भारतीय स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न तक देखने की हिम्मत न करे। भिन्न-भिन्न कारणों से प्रभावित होकर भारत की सांस्कृतिक, व्यावसायिक और राजनीतिक विरासत रसातल तक पहुँच चुकी थी।

ऐसी विषम परिस्थिति में भारत में कई महापुरुषों का जन्म हुआ जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण करने के लिए संघर्ष आरंभ किया। कर्मवीर जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा उन्हीं महापुरुषों में से एक हैं। उन्नीसवीं सदी में भारत के औद्योगिक पुनर्निर्माण के लिए संघर्ष करने वालों में जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा ऐसे पहले भारतीय थे, जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता और कुशल सूझ-बूझ से अपने मानस-पटल पर ही एक समृद्ध भारत का निर्माण कर लिया था। उन्होंने अपने सपनों की समृद्ध सृष्टि को मात्र सपनों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि आने वाली पीढ़ियों में धैर्य और साहस का प्रतीक एक ऐसी 'कर्मवीरता' का बीज बोया, जिससे उनके सपनों की समृद्ध सृष्टि हकीकत की धरातल तक पहुँचकर आज भी नई पीढ़ियों को अपनी कर्मवीरता की पहचान कराता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए अमर प्रेरणास्रोत बनकर मार्गदर्शन करता रहेगा।

यद्यपि जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा द्वारा उठाए गए सभी कदम सांसारिक थे किन्तु उनकी दूरदर्शिता में उसी प्रकार परमार्थ सन्निहित था जिस प्रकार आत्मा के अंदर परमात्मा का रूप सन्निहित रहता है। टाटा द्वारा स्थापित वो सभी चिरस्मरणीय स्मृतियाँ इस बात की साक्षी हैं कि उनका लक्ष्य पूर्णरूपेण राष्ट्रीयता से ओतप्रोत था जिन्हें याद करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र आज सम्मान के साथ उन्हें नमन करता है।

प्रस्तावना:-

टाटा स्टील के संस्थापक, जमशेदजी एन. टाटा एक महान दिव्यद्रष्टा तथा मूल अन्वेषक होने से ज्यादा एक सच्चे राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। विश्व के औद्योगिक धरातल पर भारत का नाम प्रभावशाली ढंग से स्थापित करने के लिए नौशेरवानजी टाटा सदैव याद किए जाएंगे। भारत को औद्योगिक प्रगति माध्यम से समृद्ध बनाने के अपने संकल्प को उन्होंने बड़ी लगन और तन्मयता के साथ वास्तविकता में बदल डाला। उन्होंने न केवल आधुनिक भारत के नवनिर्माण में औद्योगिकरण का बीज बोकर राष्ट्र को विकास के पथ पर गतिशील किया बल्कि लीक से अलग हटकर एक ऐसा मार्ग भी ढूँढ निकाला जो आज सम्पूर्ण औद्योगिक जगत के लिए प्रेरणा पुँज है। यद्यपि जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा द्वारा किए गए सभी कार्य सांसारिक हैं। किन्तु उनके गर्भ में जन कल्याण और राष्ट्रवादी भावना सन्निहित है।

1907 से 1919 के बीच साकची (जमशेदपुर) भारत में एक वृहत्त औद्योगिक केन्द्र बनकर उभरा, 27 फरवरी 1908 को 'टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' के वर्कर्स की स्थापना हो जाने के बाद साकची भारत का प्रथम इस्पात नगर बना तथा टाटा स्टील को भारत की प्रथम इस्पात कम्पनी होने का गौरव प्राप्त हुआ। कारखाना निर्माण के समय से ही यह स्थान भारत में रोजगार प्राप्ति के लिए प्रमुख केन्द्र बना रहा। वर्तमान परिस्थिति में जमशेदपुर एक सम्पूर्ण धर्म निरपेक्ष भारतीयता की स्वच्छ छवि प्रदर्शित करने वाला राष्ट्र का अनूठा शहर है। भारत के विभिन्न प्रान्तों से आकर भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मों के लोग इस औद्योगिक नगर में एक साथ मिल-जुलकर कार्य करते हैं। इस छोटे से नगर को ध्यान से देखने पर यहाँ सम्पूर्ण भारतीयता की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है।

जमशेदजी टाटा का यह मानना था कि "देश की प्रगति के लिए सर्वोत्तम और सर्वाधिक प्रतिभाओं" को प्रकाश में लाना चाहिए। ताकि देश की बड़ी सेवा के लायक उन्हें बनाया जा सकें, उन्होंने औद्योगिक भारत के निर्माण के लिए 'टाटा' नाम का एक ऐसा दीप प्रज्ज्वलित किया जाक आज देश में औद्योगिक प्रगति का मिसाल बन गया है।

टाटा स्टील, जमशेदपुर के जनक जमशेदपुर टाटा द्वारा किए गये अनेक कार्य आज भी लोगों को प्रेरित एवं विस्मित करते हैं। भविष्य को उज्ज्वल करने की अपनी अद्भुत क्षमता के बल पर ही उन्होंने एक स्वनिर्भर औद्योगिक भारत का सपना देखा था। औद्योगिक भारत के विनिर्माण में उनके योगदान का सम्मान करते हुए भारत के तत्कालीन वायसराय ने साकची का नाम बदलकर 'जमशेदपुर' शहर को उनके नाम पर समर्पित किया। जमशेदपुर टाटा ने औद्योगिक भारत के नवनिर्माण में अपने अदम्य साहस से जो बीज बोये और उससे विश्व के औद्योगिक धरातल पर जो फल प्राप्त हो रहा है। वह प्रत्येक भारतीय के लिए प्रेरणास्रोत है।

भारत के निर्माण में जमशेदजी टाटा का योगदान:-

विश्व की औद्योगिक धरातल पर भारत का जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा सदैव याद किए जाएंगे। भारत को औद्योगिक प्रगति के माध्यम से समृद्ध बनाने के अपने संकल्प को उन्होंने बड़ी लगन और तन्मयता के साथ वास्तविकता में बदल डाला। उन्होंने न केवल आधुनिक भारत के नवनिर्माण में औद्योगिकरण का बीज बोकर राष्ट्र को विकास के पथ पर गतिशील किया बल्कि लीक से हटकर एक ऐसा मार्ग भी ढूँढ निकाला जो आज सम्पूर्ण औद्योगिक जगत के लिए प्रेरणा पुँज है। यद्यपि जमशेदजी नौशेरवानजी टाटा द्वारा किए गए सभी कार्य सांसारिक हैं, किन्तु उनके गर्भ में जन कल्याण और राष्ट्रवादी भावना सन्निहित है। जमशेदजी टाटा एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता और साहस से राष्ट्र की समृद्धि हेतु अपार धन-संपदा का सृजन किया था। धन-संपदा अर्जित करने के साथ-साथ उन्होंने हजारों लोगों की रोजी-रोटी भी दिया। उनके द्वारा स्थापित समृद्ध सृष्टि को आज उनके कुशल, उत्तराधिकारियों ने एक आदर्श के रूप में स्थापित कर दिया है। जो अन्य के लिए एक आदर्श है। जमशेदजी टाटा ने भारतीय उद्योग को सामयिक साँचे में ढालकर विकास की एक नयी धारा को जन्म दिया था, जो आधुनिक भारत के निर्माण के क्षेत्र में काफी सहयोगी सिद्ध हुआ। उन्नीसवीं सदी

में नये सिरे से आधुनिक भारत के निर्माण के लिए सुनियोजित ढंग से संघर्ष करने वालों में कर्मवीर जमशेदजी एन. टाटा ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अपने मानस-पटल पर ही एक समृद्ध भारत का निर्माण कर लिया था। वे अपने सपनों की समृद्ध सृष्टि को अमरत्व प्राप्त करने के बाद भी वास्तविकता के धरातल पर लाने में सफल रहें। उनका व्यक्तित्व नयी पीढ़ियों को अपनी कर्मवीरता की पहचान कराता रहेगा और उनके लिए प्रेरणास्रोत बनकर मार्गदर्शन करता रहेगा। जमशेदजी टाटा की दिव्य प्रतिभा ने जिस उदात्त दानशीलता की परंपरा को जन्म दिया था। उसका निर्वाह उनके उत्तराधिकारियों ने बड़ी निष्ठा के साथ किया।

जमशेदजी टाटा जाति, धर्म, समुदाय और क्षेत्रवाद से परे हटकर एक राष्ट्रवादी प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके द्वारा किये गए कार्यों में जन कल्याण और राष्ट्रीयता की स्पष्ट झलक मिलती है। जमशेदजी टाटा तब से राष्ट्रवादी थे, जब इस शब्द ने अपनी वास्तविक महत्ता भी प्राप्त नहीं की थी। टैगोर की तरह उनकी राष्ट्रवादिता की जड़े मानवता के लिए गहरे प्रेम में डूबी हुई थी। उन्होंने देश के लिए अपनी रचनात्मक प्रतिभा को अर्पित किया था। इसलिए उनके जीवन का प्रत्येक दिन तैयारी का दिन था, उस तैयारी का दिन, जब देश अपनी नियति का स्वामी स्वयं होगा। जब भारतीयों को एकसूत्र में बाँधकर नए सिरे से संघर्ष करने के लिए 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बंबई में स्थापना की गयी। तब अपने सभी व्यावसायिक कार्यों को छोड़कर मन में भारत को समृद्ध बनाने का स्वप्न लिए हुए जमशेदजी टाटा उसमें उपस्थित थे। जिस समय 'स्वदेशी' शब्द के माध्यम से चंद बुद्धिजीवी भारतीय समाज में नई चेतना लाने का प्रयास कर रहे थे। उस समय जमशेदजी टाटा ने अपनी राष्ट्रवादी भावना को इस तरह से देश के समक्ष प्रस्तुत किया कि देश भर में 'स्वदेशी' की लहर फैल गयी।

जमशेदजी टाटा का यह मानना था, "देश की प्रगति के लिए सर्वोत्तम और सर्वाधिक प्रतिभाओं को प्रकाश में लाना चाहिए, ताकि देश की बड़ी सेवा करने के लायक उन्हें बनाया जा सकें", उन्होंने औद्योगिक भारत के निर्माण के लिए 'टाटा' नाम का एक ऐसा दीप प्रज्वलित किया जो आज देश में औद्योगिक प्रगति और क्रांति का मशाल बन गया है। विश्वभर का परिभ्रमण कर अथाह ज्ञान अर्जित करने वाले जमशेदजी टाटा अपने देश के उत्थान के लिए दुनिया के कोने-कोने में जहाँ कहीं भी अच्छी चीजें दिखी उन्हें स्वदेश लाने का पूरा प्रयत्न करते। ताकि उन नई चीजों से भारत को परिपूर्ण कर आगे बढ़ायें।

हार्वर्ड की इतिहासकार ऐसा रॉथ्सचाइल्ड का कहना है, "भारत एक जीता हुआ राष्ट्र था और स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक सरकार व मुक्त उद्यम में विश्वास रखने वाले अंग्रेज भारत के संदर्भ में उन आदर्शों को नहीं मानते थे, फिर भी टाटा और उनके सहयोगी ब्रिटिश शासन के कठोर अवरोधों से बाहर निकलने में कामयाब रहें" उनके दृष्टिकोण से टाटा की कहानी अमेरिका या यूरोप के प्रतिष्ठित दिग्गजों की असाधारण कहानियों के मुकाबले कहीं ज्यादा आधुनिक है। क्योंकि वह शुरू से ही वैश्विक रही थी।

1870 के दशक तक, ब्रिटिश साम्राज्य अपने उपनिवेशों में कारखाने के मालिकों, खासकर अमेरिकी गृह युद्ध के दौरान मददगार रहे। कपास उद्योग पर अपना शिकंजा कसने लगा था। टाटा और अन्य उद्योगपतियों ने चीन के बाजार में घुसकर अपने निर्यातों को बढ़ा लिया था, जिससे लंकाशायर और मैनचेस्टर की मिलों को नुकसान होने लगा था। उन्हें संरक्षण देने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारत में अने कपड़ों पर ऊँचे आयात और सीमा शुल्क लगा दिये। यह बढ़ोत्तरी ऐसे दशक में आई जो भारत के लिए मुश्किलों से भरा हुआ था। जमशेदजी टाटा सभी मुश्किलों से लड़ते हुए आगे की ओर अग्रसर होते गए। जमशेदजी की अंतिम परियोजना 1904 में उनकी मृत्यु से ठीक पहले खुली। बंबई में आलीशान ताज महल पैलेस होटल, जिसका नाम भारत की एक शानदार इमारत के नाम रखा गया और जो भारतीय शानो शौकत का बहुत बड़ा ब्रांड बन गया है। संस्थानों की स्थापना टाटा की महान परोपकारी विरासत का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके बारे में उन्होंने एक बार लिखा था, "किसी राष्ट्र या समुदाय को उसके सबसे कमजोर और असहाय सदस्यों को सहारा देकर आगे बढ़ाकर उसका विकास नहीं किया जा सकता, बल्कि उसके सबसे अच्छे और सबसे प्रतिभाशाली लोगों को उठाकर उन्हें देश की सर्वोत्तम सेवा के लिए तैयार कर उसे आगे बढ़ाया जा सकता है।"

निष्कर्ष:-

जमशेदजी टाटा द्वारा भारत के निर्माण के लिए किए गए कार्य आज भी लोगों को प्रेरित करते हैं। भविष्य को उज्ज्वल करने की अपनी अद्भुत क्षमता के बल पर ही उन्होंने एक स्वनिर्भर औद्योगिक

भारत का सपना देखा था। भारत के निर्माण के लिए जमशेदजी टाटा के नाम का एक ऐसा दीप प्रज्ज्वलित किया जो आज देश में औद्योगिक प्रगति का मिसाल बन गया है।

संदर्भ सूची:-

1. कर्मवीर टाटा वर्कर्स यूनियन 2001 एवं समृद्धि की ओर
2. कर्मवीर टाटा वर्कर्स यूनियन 2001 एवं समृद्धि की ओर
3. प्रेरणास्रोत टाटा वर्कर्स यूनियन 1999, कर्मवीर एवं समृद्धि की ओर
4. प्रेरणास्रोत टाटा वर्कर्स यूनियन 1999, कर्मवीर एवं समृद्धि की ओर
5. समृद्धि की ओर एवं कर्मवीर टाटा वर्कर्स यूनियन 2001, कर्मवीर टाटा वर्कर्स यूनियन 2001
6. विनय बहल, मेकिंग ऑफ़ दी इंडियन वर्किंग क्लास, 1995, प्रेरणास्रोत, टाटा वर्कर्स यूनियन 2001 एवं कर्मवीर टाटा वर्कर्स यूनियन 2001
7. अवतरण – सुनील खिलनानी 2016, मंजुल पब्लिसिंग हाऊस, भोपाल।

मो0 नं0 –7903430842

Email id-reenakumari.110014@gmail.com



स्वामी दयानंद सरस्वती : हिंदू समाज सुधारक

राहुल दीप, शोध छात्र इतिहास विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा।
डॉ. मोना गुलाटी, इतिहास व्याख्याता,
जी.एस.एस.एस. राठीवास नूह, हरियाणा।

शोध सारांशः

भारत में हुए हिंदू समाज सुधारकों में महर्षि दयानंद सरस्वती का अग्रणी स्थान व विलक्षण योगदान रहा है। जिस प्रकार पूर्वी भारत (बंगाल) व अन्य प्रांतों में राजा राममोहन राय तथा विवेकानन्द द्वारा धर्म सुधारों का क्रम शुरू किया गया। इसी प्रकार उत्तर भारत में महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज व वेदों की विशुद्ध व्याख्या प्रस्तुत कर महत्वपूर्ण समाज सुधारों का प्रवर्तन किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज की रूढ़िवादी सोच अंधविश्वास व कुप्रथाओं पर गहरा कुठाराघात किया तथा वेदों की व्याख्या प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्राचीन वैदिक धर्म इतना रूढ़िवादी नहीं था, अपितु समाज में समानता व्याप्त थी। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वर्तमान वर्णव्यवस्था का आधार 'जन्म' न होकर बल्कि 'कर्म' पर आधारित था। महर्षि दयानंद सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रति जागृति बढ़ाई, आर्य संस्कृति का शुद्धतम प्रचार- प्रसार किया, हिंदी व संस्कृत भाषाओं के प्रति रुचि पैदा की और इससे बढ़कर उनका योगदान अछूतों व दलितों को वेदाध्ययन का अधिकार प्रदान करना था। इन सब कार्यों के लिए महर्षि दयानंद सरस्वती का भारतीय इतिहास में योगदान सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

मुख्य शब्दः- स्वामी दयानंद सरस्वती, हिंदू समाज सुधारक, आर्य समाज

शोध क्रियाविधिः-

इस शोध पत्र 'स्वामी दयानंद सरस्वती: हिंदू समाज सुधारक' को पूर्णतः ऐतिहासिक विधि के अनुरूप लिखा गया है। तथ्यों को मुख्य रूप से पाठ्य दृष्टिकोण, प्रख्यात विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तकों और शोध लेखों पर केंद्रित किया गया है। इस शोध लेख की रूपरेखा बनाने के लिए विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में लिखे गए शोधपत्रों को ध्यान में रखा गया है। अतः इस शोध लेख को लिखने के लिए प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

शोध लेख के उद्देश्यः-

इस शोध पत्र 'स्वामी दयानंद सरस्वती : हिंदू समाज सुधारक' का उद्देश्य स्वामी दयानंद सरस्वती जी द्वारा किए गए समाज सुधारों का अध्ययन करना है। इस शोध पत्र में उनके द्वारा हिंदू समाज सुधारों, आर्य समाज द्वारा किए गए कार्यों व राष्ट्र के प्रति उनकी श्रद्धा को रेखांकित किया गया है।

भूमिका :-

हिंदू समाज सुधारों के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती जी का मूल नाम 'मूलशंकर' था। जब उन्होंने सन्यास ग्रहण किया, तब उनके गुरु ने उनका नाम दयानंद रख दिया। मूलशंकर जी का जन्म 1824 ई. में गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर हुआ था। वे औदिक्य सामवेदी ब्राह्मण (वह वर्ग, जिसका मुख्य कर्तव्य मंदिरों और धार्मिक दायित्वों का निर्वहन करना था) परिवार से संबंध रखते थे। आठ वर्ष की आयु तक मूलशंकर जी ने देवनागरी लिपि में पारंगता प्राप्त कर ली थी। 14 वर्ष की आयु तक, उन्होंने यजुर्वेद और अन्य वेदों के मंत्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मूर्ति पूजा से असंतुष्ट

मूलशंकर यह नहीं समझ पाए कि लोगों को स्वयं भगवान की बजाय मूर्ति की पूजा क्यों करनी पड़ती है। मूलशंकर ने अगले दो वर्ष 'निघंटु' (वैदिक शब्दों की शब्दावली), निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति), पूर्व-मीमांसा (वेदों के आनुष्ठानिक भागों की जाँच) और आनुष्ठानिक व बलि संबंधी संस्कारों पर ग्रंथों का अध्ययन करने में बिताए ।

आध्यात्मिक 22 वर्ष की आयु में मूलशंकर जी ने सच्चे ज्ञान, शुद्धता और मुक्ति की खोज में गृहस्थ जीवन त्याग दिया। वे कई बुद्धिमान ऋषि मुनियों से मिले, लेकिन वे स्वामी विरजानंद, एक अंधे गुरु से बहुत प्रभावित थे। हालांकि, इन्हीं विरजानंद के मार्गदर्शन और शिक्षाओं से ही स्वामी दयानंद सरस्वती को अपने प्रश्नों का स्पष्टीकरण मिल पाया था।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी को उनके तीन प्रमुख योगदानों व कृतियों से समझा जा सकता है – जो 'सत्यार्थ प्रकाश' 'वेद – भाष्य भूमिका' और 'वेदांग प्रकाश' हैं। इसके अलावा उनके द्वारा संपादित पत्रिका "आर्य पत्रिका" भी उनके विचारों को दर्शाती है। एक प्रतिभावान लेखक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा स्थापित करने के अलावा, उपरोक्त कृतियाँ एक धर्म सुधारक के रूप में उनकी भूमिका को दर्शाती हैं।

उनके लिए वेद हिंदू संस्कृति का आधार स्तंभ हैं और वे ईश्वर द्वारा रचित हैं। उन्होंने हिंदू धर्म को उसके दोषों से मुक्त करने और उसे तर्कसंगत आधार प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट नारा दिया— "वेदों की ओर लौटो" एक समाज सुधारक के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित न होकर, हिंदू धर्म के वास्तविक प्रतीक थे। उनका दृष्टिकोण हिंदू धर्म की भावना को मजबूत करने के लिए सुधारात्मक प्रवृत्ति का था।

वे मूर्ति पूजा, जाति व्यवस्था, छुआछूत, कर्मकांड, भाग्यवाद, शिशुहत्या, दहेज प्रथा, आदि कुप्रथाओं के प्रबल विरोधी थे। वे महिलाओं की स्वतंत्रता और दलित समाज के कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध थे। वेदों और हिंदुओं की सर्वोच्चता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म का विरोध किया और अन्य संप्रदायों को हिंदू धर्म में वापिस लाने के लिए शुद्ध आंदोलन चलाया। उनका दृढ़ मानना था कि वैदिक शिक्षा के प्रसार के माध्यम से भारतीय समाज का पुनरुद्धार किया जा सकता है। वास्तव में स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रयासों ने लोगों को पश्चिमी शिक्षा के चंगुल से मुक्त किया। दयानंद सरस्वती ने लोकतंत्र के विकास और राष्ट्रीय जागरण में भी योगदान दिया। वास्तव में उन्होंने ही 'स्वराज' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया था।

ऐसे समय में जब हिंदू दर्शन और धर्म ग्रंथों का अनेक संप्रदायों के अंतर्गत विभाजन था, स्वामी दयानंद ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा उद्घोषित किया, क्योंकि वे वेदों को ईश्वरीय ज्ञान का स्रोत मानते थे। वैदिक ज्ञान को पुनः सक्रिय करने और चार वेदों – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के बारे में विशुद्ध ज्ञान के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए स्वामी जी ने कई धार्मिक पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की, जिनमें मुख्य हैं— सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका संस्कार विधि, आर्याभिविनय, वेदांगप्रकाश, भ्रान्तिनिवारण, गोकर्णानिधि, आदि।

स्वामी जी ने अजमेर में स्थित परोपकारिणी सभा स्वयं 1882 में अपने कार्यों और वैदिक ग्रंथों को प्रकाशित करने और प्रचार करने के लिए की थीं।

आर्य समाज की स्थापना व हिंदू समाज सुधारः—

महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने हिंदू समाज में फैली बुराइयों पर दृढ़ता से प्रहार किया। 1863 ई. में स्वामी जी ने झूठे धर्मों का खण्डन करने के लिए हरिद्वार में 'पाखंड खंडिनी' पताका फहराई। 1875 ई. में उन्होंने बम्बई में 'आर्य समाज' की स्थापना की, जिसका प्रमुख ध्येय प्राचीन वैदिक धर्म की दोबारा स्थापना करना था। जो झूठे रीति-रिवाज व कुरीतियाँ हिंदू धर्म को जकड़े हुई थी उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रण लिया गया। इसके दो वर्ष पश्चात आर्य समाज लाहौर की स्थापना हुई, जिससे आर्य समाज व इसके सिद्धांतों का बहुत प्रचार-प्रसार हुआ। स्वामी जी का मुख्य ध्येय भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक करना था। वे आर्य धर्म को ही राष्ट्र धर्म मानते थे। उन्होंने तत्कालीन समाज व हिंदू धर्म में अनेक त्रुटियों को करीब से देखा। उन्होंने इस क्षेत्र में अथक परिश्रम किया था।

आर्य समाज के सिद्धांतः

1. सब सत्य विद्या और, जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। उनका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।
3. वेद सब सत्य विधाओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।
4. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं होना चाहिए। किन्तु सब की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र हैं।

आर्य समाज ने शुद्धि आंदोलन भी आरम्भ किया, जिसके अंतर्गत लोगों को अन्य धर्मों से हिंदू धर्म में वापिस लाने का प्रयत्न किया गया। लगभग 60 हजार से ज्यादा हिंदू लोगों को जिन्हें 1923 के मोपला विद्रोह और 1947 के भारत विभाजन के दौरान जबरन मुसलमान बनाया गया, पुनः उन्हें हिंदू धर्म में लौटने का अवसर दिया गया।

स्वामी दयानंद सरस्वती व हिंदू समाज सुधार :-

स्वामी जी के सभी विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में वर्णित हैं। स्वामी दयानंद की मुख्य विशेषता यह थी कि उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, शिक्षा तथा समाज से कुछ नहीं लिया। उन्होंने तो केवल यह कहा कि वेद और उपनिषद से परे कुछ नहीं है। स्वामी जी के कार्यों का सबसे अधिक प्रभाव समाज सुधार के क्षेत्र में देखने को मिलता है। स्वामी जी के दर्शन एवं उनके कार्यों का मुख्य उद्देश्य एक ईश्वर की उपासना तथा सब मनुष्यों में बंधुत्व, स्त्री-पुरुष की समानता, मनुष्यों तथा जातियों के बीच पूर्ण न्याय तथा निष्पक्षता तथा सम्मान की भावना है।

स्वामी जी मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध, तंत्र, मंत्र तथा झूठे कर्मकांडों के सख्त विरोधी थे। वे पुराणों को झूठी कथाओं का समुच्चय मानते थे। उनका वेदों के विषय में तर्क था कि वेदों की भाषा प्राचीन है। उनका कहना था कि अपनी बुद्धि का प्रयोग करो और वैदिक मंत्रों के अर्थों को तर्क की कसौटी पर परखो और तब अपनाओ। दयानंद सरस्वती जी ने पुरोहित वर्ग के धार्मिक तथा सामाजिक पक्ष में सर्वोच्चता के दावे का तर्कों के साथ खंडन किया। उनके अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को वेद के पढ़ने तथा उसे अपने तर्क के अनुसार निर्वाचन करने का अधिकार है। सामाजिक जीवन में उन्होंने अस्पृश्यता, जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था, बाल विवाह आदि पर किया। भारत के सामाजिक इतिहास में वे पहले ऐसे समाज सुधारक थे, जिन्होंने शुद्ध तथा स्त्री को वेद पढ़ने तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवित धारण करने तथा स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष किया। सबसे महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए किया। बाल विवाह, विधवा को नीच दृष्टि से देखना, परदा, दहेज प्रथा, बहु-विवाह, वेश्यागमन, देवदासी प्रथा, इत्यादि का कभी समर्थन नहीं किया। इस प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिन्दू समाज में समानता की उस भावना को जागृत किया, जो आज हमें अपने संविधान में देखने को मिलती है। भारत के ज्ञात इतिहास में हिन्दू धर्म तथा समाज में इतना मूलभूत, दूरगामी, व्यापक तथा प्रतिभावान सुधारक अभी तक कोई नहीं हो सका। सम्भवतः अस्पृश्यता का त्याग तथा स्त्री-पुरुष समानता का जो अधिकार आज हमारे संविधान का अंग है, उन्हीं के उपदेशों का परिणाम है। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने आत्मा की अमरता को स्वीकार किया एवं पुनर्जन्म को सत्य माना, लेकिन श्राद्ध जैसे कर्मकाण्डों का विरोध किया। स्वामी जी ने एकेश्वरवाद को स्थापित कर अवतारवाद का खण्डन किया एवं धार्मिक यात्राओं का विरोध किया। स्वामी जी के अनुसार लड़कों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 25 वर्ष एवं लड़कियों के लिए 16 वर्ष निर्धारित करनी चाहिए। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने 'चार स्व' की धारणा दी। ये हैं— स्व राज्य, स्व धर्म, स्व-देशी व स्व भाषा।

स्वामी दयानंद सरस्वती जी अच्छी तरह से जानते थे कि ज्ञान की कमी हिंदू धर्म में फैली कुप्रथाओं का मुख्य कारण है। स्वामी दयानंद सरस्वती जी के मूल विचारों में गुरुकुल पद्धति को श्रेष्ठ माना जाता है। पहला गुरुकुल दिल्ली के समीप सिकन्दराबाद में खोला गया, तथा बाद में इसे वृन्दावन स्थानांतरित कर दिया गया। परंतु सबसे प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी को ही माना जाता है। उनकी मान्यताओं एवं शिक्षाओं से प्रेरित होकर, उनके शिष्यों ने 1883 ई० में उनकी मृत्यु के बाद दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज ट्रस्ट एंड मैनेजमेंट सोसाइटी की स्थापना कर देश के विभिन्न हिस्सों में विद्यालय व कॉलेजों की नींव रखी।

उनके इन्हीं प्रयासों के कारण ऐनी बेसेंट ने कहा था स्वामी दयानंद ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि "भारत भारतीयों के लिए है"।

ईसाई, मुस्लिम तथा अन्य धर्म प्रचारक उस समय हिन्दू धर्म की कुरीतियों का जमकर मजाक उड़ाते थे। स्वामी दयानंद जी ने शास्त्रार्थ कर प्राचीन कट्टरपंथियों तथा अन्य धर्म-प्रचारकों को परास्त किया। फलस्वरूप हिंदू धर्म में एक नया आत्म-विश्वास आत्म-परीक्षण तथा आत्मशुद्धि की भावना जागी। कुछ लोगों ने उनके इन विचारों को असहिष्णुता का प्रतीक बताया। वेलेन्टाइन शिरोल ने अपनी पुस्तक में आर्य समाज को 'भारतीय अशांति का जन्मदाता' बताया है। वास्तव में दयानंद की सार्वभौमिकता और उदारचित्त भावना प्राचीन हिन्दू धर्म की उदारवादी परम्पराओं के पूर्णतया अनुकूल थी। यद्यपि इस आन्दोलन का बाह्य स्वरूप वैदिक परम्पराओं की पुनः स्थापना करता था, परन्तु उन्होंने आधुनिक ज्ञान व तर्क को अपनाया। उनके इन्हीं कार्यों के फलस्वरूप स्वामी दयानंद सरस्वती जी को 19वीं शताब्दी का उत्तरी भारत का 'हिंदू लूथर' या 'मार्टिन लूथर' कहा जाता है।

निष्कर्ष: —

अतः कहा जा सकता है कि स्वामी दयानंद सरस्वती ने तत्कालीन समय में हिंदू समाज में फैली कुरीतियों और कुप्रथाओं पर गहरा कुठाराघात किया था। उन्होंने स्त्री शिक्षा, दहेज प्रथा का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, वर्ण व्यवस्था का विरोध, अछूतों का उद्धार, शिक्षा के क्षेत्र, आदि में अथक परिश्रम किया। सम्भवतः अस्पृश्यता का अंत तथा स्त्री-पुरुष के बराबर का जो अधिकार हमारे संविधान का अंग है, उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। जीवन अथवा समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जो स्वामी दयानंद सरस्वती जी के विचारों से अछूता रहा हो। स्वामी जी जैसे, विरले महापुरुष ही समाज को एक सही राह दिखा सकते हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने एक समाज सुधारक के रूप में भारतीय समाज के उन तमाम क्षेत्रों को झकझोर दिया, जो पतन की ओर अग्रसर हो रहे थे। उन्होंने अपने विचारों के माध्यम से स्वदेशी, स्वभाषा, स्वशासन को बढ़ावा देकर राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहन दिया। हिंदू धर्म में हीनता की भावना आ गई थी, उससे हिंदू धर्म को मुक्त करवाया। भारत का सामाजिक ताना-बाना भी विकृत हो गया था, उसे पुनः एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया। स्वामी जी ने अपने विचारों को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की, जो आज भी देश के विभिन्न हिस्सों में समाज सेवा की दिशा में कार्य कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा: आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आमस, प्रकाशन, आगरा, 1971
2. स्वामी दयानंद, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
3. वर्मा, वी. पी., आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
4. पुष्पा बिरयानी व राजेश्वरी सक्सेना, भारतीय राजनीतिक विचारक, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
5. ओम प्रकाश गाबा, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
6. ओम प्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
7. अली मुख्तार:- भारतीय राजनीतिक विचारक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू, 2017.
8. <https://panchjanya.com/2023/06/290312/bharat/swami-dayanand-saraswati-and-his-contribution-towards-the-society/>

मो. 8930700895

Email: rahuldeepgarg0001@gmail.com



उत्तराखंड का सैनिक इतिहास

आकांक्षा काण्डपाल, शोध छात्रा

कुमाऊं विश्वविद्यालय (नैनीताल)

प्रस्तावना - इस भूभाग ने गंगा व यमुना के सतत प्रभाव की तरह, हर कालखंड में वीर योद्धाओं की गौरवशाली परंपरा को निरंतर आगे बढ़ाया है, जिस वीर प्रसूता भूमि का नाम लेते ही असाधारण शौर्य, पराक्रम एवं बलिदान की गौरव गाथाएं आंखों के सामने तैरने लगती हैं, इतिहास के प्रारंभ से ही उसकी कर्मनिष्ठ एवं स्वाभिमानी संतानों ने सदैव देश सेवा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर किया है। यवन वीर सिकंदर का विजय का स्वप्न भी 326 ईसवी पूर्व में इसी वीर भूमि के नैनिहालों द्वारा भंग किया गया था, जब वीर गांगड़ी सपूतों के शौर्य से भयभीत होकर सतलज तट से ही उसे भारत छोड़कर वापस लौटना पड़ा था, महमूद गजनवी के विरुद्ध अंतिम मोर्चा, तत्कालीन उत्तराखंड नरेश ने अपने राज्य गंगा एवं रामगंगा की मध्य भूमि में ही लिया था। इसी प्रकार आज से कुछ वर्षों पूर्व 1635 ईस्वी में मुगल सम्राट शाहजहां की एक लाख आक्रमक फौज एवं उसके सेनापति नवाजत खान ने उत्तराखंड के वीरों से पराजित होकर उनके समक्ष आत्मसमर्पण कर हथियार डाल दिए थे। विश्व युद्ध के समय में भी उत्तराखंड के वीरों ने अनुपम एवं असाधारण शौर्य का परिचय दिया है।

भूमिका- कुमाऊं और गढ़वाल दोनों रेजिमेंट्स उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों के साहसी और कठिनाइयों का सामना करने वाले सैनिकों से बनी हैं। दोनों रेजिमेंट्स के शहीदों ने भारतीय सेना के इतिहास में वीरता और बलिदान की कई अद्वितीय कहानियाँ लिखी हैं। इन वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति देकर देश की रक्षा की है और उनके साहसिक योगदान को हमेशा सम्मान के साथ याद किया जाता है। रेजिमेंट्स के वीर सैनिकों ने उत्तराखंड के लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए भी प्रेरित किया। स्वतंत्रता संग्राम में इन क्षेत्रों के सैनिकों और नागरिकों के योगदान को आज भी सम्मान के साथ याद किया जाता है, और उनके बलिदानों ने स्वतंत्र भारत के निर्माण में एक अमूल्य भूमिका निभाई।

गढ़वाल राइफल्स गढ़वाल के वीर सैनिकों का भारतीय सेवा के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान है देश की सुरक्षा के लिए इनका प्रमुख योगदान गढ़वाल राइफल्स इन्फैंट्री रेजीमेंट अर्थात लड़ाकू

रेजीमेंट के द्वारा माना जाता है।लड़ाई में कठिन से कठिन तथा विपरीत परिस्थितियों में गढ़वाली सैनिकों को हमेशा शांत आत्मविश्वास से भरपूर पाया गया है,उनकी दृढ़ता तथा न्याय प्रियता सर्व विदित है इन्हीं सब गुण के कारण गढ़वाली सैनिकों को एक आदर्श सैनिक माना जाता है।गढ़वाल रेजीमेंट की स्थापना,सूबेदार बलभद्र सिंह नेगी द्वारा 1878 में अफगान युद्ध के समय दिखाई गई बहादुर के बाद अंग्रेजों द्वारा की गई थी।उन्हें 'ऑर्डर ऑफ मेरिट' से सम्मानित किया गया था।तत्कालीन अंग्रेज कमांडर के शब्दों में 'a region which can produce man like balbhadra Singh Negi must have a battalion of their own' के आधार पर गढ़वाल राइफल्स की स्थापना का सूत्रपात हो गया था।गढ़वाली सैनिकों की भर्ती लड़ाकू रेजीमेंट गढ़वाल राइफल्स के प्रशिक्षण केंद्र लैंसडेन छावनी में होती है 1815 से 1887 तक गढ़वाली सैनिकों को 1/5 गोरखा रेजीमेंट में ही भर्ती किया जाता रहा,क्योंकि 1887 में से पहले गढ़वाल राइफल्स की अपनी अलग रेजीमेंट नहीं थी।लड़ाई में शौर्य कुशलता को देखते हुए गढ़वाली सैनिकों के लिए रेजीमेंट बनाने का प्रस्ताव मंजूर किया गया। 4 नवंबर 1886 को गढ़वाल राइफल्स के लिए लैंसडेन छावनी की नींव रखी गई तथा 5 मई 1887 को गढ़वाल राइफल्स की पहली बटालियन खड़ी की गई।1901 में दूसरी बटालियन का गठन हुआ इन्हीं पहले दो बटालियन को सम्राट एडवर्ड पंचम के राजतिलक समारोह में भारतीय सेना का प्रतिनिधित्व करने का विशेष अवसर मिला। इसके उपरांत दोनों बटालियन ने प्रथम विश्व युद्ध में गढ़वाल ब्रिगेड का हिस्सा बनकर ख्याति प्राप्त की।19 नवंबर 1923 को रॉयल गढ़वाल राइफल्स की,प्रथम विश्व युद्ध में विशेष भूमिका के लिए,एक विशेष युद्ध स्मारक लैंसडेन में बनाकर रेजीमेंट को सम्मानित किया गया।यह स्मारक एक गढ़वाली सैनिक की कांस्य प्रतिमा के रूप में आज भी विद्यमान है। द्वितीय विश्व युद्ध होने सेसे रेजीमेंट का और विस्तार हुआ,4वीं बटालियन को 1940 में और 5वीं बटालियन को 1941 में फिर से खड़ा किया गया।1939 में पेशावर में संचार सुरक्षा कर्तव्य के लिए 11वीं (प्रादेशिक) बटालियन खड़ी की गई। 6वीं बटालियन को 1941 में यहीं से खड़ा किया गया था।¹स्वतंत्रता के बाद गढ़वाल राइफल्स की तीसरी बटालियन ने जम्मू कश्मीर के बारामुल्ला,उड़ी तथा टिथवाल क्षेत्रों में पाकिस्तानी घुसपैठियों को रोकने में विशेष भूमिका निभाई,इस लड़ाई में उन्हें एक महावीर चक्र तथा 18 वीर चक्र एवं बटालियन को टीथ वॉल युद्ध सम्मान प्रदान किया गया।1962 में भारत चीन युद्ध में भारतीय सेवा की एकमात्र दूसरी गढ़वाल राइफल्स की बटालियन को दो महावीर चक्र साथ वीर चक्र तथा नौरंगा युद्ध सम्मान प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है

गढ़वाल रेजीमेंट से जुड़े वीर योद्धा -

1-दरबार सिंह नेगी और गब्बर सिंह नेगी - जब 1914 में प्रथम विश्व युद्ध छेड़ा तो गढ़वाल रेजीमेंट ने भारतीय और की साथ भी सातवीं मेरठ डिवीजन के हिस्से के रूप में फ्रांस की यात्रा के दरबार सिंह नेगी 39 सी गढ़वाल की पहली बटालियन में 33 वर्षीय नायक कॉर्पोरल के समक्ष थे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान वह ब्रिटिश भारतीय सेवा के राइफल्स में लेफ्टिनेंट कर्नल थे जब

उन्होंने फेस्टुबर्ट की रक्षा के दौरान यहां कार्य किया था जिसके लिए उन्हें वी.सी. की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

कुलपति का उद्धरण इस प्रकार है- महामहिम राजा सम्राट ने भारतीय सेना के निम्नलिखित सैनिकों को भारतीय सेना कोर, ब्रिटिश अभियान बल के साथ सेवा करते समय उल्लेखनीय बहादुरी के लिए विक्टोरिया क्रॉस प्रदान करने की कृपा की है:

1909, नायक दरबार सिंह नेगी पहले बटालियन 39वीं गढ़वाल राइफल्स।

23-24 नवंबर की रात्रि को फ्रांस के फेस्टुबर्ट के निकट जब रेजीमेंट अपनी खाइयों से दुश्मन को खदेड़ने और उन्हें वापस अपने कब्जे में लेने लगी हुई थी, उस समय की महान वीरता के लिए तथा यद्यपि रेजीमेंट के सर और हाथ में दो जगह घाव हो गए थे, तथापि रेजीमेंट प्रत्येक क्रमिक मार्ग को पार करने वाले प्रथम लोगों में से एक थी तथा निकटतम सीमा पर बमों और राइफलों से की जा रही भीषण गोलाबारी का सामना कर रही थी।²

दरबान सिंह जैसा ही एक कारनामा उनके साथी राइफलमैन गब्बर सिंह नेगी ने भी किया था जो 39 सी गढ़वाल राइफल के ही थे उन्होंने न्यू वाले चप्पल पर हमले के दौरान खाई को लगातार पार करने का नेतृत्व भी किया था।³

चंद्रवीर सिंह गढ़वाली - यह सच है की बूड़े सिपाही मरते नहीं, धूमिल होते चले जाते हैं, पर चंद्र सिंह या उनके साथी सिर्फ सिपाही नहीं थे। विशेष रूप से चंद्र सिंह स्वतंत्रता सेनानी, समाज-सुधारक, राजनीतिक कार्यकर्ता और आजन्म प्रतिरोधी भी थे। उत्तराखंड के महान नायकों में से एक प्रसिद्ध भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थे, जो ब्रिटिश भारतीय सेना के 2/18 रॉयल गढ़वाल राइफल्स में ऐतिहासिक कार्य को करने वाली दो प्लाटूनों का प्रमुख व्यक्तित्व था, चंद्र सिंह भंडारी या चंद्र सिंह गढ़वाली। 1930 में पेशावर की ऐतिहासिक घटना में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के आदेश के खिलाफ जाकर निहत्थे और शांतिप्रिय भारतीय प्रदर्शनकारियों पर यह कह कर "गढ़वाली सीज फायर", गोली चलाने से इंकार कर दिया था। दमन करने बुलाए गए सिपाही जानता से मिल गए।⁴ उनके इस साहसिक कार्य के लिए उन्हें ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और उन्हें कई वर्षों तक जेल में रखा गया। जेल से छूटने के बाद, गढ़वाली ने अपने गृह राज्य उत्तराखंड में सामाजिक और राजनीतिक सुधारों पर ध्यान दिया। उन्होंने जनजातीय और ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक सुधारों की दिशा में कार्य किया, जिससे ग्रामीण समुदायों में जागरूकता बढ़ी। उन्हें वीरता और अदम्य साहस के लिए "गढ़वाली गांधी" का उपनाम भी दिया गया।

जसवंत सिंह रावत - 17 नवंबर 1962 को नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी में नूरानाग की लड़ाई के दौरान राइफलमैन जसवंत सिंह रावत 4वीं गढ़वाल राइफल्स रेजीमेंट की 4 बटालियन में सेवारत थे। भारत-चीन युद्ध के वक्त चीन की घुसपैठ के दौरान एक चीनी मशीन गन भारतीय सुरक्षा के करीब आ गई थी, राइफलमैन जसवंत सिंह रावत, त्रिलोक सिंह नेगी और राइफलमैन गोपाल सिंह ने मशीन गन को वश में करने के लिए स्वेच्छा से काम किया। और मशीन गन को जप्त कर

लिया,हालांकि लौटते समय गौसेन और नेगी की जान चली गई और रावत गंभीर रूप से घायल हो गए।हालांकि बहुत से पकड़े गए हथियार के साथ वापस लौटने में कामयाब रहे, लड़ाई के परिणाम स्वरूप 300 चीनी हताहत हुए।जबकि चौथी गढ़वाल राइफल्स में दो लोगों को खो दिया और 8 घायल हो गए,रावत की कंपनी ने पीछे हटने का फैसला किया लेकिन रावत वही रहे।एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते हुए रावत ने 72 घंटे तक दुश्मन को रोक रखा,जब तक की चीनी ने एक स्थानीय आपूर्ति करता को पकड़ नहीं दिया,जिसने उन्हें बताया कि वह केवल एक लड़ाकू का सामना कर रहे थे।इसके बाद चीनियों ने रावत के स्थान पर ढाबा बोल दिया लेकिन उनकी मृत्यु का सही विवरण स्पष्ट नहीं है कुछ का दावा है कि रावत अपने गोला बारूद के आखिरी राउंड से खुद को गोली मार ली।नूरानांग की लड़ाई के दौरान उनके कार्यों के परिणामस्वरूप मरणोपरांत प्रतिष्ठित महावीर चक्र से सम्मानित किया गया।

कुमाऊं रेजीमेंट

कुमाऊनी सैनिकों ने चंद्र वंश के लगभग पिछले 400 वर्षों के शासनकाल में विभिन्न अवसरों पर दिल्ली के कई सुल्तानों,मुगल सम्राटों,अवध के नवाबों और रुहेलों के पक्ष या विपक्ष में कई निर्णायक युद्ध में भाग लिया।सैनिक बनना कुमाऊनी लोगों का एक महत्वपूर्ण पेशा रहा है और इस क्षेत्र का नेपाल और गढ़वाल सहित पड़ोसियों के साथ युद्ध का एक लंबा इतिहास रहा है⁵ प्रथम विश्व युद्ध के दौरान बर्मा मिलिट्री पुलिस के हवलदार चांदनी चंद्र उर्फ चंद्र सिंह द्वारा मधुपुर एशिया में अभूतपूर्व वीरता का प्रदर्शन करने के पश्चात उस परमवीर ने कुमाऊनियों के लिए एक स्वतंत्र सैनिक इकाई पुरस्कार स्वरूप अंग्रेजों से मांगी,गढ़वाल राइफल्स और बर्मा मिलिट्री पुलिस के कुमाऊं मूल के सैनिकों को लेकर 23 अक्टूबर 1917 को प्रथम कुमाऊनी बटालियन की स्थापना हुई।15 नवंबर सन 1917 को इस बटालियन का नाम 4/39 कुमाऊं राइफल्स रखा गया।जो आगे चलकर कुमाऊं रेजीमेंट के गौरव में इतिहास की आधारशिला बनी इसके साथ कुमाऊं के नाम से कई यूनिट बनती चली गई।इन्हीं सैनिक यूनिटों को मिलाकर अक्टूबर 1945 ईस्वी में कुमाऊनियों की रेजीमेंट स्थापित की गई स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अब तक हुए युद्ध तथा ऑपरेशन में कुमाऊं के 700 से अधिक सैनिक शहीद हुए कुमाऊं के सैनिकों ने युद्ध क्षेत्र में असाधारण वीरता का परिचय देकर अब तक 120 से अधिक शौर्य वीरता पुरस्कार प्राप्त किया।

कुमाऊं रेजीमेंट से जुड़े वीर योद्धा - -

मेजर सोमनाथ शर्मा-सोमनाथ शर्मा जी का जन्म जनवरी 1923 में कांगड़ा में हुआ था उनके पिता अमरनाथ शर्मा भी एक सैन्य अधिकारी थे। 1942 को रॉयल मिलिट्री कॉलेज से स्नातक होने पर श्री सोमनाथ शर्मा की नियुक्ति ब्रिटिश भारतीय सेवा की 19वीं हैदराबाद रेजीमेंट की आठवीं बटालियन में हुई,जो कि बाद में भारतीय सेना की चौथी बटालियन कुमाऊं रेजीमेंट के नाम से जाने जाने लगी।⁶ द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उन्होंने अरकान अभियान वर्मा में जापानी लोगों के खिलाफ कार्रवाई की।27 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान द्वारा पश्चिमी घाटी में आक्रमण के

जवाब में भारतीय सेना के सैनिकों का एक बैच तैनात किया गया, जो भारत का हिस्सा था। 31 अक्टूबर को कुमाऊं रेजिमेंट की चौथी बटालियन की डी कंपनी श्री सोमनाथ शर्मा के कमान के तहत श्रीनगर पहुंची थी इस समय के दौरान उनके बाएं हाथ पर प्लास्टर चढ़ा था जो हॉकी फील्ड पर चोट के कारण लगा था लेकिन उन्होंने अपनी कंपनी के साथ युद्ध में भाग लेने पर जोर दिया। 3 नवंबर को बडगाम क्षेत्र में तीन कंपनियों का एक पेज तैनात किया गया था, उनका उद्देश्य उत्तर से श्रीनगर की ओर जाने वाले घुसपैठ की जांच करना था, क्योंकि दुश्मन की तरफ से कोई हरकत नहीं थी। हालांकि श्री सोमनाथ शर्मा की डी कंपनी को 3:00 बजे तक तैनात रहने का आदेश दिया गया था, 21 जून 1947 को श्रीनगर हवाई अड्डे के बचाव में 3 नवंबर 1947 को अपने कार्य के लिए परमवीर चक्र से श्री सोमनाथ शर्मा जी को सम्मानित किया गया था। यह पहली बार था कि इसकी स्थापना के बाद किसी व्यक्ति को सम्मानित किया गया था।

मेजर शैतान सिंह- मेजर शैतान सिंह भारतीय सेना के एक अधिकारी थे। उन्हें वर्ष 1963 में मरणोपरांत परमवीर चक्र का सम्मान दिया गया। इनका निधन 1962 के भारत चीन युद्ध में हुआ था। उन्होंने अपने वतन के लिए काफी संघर्ष किया लेकिन अंत में शहीद हो गए तथा भारत देश का नाम रोशन कर गए। मेजर सिंह स्नातक स्तर की पढ़ाई पूरी करने पर जोधपुर राज्य बालों में शामिल हुए जोधपुर की रियासत का भारत में विलय हो जाने के बाद उन्हें कुमाऊं रेजीमेंट में स्थानांतरित कर दिया गया उन्होंने नागा हिल्स ऑपरेशन तथा 1961 में गोवा के भारत में विलय में हिस्सा लिया था। भारत चीन युद्ध के दौरान रेजांगला का युद्ध में शैतान सिंह शहीद हुए थे।

निष्कर्ष- हिमालय के वीर पुत्रों ने अंग्रेजी सेना में तो शौर्य दिखाया ही, आजादी की लड़ाई में भी इनका योगदान कम नहीं था। 1947 में पाकिस्तान द्वारा जम्मू कश्मीर में हमले से लेकर श्रीलंका में शांति सेना के रूप में कार्य करते हुए इस भूमि के वीरों ने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन परिचय दिया है। 1962 का चीनी आक्रमण, 1965 और 1971 के भारत-पाक युद्ध हो या सियाचिन क्षेत्र, गढ़कुम अचल के वीर सैनिक अपने शौर्य व बलिदान का इतिहास लिखने गए। 1999 में कारगिल युद्ध में राज्य के 104 सैनिकों ने अपने प्राणों का बलिदान देकर 'ऑपरेशन विजय' को सफल बनाया।

संदर्भ सूची -

- 1-Das, chand (1997). hours of glory: famous battle of the indian army, 1801-1947. pp -600
- 2- the London gazette. 7 December 1914. p. 10425.
- 3- martin, Earnest. journal of united service institute of india vol. 79-80, 1949. page no.-119
- 4-मैनचेस्टर गार्डियन : 24 अप्रैल 1930, टाइम्स : 29 अप्रैल 1930, डेली टेलीग्राफ: 9 मई 1930, सिविल एंड मिलिट्री गजट : 9 मई 1930.
- 5-sharma, Gautam (1990). Valour and sacrifice: famous regiments of the indian army. pp-265-270
- 6-chakravorty, B 1995, page number 75-76



Bulbul-e-Hind Sarojini Naidu

Akanksha Kandpal, Research Scholar,
department of history, Kumaon university, Nainital,
Roshni Pareek, Research scholar,
University of Rajasthan, Jaipur (Rajasthan)

O young through all thy immemorial years,
Rise, mother, rise regenerate from thy gloom,
And, like a bride high met with the sphere,
Beget new glories from thine ageless womb - **To India**

Abstract: -

Sarojini Naidu was a student who excelled academically, a renowned freedom fight activist in India, and a poet who wrote sonnets. She is popularly known as the “**Nightingale of India**” and has been given this title for many years. She was the First Lady to hold the position of president of India in our country, she was a notable person in Indian women’s history, and she was the first governor of Uttar Pradesh after the state of Uttar Pradesh gained its independence. She was the well-known figure of the 20th century, and her presence on our planet as a powerful figure is celebrated annually on the holiday that is known as “**women’s day.**” The significant achievement that has been set in the field of poetry is the topic that will be discussed in this paper also. In the year 1905, she had the poem “**Bulbul-E-Hind**” published. This was the beginning of her exploration into the literary realm. Sarojini Naidu’s legacy extends beyond her lifetime, leaving an indomitable imprint on India’s culture and political narrative.

Introduction: -

Family background: Sarojini Naidu was born in Hyderabad on 13 February 1879 to Aghorenath Chattopadhyay. Her father was a Bengali Hindu and the principal of nizam college. Her mother wrote poetry in Bengali. She was the eldest of the eight siblings. Her brother virendranath chattopadhyay was a revolutionary, and another brother harindranath was a poet, a dramatist, and an actor. Their family was well-regarded in Hyderabad.

Education: As a child Sarojini inherited qualities both from her mother and her father. She passed her matriculation examination to qualify for university study, earning the highest rank, in 1891, when she was twelve. From 1895 to 1898 she studied in England, at king’s college, London. In England, she met artists from the aesthetic and decadent movements.¹

Marriage: during her stay in England, Sarojini met Dr. Govindurajulu Naidu from southern India. Dr. Naidu was from an honourable and upper-class family but was not a Brahmin and during that time inter caste marriages were not allowed in India. However, at the age of 19, Sarojini broke all the bonds and married him. Their marriage was a happy one and they had five children. Their daughter Padmaja also joined the Quit India moment, and she held several government positions in independent India.

Early oratory–

Beginning in 1904, Naidu became an increasingly popular orator, promoting Indian independence and women's rights, especially women's education. Her oratory often framed arguments following the five part rhetorical structure of *nyaya* reasoning. She addressed the Indian National Congress and Indian social conference in Calcutta in 1906. Her social work flood relief earned her the **kaiser-e-Hind** medal in 1911, which she later returned in protest over April 1919 Jallianwala Bagh massacre. She met Muthulakshmi Reddy in 1909, and in 1914 she met Mahatma Gandhi, whom she credited with inspiring a new commitment to political action.

Women's movement: -

Sarojini Naidu utilised her poetry and oratory skill to promote women's right alongside the nationalist movement. In 1902, Naidu entered the world of politics after being urged by Gopal Krishna Gokhale, an important leader of the nationalist movement.² Social Council of Kolkata in order to advocate for the education of Indian women. Sarojini Naidu utilised her poetry and oratory skill to promote women's right alongside the nationalist movement. In 1902, Naidu entered the world of politics after being urged by Gopal Krishna Gokhale, an important leader of the nationalist movement.² Social Council of Kolkata in order to advocate for the education of Indian women. In her speech Naidu stressed that the success of the movement relied upon the "women questions". Naidu claimed that the true "nation builders" were women's not men, and that without women's active corporation, the nationalist movement would be in Naidu speech argued that Indian nationalism depend on women's rights and that the liberation of India could not be separated from the liberation of women the women's movement developed parallel to the independence movement for this reason. In her speech Naidu stressed that the success of the movement relied upon the "women questions". Naidu claimed that the true "nation builders" were women's not men, and that without women's active corporation, the nationalist movement would be in Naidu speech argued that Indian nationalism depend on women's rights and that the liberation of India could not be separated from the liberation of women the women's movement developed parallel to the independence movement for this reason. In 1917 Naidu sponsored the establishment of the **women's Indian association** which finally provided a platform for the women to discuss their complaint and demand their rights. That same year Naidu serves as spokesperson for a delegation of women that met with Edwin Montague, the secretary of state for India, and Lord Chelmsford, the viceroy of India, in order to discuss reform.³ In 1918 Naidu move a resolution on women's franchise to the 18th session of the Bombay provisional conference and to the special session of Congress held in Bombay the purpose of the resolution was to have on record that the conference was in support of the enfranchisement of women in order to demonstrate to Montague that the men of India were not opposed to women's rights. and her speech at the conference, Naidu emphasised 'the influence of women in bringing about political and spiritual unity 'in ancient India.'⁴ In 1920s, Naidu begin to focus more on the nationalist movement as a means of achievement achieving both women's right and political independence Naidu become the first Indian female President of the Indian National Congress in 1925, demonstrating how influential she was a political voice, by this period, Indian women's wear starting to get more involved in the movement. female leaders begin to organise nationwide strikes and nonviolent resistance across the country. In 1930, Naidu wrote a pamphlet that would be handed out to women with the goal of bringing them into the political struggle. the pamphlet stated that until recently, women had remained spectators, but now they had to get involved and play an active role. to Naidu, it was women's duty to help in the fight against Britain. In this way, Naidu asserted women's role as an agent of political change and effectively linked women to the struggle for independence from British rule.

Nonviolent resistance: -

Naidu formed close ties with Gandhi, Gopal Krishna Gokhale, Rabindranath Tagore and Sarala Devi. After 1917, she joined Gandhi Satyagraha movement of nonviolent resistance against British rule. Naidu went to London in 1919 as a part of all **India Home rule league** as a part of her continued effort to advocate for independence from British rule. The next year participated in the non-cooperation movement in India. In 1920 Sarojini represented the Indian National Congress at the East African Indian National Congress. In 1927 Naidu was a founding member of the All Indian Women's Conference. In 1928 she travelled in the United States to promote nonviolent resistance. Naidu also presided over East African and Indian Congress' 1929 session in South Africa. In 1930 Gandhi initially did not want to permit to join the salt march, because it would be physically demanding with a high risk of arrest. Naidu and other female activists, including Kamala Devi and Khurshed Naoroji, persuaded him otherwise, and join the March. The Indian National Congress decided to stay away from the first-round table conference that took place in London owing to the arrests. In 1931 however Sarojini and other leaders of the Congress party participated in the second-round table conference headed by Viceroy Lord Irwin in the wake of the Gandhi Irwin pact. Naidu was jailed by the British in 1932.⁵ The British jailed Naidu again in 1942 for her participation in the Quit India movement. She was imprisoned for 21 months.

Governor of united provinces- following India's independence from the British rule in 1947, Naidu was appointed the governor of the United Provinces (present day Uttar Pradesh) making her India's first women governor. She remained in office until her death in March 1949.

Literary contributions: -

Sarojini Naidu began writing at the age of 12. Her poetry was written in English and usually took the form of lyric poetry in the tradition of British romanticism, which she was sometimes challenged to reconcile with her Indian nationalist politics. She was well regarded as a poet, considered the "**Indian Yeats**."⁶

Sarojini had never been in and out of fashion, she was always respected and occasionally taken too much for granted. As pointed out by Mokashi Punekar:

Sarojini was the Nightingale of India- read or unread -the symbol of an achievement at a time when such achievements were badges needed for the Indian mind to establish its pride and identity. Sarojini did not receive any academic honour. Although she frequently visited the Allahabad University, addressed the Convocation of several seats of higher learning- Banaras, Agra and Deccan, for example, Chancellor of several universities in her capacity as Governor of UP., no university came forward to confer any degree honour because in recognition of her poetical work. This shows that the academic world of her time was reluctant to accept her as a poet worthy of recognition. She was a poet, pure and simple and she paid dearly for it- "the price of not being taken seriously in the way day of fame or in the period of comparative neglect."

Works—

1905: *The Golden Threshold*, London: William Heineman

1915: *The Bird of Time: Songs of Life, Death & the Spring*, London: William Heineman and New York: John Lane Company

1917: *The Broken Wing: Songs of Love, Death, and Destiny*.

1922: Editor, *Muhammad Ali Jinnah, An Ambassador of Unity: His Speeches & Writings 1912–1917*, with a biographical "Pen Portrait" of Jinnah by Naidu, Madras: Ganesh & Co.

Achievement: -

Sarojini's poems had English lyrics but an Indian soul. Arvind ghosh Rabindranath Tagore and Jawaharlal Nehru were among the thousands of admirers of her work. She was elected to the Royal society of Literature. Her works bought her worldwide fame. As she was very fluent in English, Sarojini exploded to the world the beauty of Indian traditions and culture. She aquatinted the west with the east. Edmund Gosse called her "The most accomplished living poet in India" in 1919. Composer Helen Searles Westbrook (1889-1967) set Naidu's text to music in her song "Invincible." Naidu is memorised in the Golden

Threshold, an off-campus annex of university of Hyderabad named for her first collection of poetry. Golden Threshold now houses the Sarojini Naidu school of art's & communication in the university of Hyderabad. The first biography of Naidu, Sarojini Naidu: A biography by Padmini Sengupta, was published in 1966. In 1975, the government of India films division produced a twenty-minute documentary about Naidu's life, directed by Bhagwan Das Garga. In 2014, Google India commemorated Naidu's 135th birth anniversary with a Google Doodle.

Conclusion: - Sarojini Naidu was a woman ahead of her time. She was born in a time when India was going through the toughest phase in her history. During that time women were considered secondary to man. Inter caste marriages were not allowed. Girls didn't use to study beyond the basic school level. But Sarojini Naidu broke all these bonds. She led as an example and kept on proving herself right, at every given opportunity. In spite of having a happy settled life with her family, Sarojini did not forget her duties towards her motherland. She was a woman with multiple talents. A great poet, writer, leader, fighter, activist, liberator, administrator, mother, daughter, friend, but most importantly a true Indian. She re-established self-esteem within the women of India.

Reference: -

1. Reddy, sheshalatha(2010). The cosmopolitan nationalism of Sarojini Naidu, nightingale of india. Victorian literature and culture. P. 571-589
2. Marx, Edward.everybody's Anima: Sarojini Naidu as nightingale and nationalist. 'In the idea of colony: cross- culturalism in modern poetry, p-57
3. Nandkarni, asha. 'Regenerating feminism: sarojini Naidu's eugenic feminist renaissance.2014, pp-71
4. Naidu, Sarojini. Speeches and writings of Sarojini Naidu (madras: G.A. natesan,1925), p-196
5. Raman, Sita Anantha (2006). "Naidu Sarojini" in wolpert, Stanley (ed.). encyclopaedia of India. Volume 3. Pp. 212-213.
6. Shekhani, unmekulsoom (3 April 2017). Sarojini Naidu — The forgotten orator of India. P. 139-150

Contact— 7017737637

Email—akankshabhatnagar2511@gmail.com

Contact— 7357963107

Email— pareekroshni060@gmail.com



अकबर और हिंदू मुस्लिम सद्भाव

आयुशी गुप्ता, अध्यक्षता,

लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी

भारत में विभिन्न जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। सबके अपने अपने मत एवं विश्वास हैं जो उनमें परंपरागत कई पीढ़ियों से कुछ परिवर्तनों के साथ विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में देश की एकता एवं अखंडता को बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कदम है। क्योंकि इक्कीसवीं शताब्दी का भारत अभी भी जाति पाति, अगड़ी पिछड़ी, मंदिर मस्जिद, हिंदू मुस्लिमान आदि विनाशकारी प्रवृत्तियों से पूरी तरह जकड़ा हुआ है। जिससे सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द, मानवीय मूल्यों-राष्ट्रहित के समक्ष संकट उत्पन्न होते रहते हैं। तत्कालीन वोटबैंक की राजनीति नहीं तो कोढ़ में खाज का काम किया है। जिसने स्वार्थ हेतु सांप्रदायिक सौहार्द एवं भाई चारे की बली चढ़ा दी है यही कारण है कि भारत में भारतीय पैदा नहीं होते बल्कि हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई और विभिन्न संप्रदाय के लोग पैदा होते हैं। जबकि आवश्यकता इस बात की है कि सभी देशवासी इस बात को स्वीकार करें कि वह भारतीय पहले हैं। आज की वर्तमान परिस्थिति के आलोक में हम सोलवी शताब्दी के महान मुगल बादशाह अकबर द्वारा किये गए सांप्रदायिक सौहार्द और राष्ट्रीय एकता के प्रयास को उदाहरणीय मान सकते हैं कि किस तरह अकबर ने समय, काल एवं परिस्थिति के विपरीत कार्य करते हुए हिंदू मुस्लिम सद्भाव स्थापित किया।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगल बादशाह अकबर ने राष्ट्रीय एकता एवं धर्मनिरपेक्षता के आदर्श को ध्यान में रखकर शासन किया। जिसकी वजह से उसे अकबर महान की सम्मानजनक उपाधि प्रदान की जाती है हालांकि उसे मुसलमानों और गैर मुसलमानों को सदैव अलग रखने की पुरानी नीति विरासत में मिली थी। जिसके कारण अपनी शासन के प्रारंभिक दौर में वह काफी अनुदार था। किंतु इसके लिए उसे दोषी ठहराना सही नहीं हो सकता क्योंकि वह परिस्थितियों को दासथा। डॉक्टर आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव लिखते हैं कि जैसे ही अकबर ने दूसरे लोगों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं सत्ता संभाली वैसे ही अपने पूर्वजों की नीती को बदल दिया। परंपरागत रूप से चले आ रहे इस्लामी राजस्व सिद्धांत को सर्वप्रथम अकबर ने एक नई दिशा प्रदान की। जिसके बारे में अबुल फजल लिखता है ये राजद का मूल तत्व है सुलेह कुल मतलब सहिष्णुता का। सूत्रपात

करना और सभी मनुष्यों व धार्मिक सम्पदाओं को सामान समझना। अकबर के राजस्व के सिद्धांत अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उसने मुगल, मुस्लिम कॉल हिंदू विचारधाराओं का समन्वय था।

अकबर ने प्रशासनिक व्यवस्था द्वारा हिंदू मुस्लिम सद्भाव स्थापित करने का सराहनीयकार्य किया। उसने न्याय के मामले में सभी नागरिक को समान मानते हुए पूर्व से चली आ रही इस्लामी भेदभाव की पद्धति का अंत किया। व्यापार, विनिमय, क्रय विक्रय, ठेके समझौते आदि के कानून मुस्लिम तथा गैर मुस्लिम के लिए अब समान कर दिए गए तथा राज्य में कर की दर भी सभी नागरिकों के लिए एक समान कर दी गई। उसकी नीती का उद्देश्य था कि सभी भारतीय जातियों को जहाँ तक संभव हो सके वहाँ तक एक ही कानून व्यवस्था के अंतर्गत लाया जाए। सेना और राजस्व विभाग में चली आ रही भेदभाव की नीती इ को त्यागकर अकबर ने सरकारी सेवा हेतु, नस्ल, जाती और धर्म को दरकिनार करते हुए योग्यता को वरीयता दी। सारे अधिकारी सीधे सम्राट द्वारा नियुक्त किए जाते थे। नियुक्ति की ये निश्चित प्रक्रिया होने के बावजूद विभिन्न पदों के लिए योग्यताएं निर्धारित नहीं थीं किंतु अकबर व्यक्ति को पहचानने में निपुण था और वह नियुक्तियों में पूर्ण सावधानी बरतता था।

भारतीय समाज में व्याप्त कुरृतियों को दूर कर सामाजिक सद्भाव की भावना को गति प्रदान करने के लिए अकबर ने सामाजिक सुधार की तरफ ध्यान दिया। मुस्लिमों के लिए नियम बनाया कि कोई भी व्यक्ति केवल एक विवाह कर सकता है। चचेरी भाई बहन आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं। खतना कि नहीं 12 वर्ष की आयु निर्धारित की गई। हिन्दुओं के धार्मिक कानूनों में संशोधन करते हुए विधवा पुनर्विवाह की अनुमति दे दी और जबरदस्ती सती किए जाने पर प्रतिबंध लगा दिया। स्त्रियों के अनैतिक व्यवसाय एवं व्यापार पर रोग लगाया। विवाह के लिए आपसी सहमति और बालक के लिए 16 वर्ष एवं बालिका के लिए 14 वर्ष से कम आयु में विवाह को निषिद्ध कर दिया। विवाह का सरकारी कार्यालय में पंजीकरण कराना अनिवार्य कर दिया। मुसलमानों की विवाह, तलाक, विरासत आदि मामले इस्लामी कानून द्वारा और हिंदुओं के ऐसे मामले हिंदू कानून द्वारा तय किए जाते थे। लेकिन फौजदारी मामलों के लिए सब के लिए एक समान कानून था। इस प्रकार से अकबर ने कानून ओके उचित प्रबंध से गैर मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार किया?

अकबर ने पूर्व के इतिहास से ये सबक सीख लिया था की हिंदू मुसलमानों के पारस्परिक सहयोग के बिना कोई भी शासन स्थायित्व नहीं ग्रहण कर सकता। संभवतः इसी भावना से प्रेरित होकर 1562 ईसवी को युद्धबंदियों को गुलाम बनाने तथा बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार करने पर प्रतिबंध लगा दिया। दूसरे वर्ष यानी 1563 ईसवी में उसने यात्रियों से लिया जाने वाला तीर्थयात्रा कर हटा दिया और 1564 ईस्वी में जजिया कर भी हटा कर सभी के लिए एक ही नागरिकता स्थापित करने का प मार्ग प्रशस्त किया। इससे हिंदुओं को अपने त्यौहार सार्वजनिक रूप से मनाने की भी छूट मिल गई और वर्षों से चली आ रही यह धारणा भी समाप्त हो गई की हिन्दुओं के

धार्मिक समारोह सार्वजनिक रूप से मनानी पर मुसलमानों की धार्मिक नियमों का खण्डन होता है। इतना ही नहीं हिंदू मुसलमानों के बीच सद्भाव बढ़ाने के लिए उसने हिंदू धर्मग्रंथों अथर्ववेद, महाभारत, रामायण और हरिवंश पुराण का अनुवाद फ़ारसी भाषा में कराया। जिससे हिंदू धर्म के बारे में मुसलमानों को जानकारी हो।

इस्लाम के सिद्धांतों को समझने के लिए अकबर ने 1575 ईस्वी में फतेहपुर सीकरी में इबादत खाने का निर्माण कराया। प्रारंभ में इसके दरवाजे केवल इस्लाम के विद्वानों के लिए खुले थे। किंतु 1578 ईस्वी में सभी धर्म के विद्वानों को इबादत खाने में परिचर्चा हेतु बुलाया जाने लगा। तर्कसंगत एवं मुक्त चर्चा के परिणामस्वरूप अकबर ये समझ गया कि केवल इस्लामी स्टेट धर्म नहीं है बल्कि अन्य धर्मों में भी कुछ अच्छे तत्व हैं। अतः उसे कोई भी धर्म पूरी तरह उपयुक्त नहीं लगा, क्योंकि प्रत्येक धर्म में जहाँ कुछ सत्य है वहाँ कुछ असत्य भी है। जो कि भारत के लिए राष्ट्रीय धर्म के रूप में अनुपयोगी थे। वह चाहता था कि पूरे देश के लिए एक ऐसा धर्म हो जिसमें वर्तमान धर्मों की सारी अच्छाइयाँ विद्यमान हों। इसके लिए उसने दीन ए इलाही की स्थापना की, जिसमें प्रायः सभी धर्मों की अच्छी बातों का संकलन था। वास्तव में इसकी स्थापना वो देश से ऐसे प्रबुद्ध और उदार मन वाले भारतीयों को इकट्ठा करना था जो अकबर को अपना राजनीतिक वह धार्मिक नेता मानते थे, जो सब धर्मों की सत्यता पर विश्वास करते थे तथा एक ही मंच पर आ सकते थे। बदायुनी के अनुसार अकबर सूर्य की उपासना, आत्मा की आवागमन एवं हिंदुओं के प्रमुख संस्कारों में विश्वास करता था। रक्षा बंधन, दशहरा, दिवाली बड़ी धूमधाम से मनाता था। हिंदू की समान तिलक लगाता था और अपनी माँ की मृत्यु पर सर भी मुंडवाया था। सलीम का विवाह हिंदू रीती से कराया था तथा राजमहल की हिंदू रानी एवं दासियों को स्वतंत्रतापूर्वक अपनी रीती रिवाज मनाने की छूट प्राप्त थी।

शाही सेवा में अकबर ने योगिता एवं उपयोक्ता का ध्यान रखते हुए नियुक्तियाँ की। उसकी इस नीती के कारण ही उसे मान सिंह, भगवान दास, टोडरमल,, बीरबल, पुरुषोत्तम, दशवंत, बसावन, तानसेन आदि प्रमुख व्यक्तियों की सेवा और स्वामीभक्ति प्राप्त हुई। राजपूतों से मैत्री एवर वैवाहिक संबंध स्थापित करने को हम हिंदू मुस्लिम सद्भाव की संदर्भ में देख सकते हैं। सर्वप्रथम अमेर के कछवाहा राजा भारमल ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर से करना चाहा। बादशाह ने उसकी इच्छा स्वीकार कर ली। इस क्रम में बीकानेर के राजा कल्याणमल, जैसलमेर के रावल हरि राय, मारवाड़ के राजा उदयसिंह तथा डुंगरपुर के रावल असकरण ने भी अकबरसिंह अपनी पुत्री का विवाह संपन्न कर वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इस तरह अकबर ने राजपूत के साथ उदारता का व्यवहार किया। जो राजपूत अभी तक मुस्लिम शासकों के विरोधी थे वे ही मुगल साम्राज्य के स्तंभ बन गए।

सांस्कृतिक क्रियाकलापों में अकबर के उदार एवं समन्वयवादी निति के दर्शन होते हैं। उसने बिना किसी भेदभाव के उच्च पूर्ति के कलाकारों एवं विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया।

जिसकी परिणामस्वरूप एक राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत का निर्माण संभव हो सका। शिक्षा पद्धति और पाठ्यक्रम में सुधार करते हुए यह निश्चित किया कि हर लड़की को नैतिक शिक्षा, गणित, कृषि, ज्यामिति, रेखागणित, शरीर विज्ञान, गृहविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, औषधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, भौतिकी, मात्रा विज्ञान, धर्मशास्त्र, इतिहास और अन्य विज्ञान की पुस्तकें पढ़नी चाहिए और इन सबका ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त कर लेना चाहिए। पहली बार हिंदू शिक्षण संस्थाओं और विद्वानों को भी राजकीय अनुदानों से लाभान्वित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में अकबर ने सद्भाव एवं समन्वय लाने के लिये कारीगरों को अपने ढंग से बिना किसी धार्मिक अंकुश के कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान की। जिसके परिणामस्वरूप हिंदुओं के कमल, चक्र, स्वस्तिक आदि रूपकों का भी प्रयोग स्थापत्य में दिखाई पड़ता है। फलस्वरूप प्रत्येक वास्तुकार अपनी इच्छा से किसी भी शैली में निर्माण के लिए स्वतंत्र था। फलस्वरूप जो भी भवन निर्मित हुए उनमें से कुछ मुस्लिम एवं कुछ हिंदू शैली के अनुसार थे तथा अधिकतर मिश्रित शैली के थे, जिन्हें हिंदू मुस्लिम शैली कहा जाता है। अकबर की सहिष्णु नीति ने सभी धर्म के मानने वालों को अपनी विधि से ईश्वर की पूजा तथा मंदिर या देवालयों के बनाने की छूट प्रदान की गई।

मध्यकालीन धर्मांधता से अकबर के मुक्ति का परिचायक उसकी चित्रकला के संदर्भ में किए गए ऐतिहासिक कार्र हैं। पुराण के आदेशों के विपरीत चित्रकारों ने प्रकृति चित्रण में भारतीय फल फूल, पशु पक्षी तथा हिंदू देवी देवताओं की छवियों का चित्रण किया। ग्रंथ चित्रण की श्रेणी में भारतीय कथाएं और ऐतिहासिक ग्रंथ आते हैं, अकबर ने रामायण, महाभारत, पंचतंत्र को चित्रित करवाया था। दसवंत और बसवान प्रमुख हिंदू चित्रकार थे। इस तरह से उसने संकुचित धार्मिक बंधनों में जकड़ी चित्रकला को नवजीवन प्रदान किया जिससे जहांगीर की कार में यह कला अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच गई। इसी तरह अकबर ने संगीत कला के विकास को भी गति प्रदान की बड़े बड़े संगीतकारों को दरबार में आश्रय दिया गया, जिसमें तानसेन का नाम इतिहास प्रसिद्ध है। आइने अकबरी में 36 श्रेष्ठ संगीतज्ञों के नाम दिए गए हैं। बिना किसी भेदभाव के संगीतकारों को मनसब एवं पद दिए गए। इस प्रकार के संरक्षण एवं प्रोत्साहन के परिणामस्वरूप विश्व प्रसिद्ध राग रागिनियों का आविष्कार अकबर के शासनकाल में हुआ, जो कि भारतीय संगीत कला के लिए अद्वितीय है।

उक्त विभिन्न विवरण उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि अकबर ने ना केवल मुस्लिम अपितु पूरे भारतीयों की शाशा के रूप में एक राष्ट्रीय शासक की भांति शासन किया। जिससे भारत को विभिन्न क्षेत्रों जैसे राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि में समृद्धि प्राप्त हुई। डॉक्टर कालिका रंजन कानूनगो के शब्दों में अकबर ने राष्ट्रीय साम्राज्य का निर्माण किया था। चित्रकारी, स्थापत्य, संगीत तथा साहित्य की राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित करके उसने इस साम्राज्य को उन्नति के नवीन पद पर अग्रसर कर दिया। इसमें भारतीय तथा इस्लामी कला और संस्कृति

के उत्तम तत्व सम्मिलित थे। कुछ ऐसा ही विचार डॉक्टर हरिशंकर श्रीवास्तव ने भी व्यक्त किया है की अकबर की सहिष्णुता की निति ने मुगल साम्राज्य को एक नई दिशा प्रदान की इससे देश के सभी नागरिको को समानता प्राप्त हुई। हिंदू तथा मुसलमान साथ साथ प्रशासन, सेना तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम करते थे। इससे भारतीय एकता की भावना को बल मिला। डॉ नागेन्द्र कुमार सक्सेना ने लिखा है कि वास्तव में अकबर मध्ययुगीन शासकों में अपनी सानी नहीं रखता। वह राष्ट्र निर्माता सही मायने में कहे जाने योग्य है। उसे मध्य युग में राष्ट्रीयता का पोषक कहना अत्युक्ति ना होगी।

हम कह सकते हैं की मानवता के हित को सर्वोपरि रखकर अकबर ने अपनी शासनसत्ता संचालित की। जिससे हिंदू मुसलमान दोनों वर्गों का हित हुआ और आपस में सद्भाव की भावना का विकास हुआ। दोनों संप्रदायों के बीच उत्पन्न वह रूढ़िवादिता में कमी आई। अकबर की मध्यकालीन समन्वय एवं सद्भाव की नीती इ एक विशिष्ट उपलब्धि है जिससे हमें सीख लेनी चाहिए ताकि हम भविष्य में बेहतर कर पाए और समाज में उत्पन्न कुरीतियों और रूढ़िवादिता को जाति से अलग कर पाए और अकबर की यह नीती इ आज भी भारतीय नहीं विश्व के लिए उदाहरणीय ओर अनुकरणीय है

संदर्भ सूची

1. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव -अकबर महान, भाग-1 ,पेज 65
2. अकबरनामा, भाग- दो, पेज-159-160
3. आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव- अकबर महान भाग 2,पेज 12
4. अकबरनामा -भाग दो पेज 421 अंग्रेजी अनुवाद एच बे ब्रिज
5. सुरेश मिश्र- अकबर ,पेज 124
6. आईने अकबरी, भाग एक, पेज 287-288अंग्रेजी अनुवाद एच ब्लॉक मैन
7. आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव- अकबर महान भाग दो ,पेज 300
8. सुरेश मिश्र --अकबर, पेज 106
9. सुरेश मिश्र -अकबर पेज 38
- 10.डॉक्टर नागेन्द्र सक्सेना- राष्ट्रीय एकता के सांस्कृतिक सूत्र ,पेज 65
- 11.वी ए स्मिथ- महान मुगल अकबर लखनऊ 1967 ,पेज 446
- 12.कालिका रंजन कानूनगो- दारा शिकोह, पेज 178
- 13.डॉक्टर हरिशंकर श्रीवास्तव -मुगल शासन प्रणाली पेज 247

नम्बर-7291878268

ईमेल आइडी-guptaayushi0123456789@gmail.com



“राजाराम मोहन राय और सामाजिक सशक्तिकरण”

पूजा पान्डेय,

डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय

प्रस्तवना :

राजाराम मोहन राय का जन्म 22 मई 1772 को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर ग्राम में हुआ था। राय के पिता रमाकांत राय और माता तारिणी देवी थीं। राजाराम मोहन राय बहुभाषाविद होने के साथ-साथ अन्य धर्मों को भी जानने में रुचि रखते थे। 1831 में अकबर द्वितीय द्वारा ‘राजा’ की उपाधि दी गयी। वें भारतीय सामाजिक और धार्मिक दोषों से परिचित थे, जिसके सुधार हेतु उन्होंने ‘ब्रह्म समाज’ की स्थापना 20 अगस्त 1828 में की। ब्रह्म समाज के विचार को बंगाल से बाहर दूर-दूर तक फैलाया और उदारवाद, तर्कवाद, एवं आधुनिकता का वह वातावरण तैयार किया जिसने भारतीय चिंतन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी।³ 1815 ई0 में ‘आत्मीय सभा’ की स्थापना कर लोगों के विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया। 1821 में ‘संवाद कौमदी’ का प्रकाशन कर गुप्त राजनीतिक चिन्तन को नई दिशा दी। 1815 में ‘ब्रह्मसूत्र’ का बंगला में अनुवाद प्रकाशित किया, साथ ही 1816 में ‘केन तथा इशोपनिषद’ का बंगला तथा अंग्रेजी में अनुवाद किया। फारसी में ‘मिरातुल अखबार’ पत्र निकाला, राजाराम मोहन राय के विचारों पर माॅर्गुन्थो, ब्लेकटोन और बेंथम की छाप दिखती है। 1832 में वें इंग्लैंड गये, इंग्लैंड यात्रा के दौरान प्रथम ‘सुधार समिति’ रिपोर्ट पारित हुआ। उन्होंने उसका स्वागत कर कहा “यह उत्पीड़न अन्याय तथा अत्याचार पर स्वतंत्रता, न्याय, और सम्यकता की विजय है।⁴ वहीं इंग्लैंड के क्रिस्टल में उनका 20 सितंबर 1833 को उनका स्वर्गवास हो गया।

राजाराम मोहन राय का सामाजिक सशक्तिकरण में योगदान

सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत : राजाराम मोहन राय ने एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया। राय का लक्ष्य ऐसे समाज की स्थापना करना था जो सहिष्णुता, सहानुभूति, तार्किकता पर आधारित हो। उन्होंने सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों के बीच घनिष्ठ संबंध सुनिश्चित करने की दूरदर्शिता दिखायी।

परंपरा का विरोध : परम्परावाद का विरोध करते हुए राजाराम मोहन राय ने कहा कि सामान्य प्रकृति के रूप से भी परम्परावाद खतरनाक है। राय का कहना था कि “यदि आप परंपरा को

सर्वोपरि मानते हैं तब तो कर्मकांड और मूर्ति पूजा को छोड़कर शुद्ध ब्रह्म की पूजा करना सर्वथा आवश्यक है, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म की पूजा ही आपके धर्म की सबसे प्राचीन परम्परा है।⁵ वी. एन. नरवणे के अनुसार “उनकी दृष्टि रूढ़ियों और परम्पराओं के पूर्वाग्रह से ग्रस्त न थी, उन्होंने उदार हृदय से भारतीयों को अपनी हीन भावना त्याग कर पाश्चात्य मूल्यों को ग्रहण करने को प्रेरित किया।⁶

सती प्रथा की उन्मूलन : राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा को शास्त्र सम्मत नहीं माना। जब उनके बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु पर उनकी भाभी अलकामंजरी सती हुई तो वे बहुत आहत हुए और इसके विरोध में उन्होंने ‘संवाद कौमदी’ नामक पुस्तक लिख कर इस कुप्रथा का विरोध किया। इन्हीं के प्रचार के पश्चात 1829 में लॉर्ड विलियम बैंटिक द्वारा सती प्रथा को निषिद्ध किया गया। श्री मती फ्रांसिस के. मार्टिन ने ‘बंगाल हरकरा’ नामक समाचार पत्र में लिखा “महान हिन्दू दार्शनिक राजाराम मोहन राय की विशेष सहायता के बिना शायद कभी भी अंग्रेज सरकार के लिए कानूनन सती प्रथा रद्द करना सम्भव न होता, परन्तु उनकी यह देन किसी के द्वारा स्वीकृत नहीं की गयी।⁷ सोफिया ने कहा “हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अपने गम्भीर ज्ञान के आधार पर यह प्रमाणित किया कि सती प्रथा धर्मसंगत नहीं थी, इतना ही नहीं उन्होंने यह भी दिखाया है कि स्वार्थी सम्बन्धीजन किसी धार्मिक प्रेरणा से नहीं बल्कि विधवाओं के भरण-पोषण के खर्च से छुटकारा पाने हेतु इस कुप्रथा को जारी रखना चाहते थे।”⁸

महिला स्वतंत्रता, शिक्षा एवं पुनरुद्धार के समर्थक : राजाराम मोहन राय नारी स्वतंत्रता, शिक्षा, उनके अधिकारों और पुनरुद्धार के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह, सम्पत्ति में हक समेत महिला अधिकारों के लिए अभियान चलाया। उन्होंने कहा “कट्टर हिन्दुओं को चाहिए कि वे शैव- विवाहों को भी वही मान्यता दे जो वैदिक विवाहों को प्राप्त है। अगर उनकी बातों पर अमल किया जाता तो शैव विवाह, अर्न्तजातीय विवाह, यैवनारम्भ के उपरांत विवाह आदि हिन्दु समाज में मान्य होते।⁹ 1822 में राजाराम मोहन राय ने “हिन्दू उत्तराधिकार के अनुसार नारियों के प्राचीनतम अधिकारों का हनन” नामक लेख द्वारा पति की सम्पत्ति में पत्नियों के अधिकारों का पक्ष रखा। भारतीय इतिहास का उदाहरण देते हुए उन्होंने सिद्ध किया कि लीलावती, भानुमति, मैत्रेय आदि नारियां प्रतिभा, विद्या और ज्ञान की साकार मूर्तियां थीं।

शैक्षिक सुधार के क्रान्तिकारी योद्धा : शिक्षा के क्षेत्र में राय का विचार क्रान्तिकारी था। आधुनिक शिक्षा के प्रसार हेतु राजाराम मोहन राय ने 1817 में ‘हिन्दु कॉलेज’ की स्थापना डेविड हेयर की सहायता से किया। राय के स्कूल में मैकेनिक्स और वाल्टेयर के दर्शन को पढ़ाया जाता था। उन्होंने 1825 में वेदांत कॉलेज की स्थापना की जहां भारतीय शिक्षण और पश्चिमी सामाजिक एवं भौतिक विज्ञान दोनों विषयों की शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि राय पश्चिमी शिक्षा के समर्थक थे तथापि उन्हें प्राचीन साहित्य के प्रति निष्ठा थी, वे समाचार पत्रों के स्वतंत्रता के भी समर्थक थे। उन्हें “विश्वमानवता के विचार का संदेशवाहक” कहा गया है।

अद्वैतवाद के पुजारी : राजाराम मोहन राय ने यह बताने की चेष्टा की कि मूर्ति पूजा हिन्दू धर्म का कोई मौलिक अंग नहीं है, अपितु यह बहुत बाद में जुड़ा। मूर्ति पूजा के पक्ष में एक

तर्क दिया जाता था कि “ असली चीज तो श्रद्धा है, मूर्ति पूजा कीजिए तो ईश्वर की प्राप्ति होगी” राय ने इसका जबाव दिया कि विष को श्रद्धा के साथ दूध मानकर पीवोगे तो विनाशकारी होगा। बाजार से सौदा खरीदने जैसी मामूली चीज को सोंच-समझकर , नाप-तोलकर लेते हैं तो क्या हम इन महत्वपूर्ण तथ्यों पर सोंचना समझना छोड़कर श्रद्धा के सहारे बैठे रहे।¹⁰ राजाराम मोहन राय का मानना था कि “उपनिषद अद्वैतवाद की शिक्षा देते हैं जिसमें मूर्ति का कोई स्थान नहीं।

स्वतंत्रता के महान प्रेमी राजाराम मोहन राय : जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में राय की क्रियाओं का स्रोत “ स्वातंत्र्य के प्रति उनका अगाध प्रेम” ही था। राजाराम मोहन राय ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति से आत्मानुशासन होने की बात कही। राय ने अनिश्चितकाल तक भारत की पराधीनता की कल्पना नहीं की, वे चाहते थे अंग्रेजों को सिर्फ 40 वर्ष तक ही भारत में सांस्कृतिक और माननीय मिशन चलाना चाहिए। इसी दौरान भारत विश्व के अन्य देशों के साथ सम्पर्क में आकर गणतंत्रात्मक शासन की स्थापना कर सकता है और विश्व के अन्य सभ्य तथा स्वतंत्र देशों के समकक्ष पहुंच सकता है।¹¹

निष्कर्ष : राजाराम मोहन राय एक महान समाज सुधारक होने के साथ-साथ धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक सुधारों तथा राजनीतिक उदारवाद के समर्थक थे। जिस कारण उन्हें “आधुनिक भारत का जनक” कहा जाता है। राय ने जाति प्रथा का विरोध किया , स्त्रियों के उत्तराधिकार का समर्थन किया और विवाह समारोहों में सादगी पर जोर दिया। ऐनी बेसेंट के अनुसार “उनमें अद्भुत लगन, शक्ति और दृढता थी। उन्होंने बड़े साहस से हिन्दू परम्परावाद के उन्मूलन का प्रयास किया और स्वतंत्रता का बीजारोपण किया।”¹² डा.एच.सी.जकारिया के अनुसार “राजाराम मोहन राय और उनका ब्रह्म समाज, समाज और राजनीति में उन सभी सुधार आन्दोलन को आरम्भ करने वाले थे जिन्होंने गत् 100 वर्षों में भारत में क्रान्ति की, और जिन्होंने समय में भारतीय पुनर्जागरण को जन्म दिया”।¹³

संदर्भ सूची :

1. राजीव अहीर, आधुनिक भारत का इतिहास (पृष्ठ 201)
2. डा.के. अवस्थी, आधुनिक भारत सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन (पृष्ठ 61)
3. वी.एन. नरवणे, आधुनिक भारतीय चिंतन (पृष्ठ 28)
4. डा. के. अवस्थी, आधुनिक भारत सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन(पृष्ठ 57)
5. वी.एन.नरवणे, आधुनिक भारतीय चिंतन(पृष्ठ 92)
6. वी.एन.नरवणे, आधुनिक भारतीय चिंतन(पृष्ठ 28)
7. राजाराम मोहन राय द्विशत जन्म वार्षिकी समारोह समिति पुस्तिका (पृष्ठ 76)
8. राजाराम मोहन राय द्विशत जन्म वार्षिकी समारोह समिति पुस्तिका (पृष्ठ 76)sss
9. मॉर्डन रिव्यू में रमानन्द चटर्जी, राजाराम मोहन राय द्विशत जन्म वार्षिकी समारोह समिति पुस्तिका (पृष्ठ 2-3)
10. वी.एन.नरवणे, आधुनिक भारतीय चिंतन(पृष्ठ 32)

11. Bipin Chandra pal, Raja Ram Mohan Roy Birth Century , vol .2 , P. 20 -34
12. Annie Beasant , How India Brought Her Freedom, P. 51
13. Dr. H.E.C. Zecharia, Renaissance Indina , P. 23



Ambedkar as a Feminist Thinker: Intersectionality and the Fight for Gender Justice

Garima Thapliyal,
Ritambera Nainwal

Introduction

Dr. B.R. Ambedkar's contributions to feminism extend beyond the boundaries of conventional gender equality, positioning him as a transformative figure in both feminist and anti-caste discourse. Unlike many of his contemporaries, Ambedkar recognized that the liberation of women was inextricably linked to the annihilation of the caste system, which perpetuated patriarchal values within Indian society. Through his legal and social reforms, Ambedkar sought to empower women, particularly those from marginalised backgrounds, to challenge the socio-economic and cultural constraints imposed by Brahmanical patriarchy.

Ambedkar's most notable feminist contributions include his drafting of the Hindu Code Bill, which sought to reform personal laws to grant women equal rights in marriage, divorce, and inheritance. Despite facing strong opposition, the bill laid the groundwork for subsequent legal reforms in women's rights. Ambedkar's approach was intersectional long before the term was widely used: he highlighted how caste, class, and gender intersect to oppress Dalit women uniquely. He supported Dalit women's active participation in social and political movements, challenging traditional roles and encouraging them to claim public spaces from which they were historically excluded.

Through his newspapers *Mook Nayak* and *Bahishkrit Bharat*, Ambedkar regularly addressed issues of women's rights, emphasising education, economic independence, and political participation as tools for empowerment. His stance on women's labor rights, his condemnation of oppressive practices like child marriage and Sati, and his critique of religious texts that justified women's subjugation reveal his forward-thinking feminist vision. Ambedkar believed that the progress of society could be measured by the status of its women¹, and his pioneering work continues to inspire feminist movements in India, particularly Dalit feminism, which draws from his commitment to intersectionality and justice. His legacy as a feminist advocate endures, encouraging an inclusive feminist agenda that fights both caste and gender oppression.

Ambedkar's Critique of Patriarchy

Ambedkar's critique of patriarchy as a structure that reinforces both caste and gender hierarchies was foundational to his feminist thought. He argued that social codes and norms institutionalised the subjugation of women within caste society, sustaining a Brahmanical patriarchy that enforced both gender and caste inequality.

¹ Dr. Babasaheb Ambedkar, speech at a gathering of over 3,000 women in 1927

In the early 1920s, Ambedkar condemned the Manusmriti, asserting that it significantly contributed to the decline of women's status in India. In his essay *The Riddle of the Woman*, Ambedkar famously criticises the Manusmriti, a Hindu text that laid down strict gender roles and restricted women's rights. His public burning of the text in 1927 was an act of defiance, symbolising his rejection of religious norms that enforced gender inequality. He challenged Manu's role in restricting women's freedom and autonomy. The Manusmriti represented to Ambedkar the codification of Brahmanical patriarchy, where caste and gender intersected to restrict women's rights, autonomy, and social status. By denouncing it, he was not only challenging the text's authority but also confronting the cultural and religious legitimization of inequalities that upheld both caste and gender oppression. He linked the degradation of women's status to the rigid social hierarchies perpetuated by the caste system. His analysis underscored how these historical structures were actively embedded in contemporary Indian society, with a direct impact on the lived realities of marginalised women, especially Dalit women. In 1927, Ambedkar led a public protest '*Mahad Satyagraha*' against these oppressive structures, calling for a re-evaluation of societal norms that marginalised women.

The Hindu Code Bill: Legal Reforms and Women's Rights

The Hindu Code Bill, introduced in the early 1950s, was a landmark piece of legislation aimed at reforming Hindu personal laws governing marriage, divorce, inheritance, and property rights. Dr. B.R. Ambedkar played a pivotal role in drafting and advocating for this bill, viewing it as essential for advancing women's rights within the Hindu community. His contributions to the Hindu Code Bill were significant in several ways. First and foremost, Ambedkar championed the cause of legal equality for women. He argued passionately for the necessity of granting women equal rights in matters of marriage and inheritance, believing that personal laws were a major source of women's oppression. For him, legal reforms were crucial in securing women's rights and dignity within a patriarchal society.

Ambedkar's approach to the Hindu Code Bill was also grounded in a secular framework, emphasising that laws should not be based on religious texts but rather on principles of justice and equality. This perspective was particularly important in the context of India's diverse society, where multiple religions coexist and various personal laws existed. In his draft of the Hindu Code Bill, Ambedkar included provisions that sought to empower women, such as rights to divorce, equal inheritance rights, and the prohibition of polygamy. These provisions represented a radical departure from traditional practices and aimed to provide women with greater autonomy over their personal and family lives. Furthermore, Ambedkar promoted inter-caste marriages as a means to combat caste discrimination and foster social equality, reinforcing the notion that women should have agency in choosing their partners.

The implications of the Hindu Code Bill were profound and far-reaching. Its enactment marked a significant step toward legal empowerment for women, granting them rights that had long been denied. The bill provided a framework for women to claim their rights and seek justice in matters of family law, thus serving as a critical tool for social change. Moreover, it catalysed discussions around gender equality and women's rights in Indian society, challenging traditional patriarchal norms and encouraging a re-examination of gender roles and the social structures that upheld them. However, despite its progressive intentions, the Hindu Code Bill faced substantial opposition from conservative factions within Indian society, including orthodox Hindu groups. This resistance highlighted the challenges of enacting social reforms and underscored the deep-rooted nature of patriarchal attitudes that continued to persist.

Ultimately, the principles embodied in the Hindu Code Bill laid the groundwork for future legal reforms concerning women's rights in India. It served as a model for subsequent legislation aimed at improving women's status and promoting gender equality across various domains. Ambedkar's contributions to the Hindu Code Bill were instrumental in shaping a legal framework that sought to empower women and promote equality, reflecting his broader

vision of social justice. His advocacy for women's rights within the context of Hindu personal laws underscores the importance of intersectional approaches to reform, and the implications of this legislation continue to resonate in contemporary discussions around gender equality and women's rights in India. Gail Omvedt notes that Ambedkar saw legal reform as a critical step in dismantling the structures that limited women's autonomy. Though the bill was not passed in his lifetime, it laid the foundation for future laws that would improve the legal standing of women in India. Ambedkar's resignation in protest of the bill's defeat reflects his deep commitment to gender equality, despite the personal and professional costs.

Intersectionality in Ambedkar's Feminist Philosophy

Intersectionality, a term popularised decades later by Kimberlé Crenshaw, finds a powerful antecedent in Ambedkar's analysis of caste and gender. In 1916, Ambedkar acknowledged that caste and gender were interconnected systems, not just separate entities. Ambedkar's understanding of the intersections between caste, class, and gender positioned him as a forerunner of intersectional feminist thought. He recognized that inequalities span across multiple marginalised groups, such as women, the lowest castes, and religious minorities like Muslims. He understood that these inequalities are intensified by the intersecting and interlocking disadvantages of identities, such as being an untouchable woman. He recognized that Dalit women, in particular, experienced multiple layers of discrimination due to their caste and gender, which mainstream feminism often ignored. Later, to describe this intersectionality, Gail Omvedt (1979) coined the marker for Dalit women as "downtrodden amongst the downtrodden". She explained the idea of 'dual vulnerability' in the lives of Dalit women- one is discrimination within home and other outside the home. Ambedkar's critique of endogamy and support for inter-caste marriage highlight his understanding of this intersectionality.

Ellenor Zelliott highlights the importance of an Ambedkarite perspective that promotes empowerment and visibility for Dalit women. This intersectional perspective recognizes the diverse, complex, and sometimes contradictory nature of individual and group experiences. It also reflects the hierarchical, multi-layered, and evolving power dynamics of caste, class, race, and ethnicity that shape their social realities.

Ambedkar's Vision for Women's Education and Economic Independence

Ambedkar viewed education as a powerful tool for women's empowerment, particularly for those from marginalised communities. He believed that educated women would be better equipped to assert their rights and contribute to societal progress. This emphasis on education as a means of liberation is a recurring theme in his writings and speeches. Ambedkar also advocated for women's economic independence, emphasising fair wages and workplace protections as essential to reducing women's dependence on men. His assertion that education serves as the primary catalyst for societal transformation underscores its critical role in dismantling coercive structures and fostering egalitarian participation. By advocating for universal access to education, Ambedkar recognized that knowledge is a potent instrument for individual empowerment, enabling people to assert their rights, participate actively in civic life, and pursue opportunities that were historically denied to them.

Urmila Pawar and Meenakshi Moon in their work, discusses the crucial roles of education and public involvement of Dalit women in collective struggles during Ambedkar's era. Pawar and Moon point to the early efforts toward reforming the devadasi system, which had exploited "religious" justifications for the sexual abuse of Dalit women. In her work, Pratima Pardeshi contends that the issue of women's rights held significant importance in Ambedkar's perspective.

Ambedkar's ideals also inspired many leaders within the Dalit movement to centre gender in their political agendas. His assertion that "I measure the progress of the community by the degree of progress which women had achieved. Let every girl who marries stand by her husband, claim to be her husband's friend and equal and refuse to be his slave. I am sure if you

follow this advice you will bring honour and glory to yourselves.” set a high bar, underscoring that no social reform could be complete without addressing both caste and gender injustices. He highlights that gender equality, financial autonomy, gender mainstreaming, leadership, and networking are vital elements of women's empowerment.

Ambedkar's Legacy in Contemporary Feminist Movements

Ambedkar's feminist legacy continues to resonate within contemporary feminist movements, particularly among Dalit and intersectional feminists. His critique of Brahmanical patriarchy and his emphasis on the interconnectedness of caste and gender have been instrumental in shaping Dalit feminism. Ambedkar's ideas remain essential for understanding the unique challenges faced by marginalised women in India.

This perspective contributed significantly to the emergence of a Dalit feminist standpoint that has increasingly incorporated the concept of intersectionality over time. Consequently, scholars within upper-caste feminist academia have argued that an intersectional Dalit feminist framework should also be adopted by upper-caste theorists to create more comprehensive and nuanced feminist analyses (Rege, 2003, 2006; V. Geetha, 2016; Rao, 2003, 2010, 2018). His influence is visible in the work of modern feminist collectives and activists who advocate for a more inclusive feminist agenda that addresses caste-based oppression alongside gender issues. Ambedkar's vision inspires a new generation of feminists who draw from his commitment to justice, equality, and human dignity.

Conclusion

Ambedkar's feminist philosophy offers a far-reaching critique of the structural forces that reinforce patriarchy, foregrounding women's rights to autonomy, legal equality, and economic empowerment. His approach goes beyond addressing women's issues in isolation, recognizing that the dynamics of gender inequality are interwoven with social hierarchies, particularly caste. By challenging these intersecting systems, Ambedkar emphasised the need for a feminism that dismantles both patriarchal and caste-based oppression.

His vision remains foundational for contemporary feminist discourse in India, advocating for a holistic and intersectional approach that considers how various forms of marginalisation—such as caste and class—compound women's struggles. Ambedkar's legacy thus provides a blueprint for building a more inclusive feminist movement, one that seeks justice and equity for all women while recognizing and addressing the intersecting dimensions of their experiences.

Bibliography

1. Banerjee, S., & Ghosh, N. (2018). Caste-Gender intersections in contemporary India: Introduction. Debating intersectionalities: Challenges for a methodological framework. *South Asia Multidisciplinary Academic Journal*. <https://doi.org/10.4000/samaj.4745>
2. Bhaskar, A. (2020). Ambedkar, Lohia, and the segregations of caste and gender: Envisioning a global agenda for social justice. *CASTE: A Global Journal on Social Exclusion*, 1(2), 63–72. <https://doi.org/10.26812/caste.v1i2.208>
3. Chander, R. K. (2023). B.R. Ambedkar as the earliest feminist: His pathbreaking role in bringing gender equality in India, and legacy. *Panjab University Research Journal (Arts)*, LII(July-December), 25-48.
4. Das, S. (2015). Ambedkar and women rights: An analysis. *International Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Studies (IRJIMS)*, 1(1), 191-195.
5. Gaikwad, R. (2010, January 10). Need for feminists to reclaim Ambedkar seen. *The Hindu*.
6. Guru, G. (1995). Dalit women talk differently. *Economic and Political Weekly*, 30(41-42), 2548-2549.

7. Kapoor, P. (2021). An analytical study on the contribution of Dr. B. R. Ambedkar for Indian women empowerment. *Ilkogretim Online*, 20(1), 3347-3353. <https://doi.org/10.17051/ilkonline.2021.01.378>
8. Kumar, S., & Bakshi, E. (2022). The dominant post-constitutional Indian feminist discourse: A critique of its intersectional reading of caste and gender. *CASTE: A Global Journal on Social Exclusion*, 3(1), 49–68. <https://doi.org/10.26812/caste.v3i1.364>
9. Mohan, D. (2020). The feminist in Ambedkar. *Frontier India*. Retrieved from <https://www.fortuneindia.com/opinion/the-feminist-in-ambedkar/104444>
10. Moon, M., & Pawar, U. (1989). We made history too: Women in the early untouchable liberation movement. *South Asia Bulletin*, 9(2). Editorial notes by Barbara R. Joshi.
11. Omvedt, G. (2003). *Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste*. New Delhi: Sage Publications.
12. Rao, A. (Ed.). (2003). *Gender and caste* (pp. 1–47). New Delhi: Kali for Women.
13. Zelliott, E. (1992). *Ambedkar's World: The Making of Babasaheb and the Dalit Movement*. Navayana.



स्वामी विवेकानंद के स्वप्नों का भारत:

एकता जैन, पी.एच.डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग,
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

**“उठों, जागों और तब तक मत रुकों,
जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाए”**

भारत में प्रखर एवं विलक्षण प्रतिभाओं ने अपने अलौकिक ज्ञान से मानव जगत को नवीन क्रान्ति की ओर अग्रसर किया। भारत में प्रखर विद्वानों की सतत श्रृंखला विद्यमान रही है। इन्हीं विद्वानों की ज्ञान ज्योति से सारा विश्व लाभान्वित हुआ। भारत की पवित्र आध्यात्मिक परंपरा में अनन्य ज्ञान के भंडार एवं रामकृष्ण परमहंस के सबसे प्रिय शिष्य, दिव्य जोतिर्मय स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 में कलकत्ता के एक धनी श्रत्रिय परिवार में हुआ था। इनके दादा दुर्गाचरण एवं पिता विश्वनाथ दत्त थे। विश्वनाथ दत्त का विवाह भुवनेश्वरी देवी से हुआ था जो एक धर्मपरायण महिला थी। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि *‘मेरे अंदर जितनी भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है, उसके लिए मैं अपनी माँ का आभारी हूँ’*। इनकी माता प्रेम से इन्हें वीर कहकर पुकारती थी परंतु नामकरण संस्कार के समय उनका नाम नरेंद्रनाथ रखा गया था। बचपन से ही नरेंद्रनाथ में कुशल प्रतिभा एवं प्रखर बुद्धि के लक्षण प्रदर्शित होते थे। इनकी स्मरण शक्ति बहुत विशाल थी। इन्होंने अंग्रेजी एवं बांग्ला भाषा की शिक्षा घर पर ही प्राप्त की तथा 7 वर्ष की अल्प आयु में कृत्तिवास बांग्ला रामायण कंठस्थ कर ली। विद्यालय काल में शिक्षक द्वारा सिखायी गई एक कविता की कुछ पंक्तियों का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा- *‘जो मनुष्य सकल नारियों में अपनी माँ को देखता है, समस्त मनुष्यों की विपुल संपत्ति को धूल के ढेर के समान देखता है जो समग्र प्राणियों में अपनी आत्मा को देख पाता है, वही प्रखण्ड ज्ञानी होता है’*। कलकत्ता में विद्यालय की पढ़ाई करते समय उनकी प्रकृति धर्मपरायण अवश्य थी परंतु वह सिर्फ बातचीत से संतुष्ट नहीं होते थे, सभी चीजों की तत्काल जांच परक करना उनका स्वभाव था। 1879 में प्रथम श्रेणी में प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की

उपाधि प्राप्त की। नरेंद्रनाथ की विश्वविद्यालयी शिक्षा पूर्ण होने के उपरांत वह कानून की पढ़ाई में लग गए। इन्होंने विभिन्न विद्वानों के दर्शन का गहन अध्ययन किया।

महर्षि देवेन्द्रनाथ की सलाह से नरेंद्र ने बचपन से ही ध्यान करना आरंभ कर दिया था। प्रारम्भ में वे ब्रह्म समाज से प्रभावित हुए किन्तु 1882 में दक्षिणेश्वर मंदिर में उनके चाचा ने उन्हें रामकृष्ण परमहंस से मिलवाया। यह उनके जीवन में परिवर्तन बिन्दु के रूप में उपयोगी सिद्ध हुआ। रामकृष्ण से प्रभावित होकर वे उनके प्रिय शिष्य बन गए। स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानंद के भीतर नवीन चेतना का संचार किया जिसने उनके भीतर छिपे अटूट आत्मविश्वास को जगाया जिससे वह दीक्षा की ओर अग्रसर हुए। रामकृष्ण परमहंस ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपने विचारों को फैलाने तथा शिष्यों की देख-रेख का भार भी विवेकानंद को सौंप दिया था। 1886 ई. में अंतपुर में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर अग्नि को साक्षी मानकर विवेकानंद ने सन्यास ले लिया। उन्होंने 6 वर्षों तक हिमालय की तराई में रहकर बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन किया। इन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारी तक समस्त भारत का भ्रमण किया जिससे न केवल इनके ज्ञान में वृद्धि हुई बल्कि यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में निवासरत दीन-दुखियों की स्थिति से भी अवगत हुए। 1893 में विवेकानंद को कन्याकुमारी मंदिर में इस ज्ञान का आभास हुआ कि भारत का उत्थान धार्मिक प्रचार से न होकर गरीब व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार द्वारा किया जा सकता है। मद्रास के शुभचिंतकों का विचार था कि विवेकानंद शिकागो जाए और हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करें। 11 सितंबर, 1893 में शिकागो के विश्वधर्म सम्मेलन में वे भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। उन्हें हिन्दू धर्म को आध्यात्मिक आधार के रूप में व्यक्त करने का जीवंत अवसर प्राप्त हुआ। स्वामी विवेकानंद ने अनेक देशों का भ्रमण किया। इस भ्रमण के दौरान वे अनेक व्यक्तियों से मिलें एवं भिन्न-भिन्न समस्याओं, रीति-रिवाजों, संस्कृतियों तथा परिस्थितियों से परिचित हुए। स्वामी विवेकानंद ने हिन्दू धर्म की प्राचीनता, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता तथा नववेदान्तवाद के सार को बताया। अमेरिका के समाचार पत्रों ने उनके भाषण पर टिप्पणियाँ प्रकाशित की जिससे विवेकानंद को धर्म संसद का महान वक्ता समझा जाने लगा। फरवरी 1896 में उन्होंने वेदान्त समाज का गठन किया जिसका लक्ष्य वेदान्त का सम्पूर्ण जगत में प्रचार-प्रसार करना था इस प्रचार-प्रसार की श्रेणी में दो अमेरिकन शिष्यों ने उनका साथ दिया।

जनवरी 1897 में स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ कोलंबो गए वहाँ से भारत पहुँचकर उन्होंने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया भारतीयों ने उन्हें प्राचीन हिन्दू धर्म का महान रक्षक बतलाया। स्वामी जी के अनुयायियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गई। मई 1897 में धर्म प्रचार को सुगम बनाने के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई। ए. आर. देसाई के शब्दों में रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य 'पश्चिम के भौतिक वादिक प्रभाव से भारत को बचाए रखना था'। के. दामोदरन के अनुसार 'इस मिशन का उद्देश्य नए संदेश का प्रचार करना एवं जनता में नई चेतना को जागृत करना था'। रामकृष्ण मिशन का ध्येय वाक्य है -

“आत्मनो मोक्षार्थं जगदधिताय च”

स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु के विचार ‘मनुष्य की सेवा ईश्वर की सेवा है क्योंकि मनुष्य ईश्वर का प्रतिमान रूप है’- को सम्पूर्ण जगत में फैलाया । उन्होने जातिय कर्मकांडों एवं अंधविश्वासों पर प्रहार करते हुए सर्व धर्म समभाव के साथ मानव सेवा पर बल दिया । 1898 में स्वामीजी पुनः अमेरिका गए और सेन फ्रांसिसको तथा न्यूयॉर्क में वेदान्त समाज तथा आश्रम की स्थापना की । 1900 में पेरिस की धर्म सभा में भाग लिया एवं भारत आकर मद्रास में तृतीय मठ की स्थापना की । स्वामी जी भाषण देने की अपेक्षा काम करने में विश्वास करने लगे ।

स्वामी विवेकानंद ने सांस्कृतिक जागरण को ओर अधिक समृद्ध बनाने हेतु उपदेश दिए -

- I. **आत्मविश्वास और निर्भरता:** विवेकानंद ने लोगों को स्वयं पर विश्वास करने और अपने जीवन का मार्गदर्शन स्वयं करने की प्रेरणा दी ।
- II. **धर्म और मानवता का संदेश:** धर्म का वास्तविक सार ही सेवा है । उनके अनुसार किसी भी धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानवता की सेवा करना है ।
- III. **ईश्वर की अनुभूति और कर्मयोग:** जो लोग दूसरों की सेवा करते हैं वे वास्तव में ईश्वर की सेवा करते हैं । उन्होने कर्मयोग सिद्धान्त में व्यक्ति को अपने कर्तव्य को निःस्वार्थ भाव से निभाने की प्रेरणा दी ।
- IV. **शिक्षा का उद्देश्य:** शिक्षा से आत्मा की पूर्णतः संभव है, विवेकानंद का मानना था कि शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि आत्मविकास का साधन है ।
- V. **नारी उत्थान और समानता:** उनका मानना था कि राष्ट्र की प्रगति तब तक संभव नहीं हो सकती जब तक महिलाएं समाज में उत्थान प्राप्त नहीं करती । उन्होंने नारी शिक्षा और समानता पर अधिक जोर दिया ।
- VI. **समाज सेवा और राष्ट्र निर्माण:** हमारी सबसे बड़ी सेवा दूसरों की प्रसन्नता से है । विवेकानंद का मानना था ‘हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज के कमजोर वर्गों की सहायता करके राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान प्रदान करें ।
- VII. **भय पर विजय:** डरों मत ! जो डरता है नष्ट हो जाता है । विवेकानंद ने सिखाया कि मनुष्य को हर प्रकार के भय से मुक्त होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए ।

यह ज्ञातव्य है कि विवेकानंद के उद्देश्य समाज में पुनरुत्थान के रूप में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्माण करते हैं जिससे स्वामी विवेकानंद के सपनों के भारत को दिशा मिल सकें ।

भारतीय सांस्कृतिक जागरण में विवेकानंद के सपनों का भारत:

नववेदान्तवाद के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद ने हिन्दूवाद के सामान्य आधारों को नववेदान्तवाद के रूप में दृष्टिगोचर किया जिसके आधार पर राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई । उनके अनुसार मनुष्य की वास्तविक प्रकृति

ईश्वरीय है। मनुष्य की आत्मा में ब्रह्मा का वास होता है। वेदान्त मनुष्य के दैनिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के नियमन एवं संचालन का पथप्रदर्शक दर्शन है। वेदान्त की शिक्षा से व्यक्ति स्वयं का आत्म उत्थान कर सामाजिक राष्ट्रीय निर्माण एवं समन्वयन का पाठ सिखाने वाला शास्त्र है। उनके दर्शन संसार के धर्म मिश्रित संघर्षों की समाप्ति, सहिष्णुता व सद्भाव, पारस्परिक एकता व शांति के जीवन को प्राप्त कर समृद्ध बनेंगे। वेदान्त का संदेश मानवीय प्रेम, त्याग एवं सेवा है। वेदान्त इस आधार पर मानव निर्माण का धर्म है जो मनुष्य को सर्वोपरि बनाता है।

सामाजिक विचार के रूप में भारत:

विवेकानंद के विचारों में सामाजिक जीवन को उन्नत करने की प्रबल आकांक्षा विद्यमान थी। उनका मानना था कि ज्ञान को जीवन के व्यावहारिक धरातल पर उतारना चाहिए। वे समाज सेवा को ही ईश्वर सेवा मानते थे। स्वामी विवेकानंद ने भारत में प्रचलित जाति-प्रथा, छुआछूत, कर्मकांड, अंधविश्वास, बाल-विवाह इत्यादि सामाजिक बुराइयों की आलोचना की एवं उन्हें सुधारने हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए। स्वामी विवेकानंद कहते हैं - भारत के करोड़ों गरीबों के दुःख और पीड़ा के लिए कितने लोग वास्तविक रूप से चिंतित हैं। हम मनुष्य होने के नाते उनकी जीविका और उन्नति के लिए क्या कर रहे हैं? हम उन्हें अछूत मानते हैं वे हजारों ब्राह्मण भारत के दलित लोगों व निम्न वर्ग के लिए क्या कर रहे हैं? इनके मुह से केवल एक ही वाक्य निकलता है हमें मत छूओ-हमें मत छूओ! इनके कारण हमारा सनातन धर्म तुच्छ और भ्रष्ट हुआ है। विवेकानंद ने बाल-विवाह की निंदा की उनका मानना था कि बाल विवाह के कारण छोटी उम्र में पति की मृत्यु से समाज में बाल विधवाएँ अनेकों कष्टों को भोगती हैं। वे लोगों को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि मूर्ति पूजा में निहित भावना यही है कि हम उसको परमात्मा नहीं बल्कि परमात्मा की प्रतिमा मानकर पूजते हैं। मूर्ति हमारे मन को ईश्वर की अनुभूति के लिए तैयार करती है। उनका आग्रह था सामाजिक सेवा संबंधी कार्यों को अध्यात्म-साधना के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया जाए। वे इसी आधार पर अपने सपनों में भारत की प्रत्यक्ष छवि देखते थे।

धार्मिक विचार के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद सार्वभौमिक धर्म के व्याख्याकार थे। वे उदार हिन्दू धर्म व अध्यात्मवाद की जीवंत आत्मा थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन संस्कारपूर्ण तरीके से व्यतीत किया तथा साथ ही वे हिन्दू मान्यताओं में निहित कट्टरता से सदैव दूर रहे। उनका धर्म व्यावहारिक था। स्वामी विवेकानंद धर्म को व्यापक विज्ञान मानते थे। उनके धर्म में विश्व के समस्त अच्छे तत्वों का समन्वय था। उन्होंने हिन्दू धर्म के उदात्त पक्ष का प्रचार किया एवं व्यावहारिक रूप से समाज में व्याप्त बुराइयों का डटकर विरोध किया। स्वामी जी ने एक ओर वेदान्त, उपनिषद तथा वेदों की व्याख्या कर हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ तत्वों को उजागर किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने बताया कि

विवादित समाज का विकास नहीं हो सकता । वह अतीत के गौरव ज्ञान मात्र से पुल्कित होने वाले पारंपरिक व्याख्याकारों से बिलकुल भिन्न थे । वे धार्मिक थे तथा सांप्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे ।

स्वामी विवेकानंद ईश्वर में असीम श्रद्धा रखते थे तथा ईश्वर की शक्ति को अध्यात्मवाद के द्वारा पाने का आह्वान करते थे । वह आध्यात्मिक प्रगति के पक्षधर थे । उनका विश्वास था कि भारत पश्चिम को अध्यात्मवाद की शिक्षा प्रदान कर सकता है और स्वयं पश्चिम से भौतिक प्रगति की शिक्षा अर्जित कर सकता है । कर्म एवं पुनर्जन्म में उनका पूर्ण विश्वास था । उन्होंने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित कर उसे ईसाइ एवं इस्लाम के आक्रमणों से बचाया तथा हिन्दुत्व के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित कर सम्मान सहित विश्व में खड़ा किया । इन्हीं सब प्रयत्नों से उनके स्वप्न भारत की झलक दृष्टिगोचर होती है ।

राजनीतिक विचार के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद महान राष्ट्रवादी व स्वतंत्र भारत के पक्षधर थे । विवेकानंद पत्रावली में उल्लेख है - “मैं न राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आंदोलन चलाने वाला नेता हूँ, मैं केवल आत्मतत्त्वों का चिंतन करता हूँ, जब वह ठीक होगा, तब सभी कार्य सुचारु रूप से हो जाएंगे” । उनके भाषणों में हम उनकी राजनीतिक दृष्टि की झलक देख सकते हैं । व्यक्ति के गौरव, विचारों की स्वतन्त्रता, नारी जागरण, दलितोद्धार, विश्वबंधुत्व आदि पर उन्होंने जो विचार प्रकट किए उससे ऐसा लगता है कि वह लोक कल्याणकारी राजनीति के समर्थक थे । स्वामी विवेकानंद भारतवासियों को जागृत करने हेतु कहते हैं कि -

“निर्भीक बनों, साहस धारण करों,
गर्व करो तुम भारतीय हो ।
भारत भूमि एकमात्र स्वर्ग है,
भारत कल्याण ही मेरा कल्याण है”।

इन सभी क्रियाकलापों से लोक कल्याणकारी राजनीति के द्वारा वह अपने सपनों के भारत को व्यक्त करते हैं जिससे उनके देशप्रेम की भावना को महसूस किया जा सकता है ।

आर्थिक विचार के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद के हृदय में गरीबों एवं दलितों के प्रति असीम संवेदना थी । उनकी आत्मा भारत में व्याप्त दुःख तथा दरिद्रता से पीड़ित थी । उनका मत था कि गरीबों एवं बीमारों की सहायता करने से न केवल स्वार्थ भावना समाप्त होगी बल्कि ईश्वर प्राप्ति का माध्यम भी सबल होगा । उन्होंने समाज सेवा एवं दरिद्र सेवा को सर्वश्रेष्ठ माना । स्वामी विवेकानंद के अनुसार “एकमात्र भगवान जिसमें मैं विश्वास करता हूँ वह सभी आत्माओं का कुल योग है” । स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि निर्धनता एवं उपेक्षा के संदर्भ में धर्म से अधिक आवश्यक वस्तु रोटी है । विवेकानंद ने पत्र में लिखा था “गरीबों के लिए काम की व्यवस्था करने हेतु भौतिक व्यवस्था

संबंधी सभ्यता की एवं विकास बाहुल्य की अत्यंत आवश्यकता है । मैं उस ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो मुझे इस संसार में रोटी नहीं दे सकता बल्कि आने वाले समय में स्वर्ग में मुझे अनंत सुख की प्राप्ति कराएगा” । इस दिशा में आर्थिक व्यवस्था के सुदृढिकरण हेतु शिक्षा का प्रसार किया जाना अत्यंत आवश्यक है जिससे सामाजिक आतंक को दूर किया जा सके ।

इन सभी आर्थिक दृष्टिकोणों में उनके स्वप्न भारत का स्वरूप प्रदर्शित होता है जिससे न केवल समाज व राष्ट्र उन्नति की ओर अग्रेसर होते हैं बल्कि आर्थिक व्यवस्था के सुदृढिकरण में भी नवीनता आती है ।

शैक्षिक विचार के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद का विश्वास था कि पूर्व और पश्चिम अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं । उनके अनुसार भारत को अध्यात्मवाद की शिक्षा प्रदान करने वाला अग्रणी समझा जा सकता है । वह स्वयं पश्चिम से भौतिक प्रगति की शिक्षा प्राप्त कर अपना व्यापक विकास कर सकता है । स्वामी जी ने सामाजिक व्यवस्था में अमूल-चूल परिवर्तन का आह्वान किया क्योंकि समाज के सभी सदस्यों को संपत्ति, शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्त करने के लिए समान अवसर अवश्य प्राप्त होने चाहिए । उनके अनुसार जब तक लाखों लोग भूख तथा अज्ञानता से ग्रस्त हैं तब तक मैं हर उस व्यक्ति को दोषी कहूँगा जो उनके खर्च पर शिक्षा पाकर भी ध्यान नहीं देते । स्वामी विवेकानंद ने 1897 ई. में भारतीय शिक्षा व संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से रामकृष्ण मिशन की स्थापना की जिसके माध्यम से देश के विभिन्न भागों में अज्ञानता व अशिक्षा को दूर करने हेतु कई संस्थाओं का निर्माण किया गया ।

इन्हीं सब शैक्षिक प्रयासों में विवेकानंद के सपनों का भारत परिलक्षित होता है जिससे उनके अनुभव के द्वारा हम वर्तमान में नवीन ज्ञान का सूत्रपात क्रियान्वित कर पाएंगे ।

“जब तक जीना तब तक सीखना,
अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है ।”

नैतिक विचार के रूप में भारत:

स्वामी विवेकानंद ने आंतरिक शुद्धता एवं आत्मा की एकता के सिद्धान्त पर आधारित नैतिकता की नवीन अवधारणा प्रस्तुत की है । विवेकानंद के अनुसार नैतिकता व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करने वाली नियम संहिता है । प्रत्येक मानव को नैतिकता के मूल्यों को अवश्य अपनाना चाहिए । इस नियम प्रणाली के माध्यम से सहृदयता एवं करुणा को आधार बनाकर स्वामी विवेकानंद के स्वप्न भारत की झलक का ज्ञान अर्जित कर सकते हैं ।

युवाओं के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में:

स्वामी विवेकानंद का मानना था कि युवाओं को सफलता प्राप्ति के लिए समर्पण भाव को विकसित करना होगा तथा भविष्य की चुनौतियों के लिए सदैव तैयार रहना होगा । विवेकानंद

युवाओं को अध्यात्मिक बल के साथ-साथ शारीरिक बल में वृद्धि करने के लिए भी प्रेरित करते थे। विवेकानंद के जन्म दिवस 12 जनवरी को भारत में प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय युवा दिवस तथा राष्ट्रीय युवा सप्ताह के रूप में मनाया जाता है। इन्हीं प्रेरणाओं में उनकी स्वप्न भारत की छवि को देखा जा सकता है।

अंत में हम कह सकते हैं कि 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अवतरित स्वामी विवेकानंद के विचार एवं जीवन दर्शन वर्तमान में अत्यंत प्रासंगिक है। विवेकानंद ने अपने योगदान से स्वप्न भारत की छवि परिलक्षित की जिसमें राष्ट्रवाद का अंतराष्ट्रीयकरण, धार्मिक अवधारणा से लोगों को एकजुट करना, सर्व धर्म समभाव को क्रियान्वित करने पर बल देने, दरिन्द्र सेवा की संकल्पना को साकार करने, वंचित समुदायों की समस्याओं को समाप्त करने, असमानता को समानता में परिवर्तित करने, गरीबी को दूर करने, नैतिकता को उजागर करने, युवाओं को प्रेरणा देने, समाज में व्याप्त बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने, शैक्षिक दृष्टि से व्यक्ति-समाज व राष्ट्र को ज्ञान रूपी अध्यात्मवाद की शिक्षा देने एवं नववेदान्तवाद के रूप में उनके स्वप्नों के भारत को प्रदर्शित किया जा सकता है जो वर्तमान युग की महत्वपूर्ण आवश्यकता को व्यक्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. विद्याधर. महाजन. (2000). आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय. रामसकल (2004). विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन, आगरा। विवेकानंद. स्वामी (2004). एज्यूकेशन, मद्रास: श्री रामकृष्ण मठ (टी. एस. अविनाशलिंगम द्वारा संपादित)।
3. मिश्र. उर्मिला. प्रकाश एवं आशा. (2005). भारत का इतिहास 1858 से 1950, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
4. मुखर्जी. रवींद्रनाथ. (2006). भारतीय समाज एवं संस्कृति, विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
5. शर्मा. गणेश दत्त (2007). विवेकानंद चरितामृतम, अमिटी वि.वि. प्रेस, नई दिल्ली।
6. शर्मा. एफ.पी. (2010). आधुनिक भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
7. शुक्ल. रामलखन. (संपा). (2010). आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
8. मिश्र. सुरेश. (2011). भारत का इतिहास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
9. राय. कौलेश्वर (2012). आधुनिक भारत, किताब महल, इलाहाबाद।
10. त्रिपाठी. मधुसूदन एवं त्रिपाठी. आदर्श कुमार (2013). स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन, महेंद्र बुक कंपनी, गुडगांव।
11. गुप्ता. राहुल (2014). महान शिक्षाशास्त्री. प्रेरणा प्रकाशन, रोहिणी, दिल्ली।
12. भांकर एवं सुशील गुप्ता (2019). विवेकानंद की आत्मकथा, नरूला प्रिंटर्स, दिल्ली।



GREAT LEADER OF INDIAN DEMOCRACY :CHANDRA SHEKHAR

Rahul Kumar (UGC NET HISTORY),
MBA, MA (History), B.ed, C.tet (paper 1&2), Bihar S.tet,
Gaya Bihar

Early Life And Education:-

Chandra shekhar was born on 01 july 1927 at Ibrahimpatti in the district of Ballia, Uttar Pradesh. His father shri Sadanand Singh was a farmer and his mother shrimati Droupadi devi was housewife. As a student he was very hardworking and committed to study. He passed his matriculation from Jeevan Ram High School Azamgarh in 1945 and BA from Satish Chandra PG. college Ballia in 1949. During these days he was married to Duja Devi. Later he joined Allahabad university for his post graduation and completed master degree in political science in 1951. While being in Allahabad university he began to take interest in politics and soon he got recognition as a fire brand student leader.

Early Political Career:-

During his early days in Allahabad university he came under the influence of the Veteran Socialist leader Acharya Narendra Deva. After completing his master degree from Allahabad university in 1951.

He joined the socialist party and was elected District secretary of socialist party Ballia. Within one year he was elected joint secretary of the praja socialist party of Uttar Pradesh state unit. He remained as the joint secretary of praja socialist party from 1952-55. In 1955-56, He was elected General Secretary of the Praja Socialist party. During 1959-62 he was member of the national executive of Praja Socialist party.

Chandra Shekhar started his parliamentary career as a member of parliament in Upper house ie.(Rajya Sabha) from Uttar Pradesh on the ticket of Praja Socialist party in 1962.

Joining Indian National Congress:-

He joined the Indian National Congress in 1964. With the help of his leadership skills, he soon became a prominent leader of Indian National Congress and was appointed as the General Secretary of Indian National Congress in parliament. His dedication and commitment for the upliftment of the downtrodden communities made him more popular among the public. He was committed for rapid socio-economic change in India. He started a weekly titled young Indian in 1969 from New Delhi to communicate with the masses on socio-political issues. During his days in Indian National Congress, he began to be known as " Young Turk ".

Politics of Ideology:-

In 1967 he was general secretary of the congress parliamentary and also elected to the central election committee against the wishes of Mrs. Indira Gandhi (the prime minister of that time). On different occasions he ferociously criticized Mrs. Indira Gandhi for her policies. This led to his arrest during the emergency days. Chandra Shekhar along with many other leaders were arrested under the maintenance of internal security act (MISA 1975). He spent

19 months in prison during the emergency. He penned his popular jail Dairy from jail. He wrote on his arrest “ This gave me peace of mind It was not possible for me to agree with all that was happening around me.

How could one claim that the country’s future rested on one single individual? So much of sycophancy and such slavishness are beyond me.” He was always against the politics of personalities and power that Mrs. Indira Gandhi used to believe in. He always preferred the politics of ideology as the best instrument for Socio-economic change. He was always in favour of the politics of ideology and persistent campaign for rapid social changes that brought him in confrontation with Mrs. Indira Gandhi .After getting released from jail, he was shifted to New Delhi on December 30,1976 and was kept under house arrest. He joined Janta party in 1977 and become the president of the party. Later he was elected to the 6th Lok Sabha in the year 1977.

Bharat Yatra :-

While being the party president of Janta party he wanted to know the problems of the people specially in the rural areas of India.To get connected from the masses he undertook a padyatra (which is later known as Bharat yatra) from Kanyakumari (Tamilnadu) to Rajghat in Delhi. During this padyatra he covered the total distance of 4260 kms from January 6, 1983 to June 25, 1983 and come to know the root problems being faced by the masses in rural area alongwith social inequalities and disparities. He established 15 Bharat yatra centres in various states off India to train social and political workers for man education and grass root work. At the end of Bharat yatra Chandra shekhar decided to work on the basic five problems of the people living in the villages

1. Drinking water for every village.
2. Health facilities and immediate steps to prevent malnutrition among children and pregnant women.
3. Education for all.
4. Problems of Adivasis & Harijans.
5. Communal Harmony.

After Bharat Yatra Chandra Shekhar was more connected with masses of India and become very much famous among them.

As a Parliamentarian :-

Chandra Shekhar started his parliamentarian career from Rajya Sabha (the Upper house). He continued to be a member of Rajya sabha for three terms from 1962-1977. After this he was elected as a member of sixth Lok Sabha General election to fourteen Lok Sabha General election except eight lok sabha that was the only election he lost against Jagannath Chaudhary of congress in 1984. He continued to be member of parliament for more than four decades.

As a true parliamentarian Chandra Shekhar always stood against corruption, social inequalities and irregularities in central excise duties and in other sectors. He kept on putting the problems of people in parliament. As a result he was honoured with the outstanding parliamentarian award by the honorable president of India (Dr. Shankar Dayal Sharma) in 1995.

As the prime minister of India :-

There was a great political turmoil and uncertainty in the national politics in 1990 when Vishwanath pratap singh resigned from the post of prime minister of India. Chandra Shekhar took the challenge of normalizing national politics for putting democracy back on rails. He took initiation to form government after taking support of other political parties. The Indian National Congress being led by the former prime minister of India Rajeev Gandhi extended its outside support to Chandra Shekhar’ to form government.

Chandra Shekhar was sworn in as the prime minister of India on 10 November 1990. He

won the heart of the poor and middle class people with his fearless leadership, visionary actions and commitment to work for the social welfare and progress.

As the prime minister of India he attended the 5th 'SAARC' summit on 21 June 1991 in Male (the capital of Maldives) where he urged for peace in the sub continent and he also emphasized on how to improve trade deficits, increasing external debts and business among participating countries. Chandra Shekhar could not hold the post of the prime minister for long time because Indian National Congress withdrew its support on 6 march 1991, accusing the PM of spying on Rajeev Gandhi the veteran congress leader and former prime minister of India. Chandra Shekhar' government lost majority in parliament. The Janta Dal (socialist) being led by Chandra Shekhar was left with 60 MPs and he did not compromise with his nature of politics and resigned in March 1991, however he was asked by the president to work as an acting PM till the tenth Lok Sabha election. He continued to be the acting PM of India till 21 June 1991 when Narsimbha Rao was sworn in as the prime minister of India. He was then re-elected to the Lok Sabha from Ballia constituency in tenth Lok Sabha in 1991. Chandra Shekhar was 8th prime minister of India. He was in the office of PM from 10 November 1990 to 21 June 1991.

Last Journey:-

Chandra shekhar lost his battle with cancer and passed away in New Delhi on 8th of July 2007 at the age of 80. The entire nation was in great grief. The president, prime minister, cabinet minister, leaders of various political parties along with thousands of his beloved followers attended his funeral ceremony.

rahulgaya006@gmail.com 9934432827



Rukhmabai Raut (1864-1955)

Jyoti Yadav, Research Scholar,
University of Lucknow.

Introduction:We have found many sources regarding the condition of women in India since ancient times. In the Vedic period (Rig Vedic and Post Vedic), the condition of women was probably good but they did not have political and property rights.¹ Similarly, Buddha always looked at women with suspicion. Even in medieval and colonial India, no substantial progress was seen in the status of women. In colonial India, all those customs and traditions of the society could be seen, which were tantamount to torture for women. As a result, there were many social reformers who took effective steps to eliminate these evils. Rukhmabai was influenced by these social reformers and the reforms going on in the immediate society. Therefore, Rukhmabai Raut took a commendable step to save herself from these evils, without caring for the people.

Earlier Life:She was born on 22nd November 1864 to parents Janardan Pandurg and Jayantibai."belonged to the sutar (carpenter) caste",At the age of two, she experienced the loss of her father.² Socially degraded, the Suttar caste was possibly not traditionally bound by some of the Brahmanical marriage norms. Indeed, Jayantibai remarried at a time when widow remarriage, though legally permissible following the Hindu Widows' Remarriage Act 1856, continued to be socially stigmatized within the upper castes.³ So,Jayantibai remarried Dr. Sakharam Arjun Raut, a social worker and an eminent physician and professor of botany at the Grant Medical College in Bombay. He was a liberal reformist and believed strongly in women's education, which allowed young Rukhma to interact with great reformists of that time, especially people like Ramabai Ranade and Behramji Malabari.⁴

In 1874, at the age of eleven, Rukhmabai was married off to Dadaji Bhikaji, a nineteen-year-old boy who was a cousin of her step-father.⁵ After 9 years of marriage, Bhikaji asked Rukma Bhai to live with her but Rukma Bhai was an educated intelligent and forward thinking women.So,Rukhmabai refuse to live with Dadaji.Rukma Bai's stepfather also supported her in this step. Rukhmabai's stepfather did not send her to live with Dadaji Bhikaji immediately upon attaining puberty⁶

Struggle for Divorce: Rukhmabai vs Dadaji Bhikaji case: In 1884, Dadaji instituted a suit for restitution of conjugal rights. At the time, a decree for restitution of conjugal rights was enforceable and its violation was punishable with imprisonment. Rukhmabai opposed the petition on the grounds of social,economic and personal incompatibility with Dadaji.⁷ She also asserted that she

had not ‘arrived at years of discretion’ at the time of her marriage and therefore she could not be bound by it.⁸As the debate around her case and the issues it raised raged around the city, Rukhmabai published two letters to the editor in the daily *The Times of India* under the pseudonym “A Hindu Lady”. In these remarkable letters Rukhmabai proved herself to be not only a resolute rebel but also an accomplished polemicist: challenging social conventions with arguments about gender abuses in Hindu society, as well as with impassioned emotional pleas against child marriage, widowhood, illiteracy, and domestic cruelty. In particular she stressed upon the ways in which early marriage restricted the young bride’s access to education and her mental and physical freedom, and urged the government to raise the minimum age of marriage to fifteen for girls and twenty for men.⁹

The case was heard at the Bombay High Court in which Justice Robert Hill Phiney gave the judgment in her favor acknowledging that Rukhmabai was a child and she was married off in her infancy, which made her helpless, and thus the marriage could not be forced.¹⁰ Hostile reactions to Rukhmabai and to Phiney’s verdict came from all over the country. The earliest and, perhaps, the best argued critique appeared in the *Native Opinion*. This Anglo-Marathi weekly from Bombay was controlled by Vishwanath Narayan Mandlik (1833-89), a leading authority on shastric and Anglo-Hindu laws. His long introduction to the *Vyavahar Mayukha*, which he translated into English, and the scholarly appendices at its end, bear witness to his understanding of shastric and customary law.¹¹ This verdict brought criticisms from a large section of society who claimed it to be going against Hindu law, and thus, in 1886, the case came up for retrial. The case started a new debate on the Hindu law and traditions vs. English law in society. On 4th March 1887, Justice Farran ordered Rukhmabai to live with her husband or accept imprisonment for six months. Rukhmabai thought that this judgment was unfair. However, she said that it was better to live in jail for six months than with her husband. Several newspapers and leaders of that time blamed English education for influencing the minds of the Indian women, and they saw it as a threat to Hinduism.¹²

Rukhmabai testimony

Rukhmabai Raut was a brave lady. Rukhmabai didn’t give up the fight and appealed to Queen Victoria, in her own words: “This 50th year of our Queen’s accession to the most renowned throne is the jubilee year in which every town and every village in her dominions is to show their loyalty in the best way it can... At such an unusual occasion will the mother listen to an earnest appeal from her millions of Indian daughters and grant them a few simple words of change into the book on Hindu law- that ‘marriages performed before the respective ages of 20 in boys and 15 in girls shall not be considered legal in the eyes of the law if brought before the Court.’ This jubilee year must leave some expression on us Hindu women...” (*Daily Telegraph* 1887). This noteworthy appeal led to the court’s final order being overturned by Queen Victoria. Bhikaji was paid two thousand rupees for settlement, and the marriage was annulled.¹³

Hence, Rukhmabai Raut was the first woman in India who legally divorced her husband Bhikaji. For this she had to face criticism from the society but Rukhmabai did not give up.

Education: become a India's first practicing lady doctor:

Rukhmabai had a dream of becoming a doctor since childhood, so after divorcing her husband, she continued her studies. He had to face many difficulties even during his education. She faced all difficulties and became the first practicing woman doctor of India.

With the support of several people and activists like Edith Pechey, Shivajirao Holkar, Eva McLaren, Walter McLaren and Adelaide Manning, The Rukhmabai Defence Committee was established to help gather funds towards supporting her cause of continuing education (Chandra 1992, 189). After this, in 1889, Rukhmabai set sail to study medicine at the London School of Medicine for Women in England. She completed a five year degree course in medicine, and in 1894, received the Doctor of Medicine and obtained extra credentials from other educational centers in Edinburgh, Glasgow, and Brussels. After returning to India in 1895, she began working as a Chief Medical Officer at the Women's Hospital in Surat. She treated the women at the hospital and continued to work towards women's emancipation from child marriage. In 1918, she worked at the Zenana State Hospital in Rajkot, where she established the Red Cross Society. In 1929, she retired and settled in Bombay in the Gamdevi area at a bungalow known as Raut's Bungalow.¹⁴

Thoughts of rukhmabai Raut

Rukhmabai Raut's thoughts were like weapons for him. Rukhmabai raut had criticized all the bad customs of India's patriarchal society, which made women inferior in the society. The idea of Rukhmabai will be more appropriate to know through her letters:

She wrote—

Letter 1

"Sir, I am one of those unfortunate Hindu women, whose hard lot it is to suffer the unnameable miseries entailed by the custom of early marriage. This wicked practice has destroyed the happiness of my life. It comes between me and that thing which I prize above all others—study and mental cultivation. Without the least fault of mine I am doomed to seclusion; every aspiration of mine to rise above my ignorant sisters is looked upon with suspicion, and is interpreted in the most uncharitable manner".¹⁵

Letter 2

“The general apathy towards social improvements which characterizes our people has been telling upon the whole community, but tells most heavily upon the female sex. Hindu social customs do not entail on men half the difficulties which they entail upon women. Excepting the two principal difficulties resulting from infant marriage, they enjoy full mental and physical freedom. Religion or social custom does not, in any way, interfere with their liberty. Marriage does not interpose any insuperable obstacle in the course of their studies. They can marry not only a second wife, on the death of the first, but have the right of marrying any number of wives at one and the same time, or any time they please. If married early, they are not called upon to go to the house and to submit to the tender mercies of a mother-in-law; nor is any restraint put upon their actions because of their marriage. But the case with women is the very reverse of this. If the girl is married at the age of eight (as most of them are), her parents are at liberty to send her to school till she is ten years old; but, if they wish to continue her at school longer, they must obtain the express permission of the

girl's mother-in-law. But even in these advanced times, and even in Bombay—the chief center of civilization—how many mothers-in-law are there who send their daughters to school after they are ten years old!”

Extracted from a letter written by Rukhmabai to the Times of India on 26 June 1885.¹⁶

Impact of Case, Age of consent act 1891:

Child marriage was very common in India although the possibility of birth of sickly children and the chance of becoming widow at tender age were some of the severe consequences attached to it. The British rulers were chary on dealing with a question that touched Indian society and religion. The Government, however, agreed to amend Sec. 375 of the Indian Penal Code by raising a girl's age of consent for consummation of marriage from ten to twelve so that the parents would be indirectly pressurized to stop child marriage.¹⁷

It is useful to bear in mind that infant marriage and enforced widowhood are customs which stand to each other almost in the relation of cause and effect. As a matter of fact, marriage is generally forced upon the girl at a time when she cannot realize its privileges and its responsibilities. And when she loses her husband, she has perpetual widowhood forced upon her. It is needful also to know that to every three women in the country one is shown to be a widow. And the Hindu widow is not only unfortunate in herself but "inauspicious" to all around her. She is shunned, neglected, at times ill-treated.¹⁸

Therefore, on the basis of the presented description, it can be said that child marriage was a big curse for girls. It was a very commendable step for Rukhmabai Raut to fight the society at that time and deny her child marriage. Rukhmabai case This case influenced the British Government to pass the Age of Consent Act of 1891, which increased the minimum age of marriage from ten to twelve for girls.¹⁹

Conclusion:

In the Indian history of the 19th century, even though there were many male social reformers who made people aware of the bad condition of women, there were very few women social reformers who were able to think more about their class and make people aware of their condition. Therefore, Rukhmabai Raut is counted among those women of colonial Indian history who immediately attacked the evil practices of the patriarchal society with her thoughts. The way she took steps for his marriage and education without caring about the criticism of the society was really commendable at that time. Therefore, Rukhmabai Raut will always hold an important place in Indian history through her thoughts and actions. Her biography reveals the patriarchal society of India at that time, the status of women and the legal steps taken by the British government to eliminate the evil practices and bad customs of India.

Reference

1. Srivastava, k.c. "History of Ancient India", part-1. United book depot, Allahabad. 2018. p.no.-90.
2. Louiza Rodrigues and team. "Rukhmabai Raut (1864 1955)". Mumbai legacy project D Ward. p.no.-1.
3. *ibid.*

4. *ibid.*
5. in the supreme court of india civil original jurisdiction.writ petition (c) no.1237 of 2017.2024. p.no.-20.
6. *ibid.*
7. *ibid*; 21.
8. Sudhir Chandra."Enslaved Daughters: Colonialism, Law and Women's Rights".Oxford University Press, 2nded.2008.Ch. 1.
9. Sharma kanina,Lammasniemi Laura and Sarkar tanika."Dadaji Bhikaji v Rukhmabai (1886) ILR 10 Bom 301: rewriting consent and conjugal relations in colonial India".2021.vol,5.No.,3.Indian Law Review.Routledge. p.no.-270.
10. louiza Rodrigues and team."Rukhmabai Raut (1864-1955)".mumbai legacy project,D Ward. p.no.-1.
11. chandra sudhir."Rukhmabai debate over woman's right to her person".vol.31. no.44. economic and political weekly.(jstor).1996.p.no.2940.
12. louiza Rodrigues and team."Rukhmabai Raut (1864-1955)".mumbai legacy project,D Ward. p.no.-1.
13. Testimony to the Government of India.Daily Telegraph,15 July 1887.p.no.-2.
14. louiza Rodrigues and team."Rukhmabai Raut (1864-1955)".mumbai legacy project,D Ward. p.no.-2
15. in the supreme court of india civil original jurisdiction,writ petition (c) no.1237 of 2017.part 1.2024. p.no.6.
16. *ibid*; part 4, p.no.-23.
17. chatterjee,k Arti."Age of Consent (Amendment) act,1891:Bangali reaction to a penal legislation with a social reform bias.vol,40.Indian History congress.(jstor).1979. p.no. 737.
18. gidumal,dayaram."The Life and life work of Behramji M. Malabari".Bombay,Education society press.1888, p.no.-81.
19. louiza Rodrigues and team."Rukhmabai Raut (1864-1955).mumbai legacy project,D Ward. p.no.-1

M.No. 8953717959

Gmail:jy7848930@gmail.com



"Rani Durgavati: The Warrior Queen of Gondwana"

Samiksha Bhadoria,
MA history, UGC NET

INTRODUCTION

Rani Durgavati stands as an iconic figure in Indian history, celebrated for her indomitable spirit, valor, and dedication to her people. Born into the illustrious Chandel dynasty, known for its artistic and cultural contributions, she inherited a legacy rich in bravery and leadership. Her marriage to Dalpat Shah of the Gond dynasty was more than a union of two noble houses; it formed a strategic alliance that would later empower her to confront formidable adversaries with remarkable courage. After Dalpat Shah's untimely death, Rani Durgavati took on the mantle of leadership as the regent of the Gondwana kingdom, where she proved herself a capable and compassionate ruler, committed to the welfare and prosperity of her subjects.

Her reign was marked by a commitment to both governance and military prowess, as she defended her kingdom against external threats, including the Mughal forces of Emperor Akbar. The pinnacle of her legacy was her courageous resistance in the Battle of Narrai in 1564, where, outnumbered and facing a powerful Mughal army led by Asaf Khan, she chose to fight to the death rather than surrender. Her story endures as a symbol of resistance and self-respect, her legacy enshrined in regional folklore, commemorative institutions, and cultural traditions. This passage explores the life, accomplishments, and enduring impact of Rani Durgavati, whose leadership and sacrifice continue to inspire generations as a timeless emblem of courage, resilience, and sovereignty.

LIFE EVENTS

Rani Durgavati was born on October 5, 1524, in the renowned Chandel dynasty, a lineage celebrated for its valor, artistic achievements, and cultural contributions. She was born in the majestic Kalanjar Fort, located in Banda, Uttar Pradesh, a stronghold of her family and a place with a long history of resistance against invaders. Her father, Keerat Rai, was a respected Chandel ruler, and through him, she inherited a legacy of courage and leadership.

The Chandel dynasty is famous in Indian history, especially for the accomplishments of King Vidyadhar, an ancestor of Rani Durgavati. Vidyadhar is known for resisting invasions by Mahmud of Ghazni, and his devotion to art and culture is immortalized in the intricate temples of Khajuraho and the grand Kalanjar Fort. Born into this heritage, Rani Durgavati grew up with a strong sense of pride in her lineage, deeply influenced by its values of bravery, honor, and patronage of the arts. From a young age, Rani Durgavati showed an independent spirit, courage, and leadership, qualities that would define her reign and make her one of India's iconic warrior queens.

Her education and early training were rigorous, emphasizing both administrative wisdom and martial prowess. From a young age, she was trained in horseback riding, swordsmanship, and archery—skills traditionally reserved for male heirs in many royal families but encouraged in the Chandel dynasty to cultivate capable leaders. These early experiences instilled in her a strategic mind and a warrior spirit. Additionally, she received education in governance and diplomacy, enabling her to handle both the battlefield and the throne with equal dexterity.

Her values and skills were further reinforced by her marriage to Dalpat Shah, the eldest son of Sangram Shah of the Gond dynasty, which united the Chandel and Gond kingdoms and opened new avenues for Rani Durgavati’s leadership. Her background and training would later empower her to face the complexities of rule and the challenges of defending her kingdom against external threats with unwavering courage and resolve.

Year	Event
1524	Rani Durgavati was born on October 5th at Kalanjar Fort, Banda, U.P., in the family of the Chandel dynasty under Emperor Keerat Rai.
1542	Married Dalpat Shah, the eldest son of King Sangram Shah of the Gond dynasty, which fostered a close alliance between the Chandel and Gond dynasties.
1545	Gave birth to her son, Vir Narayan.
1550	Dalpat Shah passed away. Rani Durgavati took over the administration of the Gond kingdom, aided by her ministers Adhar Kayastha and Man Thakur.
1556	Successfully repelled an invasion by Baj Bahadur of Malwa, enhancing her reputation as a skilled military leader.
1562	Akbar annexed Malwa, bringing Rani Durgavati’s kingdom into proximity with the Mughal Empire.
1564 (June 24)	Faced a Mughal invasion led by Asaf Khan. After a valiant defense, she chose to end her life rather than surrender. Her death is commemorated as "Balidan Diwas."
1983	Madhya Pradesh government renamed the University of Jabalpur as Rani Durgavati Vishwavidyalaya in her honor.
1988	The Government of India issued a postal stamp on June 24, commemorating her sacrifice.
2018	The Indian Coast Guard commissioned the 3rd Inshore Patrol Vessel, ‘ICGS Rani Durgavati,’ at Vishakapatnam.

MARRIAGE WITH DALPAT SHAH

Rani Durgavati’s marriage to Dalpat Shah in 1542 united the Chandel and Gond dynasties, forming a powerful alliance between the two regions. As the daughter of the Chandel king Keerat Rai of Kalinjar, Durgavati’s union with Dalpat Shah, the eldest son of Gond king Sangram Shah, was a remarkable event, especially as marriages between the Rajputs and Gonds were rare. Some accounts suggest that this alliance was politically motivated, while others say that Durgavati chose Dalpat Shah herself, impressed by his courage against the Mughals. When her family and spiritual mentor questioned the match, she defended her choice, asserting, “He might be a Gond by birth, but his deeds make him a Kshatriya.”

This marriage did more than unite two noble families; it fortified the bond between the Chandel and Gond kingdoms, creating a strong alliance against external threats. This solidarity proved valuable, as the Gond rulers supported Keerat Rai in his defense against Sher Shah Suri’s invasion. The couple’s son, Vir Narayan, was born in 1545, just a few years

before Dalpat Shah's death in 1550. His passing, likely due to illness, left Durgavati to rule as regent for their young son.

Taking on this role, Rani Durgavati led the kingdom with wisdom and strength, establishing herself as a capable leader during a period of external threats, particularly from the Mughal Empire. Her leadership during this time marked a significant turning point for Gondwana, setting the stage for her eventual renown as a courageous and skilled queen who defended her people and territory with unflinching resolve.

REIGN OF RANI DURGA VATI

Rani Durgavati's marriage to Dalpat Shah, the heir of the Gond dynasty, indeed marked a significant union that brought the Chandela and Gond dynasties together. This alliance strengthened regional ties and allowed Rani Durgavati to emerge as a prominent figure in governance. Her transition to ruler following Dalpat Shah's untimely death in 1550 was marked by resilience and a commitment to the welfare and security of her people, as she assumed regency for her young son, Vir Narayan. Supported by close advisors, including Adhar Kayastha and Man Thakur, she upheld the kingdom's administration with exceptional skill, ensuring stability and growth.

Rani Durgavati's strategic choice to move the kingdom's capital from Singorgarh to Chauragarh—a fort situated on a challenging peak in the Satpura range—was a decisive move that underscored her strategic acumen and commitment to her kingdom's security. Chauragarh's formidable location helped fortify the kingdom, and it remained the Garha capital until 1634.

Culturally, Rani Durgavati's reign was also enriched by the presence of intellectuals and spiritual figures. Her support of Maithil scholars like Mahesh Thakur and his family contributed to the intellectual landscape of Garha. These scholars, including Padmanabh Bhattacharya, undertook projects and left enduring legacies like Thakur Tal, Tirohtia Tal, and Maheshpur village, which continue to reflect the contributions of the Maithil Brahmins in Garha. The kingdom's patronage of scholars exemplified its emphasis on cultural and educational growth.

The visit of Vitthalanath Ji, son of the saint Shri Vallabhacharya and leader of the Vallabh sect, further highlights Rani Durgavati's commitment to religious tolerance and her patronage of spiritual pursuits. Her donation of 108 villages to him for distribution among the Telang Brahmins is an example of her charitable and inclusive approach. This religious harmony fostered a rich cultural environment, enhancing her kingdom's prosperity.

Her visionary policies in administration, particularly in the areas of welfare and agriculture, were aimed at improving the lives of her people. The construction of tanks and irrigation systems facilitated agricultural productivity and underscored her dedication to public welfare. Rani Durgavati's tenure exemplified just and benevolent governance, and her legacy of cultural patronage, agricultural advancement, and commitment to her people's welfare continues to inspire admiration for her rule over Garha Katanga.

MILITARY CONTRIBUTION

Rani Durgavati's military contributions are celebrated in history, not just for her role as a ruler but for her remarkable skills and bravery as a warrior. She possessed tactical expertise in various forms of warfare, including archery, swordsmanship, and horseback riding, which she utilized effectively on the battlefield. Her leadership and strategic vision inspired loyalty in her troops and won her respect from allies and foes alike.

Several events from the time of Rani Durgavati are recorded in history. **Abul Fazl writes that Rani's struggle was against the Miyana Afghans**, in which she emerged victorious. After this, many Miyana Afghans joined Rani's army. For example, Shams Khan Miyana was an important military officer in Rani's army.

Victory Against Baz Bahadur: One significant victory that underscored her military prowess was against Baz Bahadur, the ruler of Malwa. Baz Bahadur, a celebrated music lover, ascended the throne of Malwa after his father Shujaat Khan's death in 1556. Soon after his succession, he attempted to conquer Garha. However, Rani Durgavati repelled his forces, and her triumph over the ruler of Malwa brought her fame, drawing admiration throughout the region. This victory likely attracted the attention of Emperor Akbar, as Malwa was later annexed into the Mughal Empire in 1562, creating a direct boundary between her kingdom and the Mughals.

Mughal Confrontation and the Battle of Narrai (1564): The Garha kingdom's prosperity caught the eye of Asaf Khan, a high-ranking Mughal officer and administrator of the nearby region of Karda-Manikpur. He persuaded Akbar to allow an invasion, which the emperor approved. In preparation, Asaf Khan gathered a force of ten thousand cavalry and enlisted numerous regional chiefs and commanders. Abu'l-Fazl writes that even when Asaf Khan reached the border of Garha, Rani Durgavati was not concerned because she had confidence in the strength of her army, her courage, and her abilities. Rani Durgavati remained confident, trusting her army and her combat skills to defend her kingdom. By the royal command, Muhib Ali Khan, Muhammad Murad Khan, Wazir Khan, Babai Kakshal, Nazir Bahadur, Ak Muhammad, and many other officials from the region joined Asaf Khan's force. Initially, Asaf Khan moved towards Damoh. By the time he reached Damoh, the number of his cavalry had significantly increased due to the joining of several small chiefs. Rani Durgavati met the invaders in the Narrai Valley, a strategic location flanked by the Narmada and Gaur rivers, which offered some defensive advantages.

As the battle raged on, Rani Durgavati was wounded by two arrows, one to her neck and another to her eye. Despite her injuries, she continued to fight, rallying her soldiers and refusing to surrender. At a pivotal moment, she realized that defeat was inevitable. Unwilling to be captured by the enemy, she chose to sacrifice her life on the battlefield. In a final act of defiance, she drew her sword and ended her life, preserving her honor and legacy.

The Battle of Narrai and her ultimate sacrifice on June 24, 1564, made Rani Durgavati a symbol of resistance and valor in Indian history. Her courage and leadership in the face of impossible odds have continued to inspire generations, marking her legacy as one of India's greatest warrior queens.

The Battle of Narrai and Rani Durgavati's sacrifice became a powerful symbol of resistance. Her courage in defending her kingdom against a vastly superior force and her refusal to bow to imperial might resonated throughout history. Rani Durgavati's legacy has continued to inspire admiration, embodying the values of self-respect, patriotism, and indomitable spirit in the face of adversity. Her story remains a tribute to the bravery and resilience of India's warrior queens and a reminder of the valor displayed by those who resisted the Mughals' imperial ambitions.

LEGACY

In recognition of her legacy, numerous memorials and institutions have been established in her honor. One prominent example is Rani Durgavati University in Jabalpur, established to honor her memory and serve as a center of higher education in Madhya Pradesh. The Government of India also issued a commemorative postal stamp on June 24, 1988, marking her martyrdom anniversary, celebrated as "Balidan Diwas" (Sacrifice Day). These commemorations ensure that her spirit and contributions continue to be acknowledged on a national scale.

Rani Durgavati's influence extends deeply into regional culture, where she is celebrated in folklore, literature, and art. Folk songs, poems, and ballads recount her heroic deeds and sacrifices, making her story an integral part of the cultural tapestry of central India, especially in Madhya Pradesh. The region's oral traditions and local literature often portray her as a

fierce protector of her people and a noble ruler devoted to justice. Additionally, her story has inspired visual art and stage performances that celebrate her life and bravery, ensuring that her legacy is preserved and revered in popular culture.

Through these memorials, stories, and artistic portrayals, Rani Durgavati remains a powerful figure and an enduring symbol of courage and resistance, embodying the timeless spirit of defending one's land and people with unbreakable resolve.

CONCLUSION

Rani Durgavati's contributions to Indian history are marked by her exceptional courage, resilience, and dedication to her people. As the queen of Gondwana, she ruled with a strong focus on the welfare and prosperity of her subjects, enhancing agricultural practices, building water reservoirs, and promoting local arts and culture. Her governance was characterized by both compassion and strength, creating a period of peace and prosperity in her kingdom.

Her legacy as a warrior queen is profound; she stood fearlessly in the face of powerful adversaries, particularly the Mughal forces under Emperor Akbar. In a time when few women held positions of power, she resisted foreign invasion and fought valiantly to defend her land. Her final stand against the Mughal army, where she chose to sacrifice her life rather than surrender, remains an enduring symbol of self-respect, bravery, and devotion to her people.

Today, Rani Durgavati is celebrated as one of India's greatest heroines, embodying the spirit of resistance and patriotism. Her life and legacy continue to inspire generations, commemorated in cultural memory and history as a beacon of courage and dedication to the ideals of **sovereignty and self-respect**.

REFERENCES

1. **Book:** Datta . Saurav Ranjan . Goddesses of Fury: History's Most Daring Queens . The Little Booktique Hub . 978-93-93209-19-1 . 151 . en.
2. **Book:** Gupta . Archana Garodia . The Women Who Ruled India: Leaders. Warriors. Icons. . 20 April 2019 . Hachette India . 978-93-5195-153-7 . en.
3. **Book:** Sengupta . Nandini . Rani Durgawati: The Forgotten Life of a Warrior Queen . 25 November 2022 . Penguin Random House India Private Limited . 978-93-5492-829-1 . en..
4. **Book:** *Rani Durgavati: The Warrior Queen of Gondwana* by Pushpa Jain – This book provides an in-depth look into the life of Rani Durgavati, her battles, and her legacy.
5. **Book:** *History of the Gond Rajas in Central India* by M.A. Sherring – This historical account offers context about the Gond dynasty and Rani Durgavati's era.
6. **Book:** *Akbarnama* by Abu'l-Fazl – Although written from a Mughal perspective, this account contains insights into the conflict between the Mughals and Rani Durgavati.
7. **Madhya Pradesh Government Website:** The Madhya Pradesh State Government honors Rani Durgavati annually on "Balidan Diwas" and provides insights into her influence on the region's heritage and culture.
8. **Rani Durgavati University (Jabalpur) Archives** – This university, named in her honor, often publishes materials and research on her contributions.
9. **National Digital Library of India:** Hosts articles and books related to Rani Durgavati's



Dr. Muhammad Allama Iqbal – Conversation artist

Mohammad Salman, M.A. in History,
Aligarh Muslim University, Aligarh

Introduction

The famous scholar and historian, Dr. Allama Iqbal, was born on November 9, 1877, in Sialkot, Punjab (now in Pakistan). His ancestors were Brahmins. Later, his family embraced Islam. Iqbal belonged to a traditional Brahmin family, yet he was well-versed in Persian, Arabic, and Islamic philosophy. He obtained his education under eminent scholars, and his personality reflected a blend of traditional and modern Islamic values.

Iqbal's personality and style of debate continue to be admired. His courteous approach and respect for differing viewpoints are seen as exemplars even today. His life was filled with both ups and downs, and despite hardships, he remained dedicated to scholarship.

Literary Style of Allama Iqbal

Allama Muhammad Iqbal started his literary career from an early age. His writings are known for their depth and clarity, blending Eastern and Western perspectives. His prose is not only engaging but also carries profound reflections on life, death, truth, and the ultimate principles of human existence, which remains relevant in contemporary times. Iqbal began his literary journey early in life, displaying an innate ability to weave philosophical depth into his prose. His works often carry a blend of Eastern traditionalism and Western analytical rigor, making them both accessible and profound. Through his careful use of language and thoughtful reflections, Iqbal's work resonates with themes of existence, morality, and the human journey, maintaining a timeless relevance.

Iqbal's Views on Khudi and Be-Khudi

Iqbal's foundation is not just limited to his capabilities, but he also talks about the new generation. His creations, "Khudi" (selfhood) and "Be-Khudi" (selflessness) inspire us to embrace self-awareness. His famous creation, "Asrar-e-Khudi" (Secrets of the Self), serves as an example. In this, Iqbal has given a clear and meaningful message to the present Muslim generation to recognize their worth and foster their growth.

Social and Moral Principles on Khudi and Be-Khudi

Iqbal, in his writings, has highlighted the challenges faced by Muslim society and encouraged them to rise above their weaknesses. His poetry reflects his deep understanding and analytical thinking. Through his creations, he has attempted to build a bridge between the conservative and modern perspectives within Muslim society. His creations like "Jawaab-e-Shikwa" (Reply to the Complaint) showcase examples of progress. In "Shikwa" (Complaint), Iqbal critiques the backwardness of Muslim society, but in "Jawaab-e-Shikwa"

(Reply to the Complaint), he presents abundant examples to awaken the Muslim community and inspire them to become self-reliant.

Iqbal's Philosophical Perspective

Iqbal was not only a poet but also a great philosopher. The main aim of his philosophy was to make humans aware of their self-respect and self-identity. In his work "Bang-e-Dra," he talks about breaking the boundaries of limitations on humans. His philosophy can be seen as a bridge between traditional and modern values, viewing him as both a poet and a thinker. His poetry emphasizes that a person should have self-awareness and uses their life for the service of society and humanity.

The Depth of Iqbal's Intellectual Works and Dialogues

Iqbal's intellectual works and conversational style are excellent examples of his art. Through his Urdu, Persian, and English compositions, he extensively shared his ideas. His major works include "Bang-e-Dra," "Bal-e-Jibril," "Asrar-e-Khudi," "Rumuz-e-Bekhudi," and "Javid nama."

1. Asrar-e-Khudi (1915): In this work, Iqbal presents the principles of self-realization and self-knowledge. It encourages the reader to recognize their inner strength and self-confidence.

2. Rumuz-e-Bekhudi (1918): In this work, Iqbal emphasizes the importance of an Islamic lifestyle and community spirit. It shows that a person's existence in society is successful only when they renounce personal desires and work for the welfare of society.

Role of Allama Iqbal in the Freedom Struggle

Allama Iqbal played a significant role in the freedom struggle. Through his poetry, he tried to awaken the youth from slumber. His famous poem, "Sare Jahan Se Achha Hindustan Hamara," became the anthem of the people.

Motivated by love for his motherland, he carried out various social reforms. Iqbal, though distant from the political sphere, had a deep influence on the people. His poetry became the voice of the entire nation and filled everyone with a sense of pride and patriotism.

Though born in the land of ancient India, he remained bound by the cultural and spiritual traditions of the nation. Iqbal's writings fostered a new consciousness in the masses, and his messages inspired the youth with patriotism and a sense of duty.

It was through Allama Iqbal that we heard the stirring words of "Sare Jahan Se Achha Hindustan Hamara," which echoed the love for one's country.

"China and Arabia are ours, India is ours.

We are Muslims, and all nations are ours"

Iqbal's view on two nation theory

There is nothing orthodox about Iqbal and he never called for a Pakistan as a partitioned Muslim state in December 1930 presidential address to the All-India Muslim League

Instead, we need to read Iqbal's statements closely on that day, and uphold him as a Muslim nationalist of the time, whose political proposals called for harmony between western democracy and Islamic nationalism through an overarching concept of Islam as a cultural force within India.

It is difficult to say what specific reasons were responsible for the creation of Pakistan, but the feeling of communalism was undoubtedly a major factor behind its formation. This feeling developed among Muslims over a long period due to various reasons. It is also true that some Indian politicians contributed significantly to fostering this sense of communalism, which ultimately led to the partition of India and the creation of Pakistan.

In the creation of Pakistan, the support of the British was instrumental. The British either wanted to or knowingly encouraged the idea of a separate Pakistan among the Indian people. Thus, the formation of Pakistan became inevitable.

Pundit Jawaharlal Nehru, Mahatma Gandhi, and other Indian leaders still did not believe that the formation of Pakistan was in the interest of India. The complex socio-political factors contributing to India's partition stemmed from long-standing communal tensions and British strategies that fostered division. While Iqbal championed the need for a strong cultural identity, his vision extended beyond political boundaries, urging individuals to prioritize unity, resilience, and self-empowerment. His philosophy remains relevant in encouraging mutual respect and introspection within contemporary society.

In the Modern Context: Conversations of Iqbal

Iqbal's art of conversation was not only relevant in his own time but remains equally relevant today. His thoughts and poems, like Tarana-e-Hindi ("Better than the entire world"), are a part of India's cultural heritage and continue to be a source of inspiration for the youth. Iqbal's dialogues were not limited to personal and religious topics; he established profound discourse on cultural and national issues as well.

Conclusion

Allama Iqbal can rightly be called an artist of conversation. His poetry, philosophy, and thoughts embody a dialogue that addresses issues of society, religion, and humanity even today. Iqbal's conversational art is reflected in his words, which inspire readers to think, understand, and self-reflect. His works serve as a valuable heritage for future generations and work to bring awareness and positive change in society. Therefore, understanding Iqbal as an "artist of conversation" is the most appropriate way to grasp the depth of his literature, philosophy, and vision.

Bibliography

1. Nehru, Jawaharlal Discovery of India
2. Shukla, Dr. Murarilal Tilak ke Patra, Motilal Banarasidas Book House, Prayagraj
3. Shukla, Dr. Murarilal BAL Gangadhar Tilak, Motilal Banarasidas Book House
4. Shari'at, Akhteruddin Tilak aur Samaj, Hyderabad
5. Iqbal, Mohd. Javid Nama
6. Iqbal, Mohd Asrare Khudi
7. Ali, Shaikh Akbar Iqbal, His Poetry and Message

Mobile: 9045058706

Email: ghosi74@gmail.com



Sacred Hubs: How the Chola temples influenced the society with special reference to Rajendra Chola I's reign

Anjali Sachan, Postgraduate Student

Department of History, Christ Church College Kanpur, Uttar Pradesh-208001

I.Introduction: We find mentions about the Cholas in the literatures of third sangam. The Ashokan inscriptions, Pali text 'Mahavamsa' and the accounts of foreign writers such as Ptolemy's writings and 'Periplus of the Erythraean sea' by an unknown Alexandrian writer gives us detailed information about trade, commerce and naval expeditions of the Cholas. Katyayan has first mentioned about them. Karikal and Koccenganan were the two most prominent ruler of the Chola dynasty during 2nd and 3rd century A.D. Pattinppalai, written by Rudran Kannar tells about victories of Karikal. Uraiyr(famous for cotton textile) was his capital, made by his father Ilamchetchenni. He built ponds for the irrigation. He was the follower of Vedic religion and fond of music. Purananura, one of the eight anthologies of Ettuthokai, composed during the third sangam is the text about Koccenganan's life. Around 6th century A.D., the riots took place in South India under the leadership Kalabhras(followers of Buddhism) which eventually led to the decline of the Cholas. There was a period of darkness for the Chola dynasty until the rise of Vijayalaya Chola in the 9th century A.D. Having tired of the continuous battles with Chalukyas and Pandyas, Prithivipati I, the Pallava king took help of Aditya I, the son of Vijayalaya, which resulted into an opportunity for the rise of the Cholas again. Vijayalaya was Saivite. When Cholas came to power, they had reign only over smaller region and Tanjore, Uraiyr but Aditya's diplomacy was one of the main reason for the expansion of Cholas within 5 years over the regions of Kaveri. Parantaka I, son of Aditya I became ruler in 907 A.D., like his father, he also brought prosperity to the empire.

The word "Temple" is derived from the Latin word "Templum" meaning 'a sacred place'. People worship, perform ritual and communal activity in the temples. The temple architecture reached zenith during the Chola rulers. The Cholas took forward the legacy of the Pallavas and the Pandyas works in the field of art, mainly in temples. Agastyesvara temple is an example of the evolution of Pallavas to Cholas. Although their were constructed from rocks and the stones which was the feature of the Pallava art, the Cholas temples were different in simplicity and grandeur. Their most important achievement was the use of Bronze sculptors. The Cholas constructed temples such Siva temples like Tiruttoram- Udaiya Mahadeva by Aditya I, Koranganatha in Srinivasanallur and Agastisvara of Kiliyanur by Parantaka I, Rajrajeswaram temple at Tanjore by Rajaraj I, Brihadeswara temple at Gangaikondacholapuram by Rajendra I.

II.Objective of the Study: The objective of the study is to find about the social relevance of the temple architecture development during the Chola empire with emphasis on Gangaikondacholapuram of Rajendra Chola I's reign.

III.Methodology: The paper is based on the analytical approach and secondary sources such as books, journals, research papers and government websites.

IV.Literature Review: To study the social relevance of Chola architecture with special reference to Rajendra Chola I's reign, the researcher had gone through various books and research papers. Some of them are given below:

Sastri, K.A. Nilkanta in his book "The Colas" has talked about the early sources, literature, their rise and fall, the administration, the social life, education, detailed information about the rulers, temple built by the Cholas, economy of the Chola empire.

Nagaswami, R. in his book "Gangaikondacholapuram" has described about the formation of the city Gangaikondacholapuram by the Chola Ruler Rajendra I. There are also mentions about the architecture, sculptures and bronzes used there in the temple.

Leslie C. Orr in her book "Donors, devotees, and daughters of the God: Temple women in Medieval Tamil Nadu" has given an account in detail about the temple service by the women during that time in Tamil region of India, laying emphasis on the Devadasi system.

In the paper titled as 'Evaluation of temple architecture of Rajendra Chola' by Simran Matlani published in International Journal of Creative Research thoughts, she has told temple architecture, especially, about Brihadesvara temple.

V. Findings and Discussion of the study

By analysing the secondary sources, the researcher has found that Rajendra I was a great ruler and the temples played a significant role in social life of people.

Rajendra I

Rajendra Chola I, the great Chola ruler, was the son of Rajraja Chola and was chosen heir by his father between March 27th and July 7th, 1012A.D. He jointly ruled with his father for 4 years and after his father's death, he became ruler in 1016A.D. He was a very efficient ruler, fought many battles and won almost all of them. Rajendra's Tamil Prashasti tells about his reign. Chola inscriptions are evidence of his win over Ceylon. Naval power grew tremendously during his reign. He established a Vedic College and also sent his ambassadors to China in 1016 A.D. and 1033 A.D. Around 1000years before, Senguttuvan, the Chera ruler, had marched towards the Himalayas to bring a stone for carving the image Goddess Pattini, he succeeded in his mission but was opposed by two Northern rulers with whom he had to fight. We find mentions about this event in Silppadhikaram. But Rajendra Chola's expedition to Bengal was an important landmark. According to R.D. Banerjee, "the invasion of the great Southern conqueror, Rajendra Chola I, seems to have left a permanent mark in Bengal. Some obscure Karnata chief seems to have followed Rajendra and settled in West Bengal. From him was descended Samantsena, who is generally taken to be the founder of Sena dynasty". For the celebration of this victory he conferred the title "Gangaikond Chola" means 'The Chola who conquered the Ganga' and founded the city 'Gangaikondacholapuram', his new capital. It was their capital for about 256years. His most important temple architect is described below:

BRIHADISVARA TEMPLE AT GANGAIKONDCHOLAPURAM

Percy Brown called it "the female counterpart of Tanjore". It is the masterpiece of Dravidian style, also known as Gangaikondacholisvarar (present day in the Ariyalur region of Tamil Nadu). Dravidian style is also known as South Indian style(The temples in Dravidian styles are rectangular and a shrine is attached to them, its main parts are Porches or Mandaps, Gopuras and Chawadis). A royal temple built by Rajendra Chola I. The temple is dedicated to Lord Shiva. The temple is carved richly with sculptures. The temple is 340 feet long and 100 feet wide, its mandapa is 175 feet long and 95 wide and garbhagriha is of 340 feet. It was constructed around 1030A.D. It has bigger Siva Linga and smaller Vimana than Tanjore temple. It is made up of carvings done on Granite stones. The depiction of Nandi, Bronze sculptures and beautiful artworks on the walls of the temple made it famous. The East entrance of the temple called as Mahaduvar which leads to the main complex. The main parts of this temple are: Dvaja Sthamba or Flag Post placed in front of the temple, the seating statue of

Nandi, Facing Towards the temple sanctum, The Lion well, the Globular Shikara, the Sri Vimana.

VI. SOCIAL RELEVANCE OF THE TEMPLE ARCHITECTURE OF THE CHOLAS

The Chola society was broadly classified into two categories: Brahmins and Non-Brahmins. People enjoyed social freedom. There was no hereditary restriction. If a person wanted to change his occupation, he was allowed to do so. The temples were great centres of learning and cultural exchange. The construction of temples in the capital cities such as Brihadeshwara at Tanjavur during Rajraja Chola and Gangaikondacholisvarar at Gangaikondacholapuram led to development of these cities. The temples play a very crucial role in a society's development. The temples contribution during the Cholas in upliftment of society is mentioned below:

1. Women in temple service: Devadasi was very old system, some scholars consider it to be originated during the Sangam Age. Devdasi was women in temple service during the Cholas. "One would bathe herself at dawn and adoring herself, go to temple and stand well in sight of the God"(Koil OLungu, p.95). It is evident from many inscriptions that they were not allowed to marry and were devoted to temple service throughout their life(V. Rangachary, ATLIMP, Vol. I, Madras, 1917: Cg 108-1, Cg.1090). Kamsutra of Vatsayan mentions that they were all adept in fine arts. There are many evidences of grants given to temples by Queens also. Hence, the condition of the women was good. They were allowed to remain unmarried devoting their life to temple service.

2. Education through temples: The education in Ancient India was totally different from today's modern education. Everyone was allowed to learn according to his/her capacity, no one was forced to learn what they don't like. The popular education was based on recitation of the national epics such as the Ramayana and the Mahabharata. The Higher education was given in the institutions attached to the temples. Cadjan leaves were used for writing manuscript placed in the libraries in temples.

3. Provider of a healthy life: Establishment of Vedic college and Ayurvedic centre by Rajendra I at the Venkatesa Perumal at Tirumukkudal as mentioned in one of his inscriptions. Temples grants were used for the development of health facilities to provide a healthy life and living. In the vedic colleges, the students were taught about herbs and medicines and ayurvedic centre was for the treatment of diseases.

4. Moral and intellectual development through temples: The temples were the centres for religious and spiritual discussions. People of different regions met each other in the temples and learned about each others' cultures. Recitations of various religious scriptures in temples made people learn their religion principles which ultimately led to a prosperous life.

VII. Conclusion

This paper highlights about the Cholas especially about Rajendra Chola I and the influence of the Cholas temples over the society. As mentioned in the findings, women were devoted to the temple service throughout their lives. The temple grants were used for medical facilities. Thus, Chola temples were not just centres for spiritual and religious practices but were a hub for education, knowledge and public welfare. Most of the Chola rulers gave patronage to temple architecture and their architecture symbolizes royalty, economic prosperity and emphasis of rulers on divinity along with social and community integration. Their temples are the most celebrated monument even today also. The temple of Thanjavur is the World Heritage Site recognized by UNESCO. This legacy highlights their significant role in bridging the spiritual with social, where the divine life met spiritual life harmoniously.

References

1. Sastri, K.A, Nilkanta The Colas, 1955 second edition
2. Nagaswami, R, Gangaikondacholapuram, 1970

3. Leslie C. Orr, 'Donors, devotees, and daughters of God: Temple women in medieval Tamil
 4. Simran Matlani, 'Evaluation of temple architecture of Rajendra Chola', in International Journal of Creative Research thoughts, ISSN No. 2320-2882, February 2024, Volume 12 issue 2
 5. <https://ariyalur.nic.in/tourist-place/gangaikonda-cholapuram/>
 6. https://www.newworldencyclopedia.org/entry/Temple#google_vignette
 7. <http://hdl.handle.net/10603/21761> Jeyanthimala, S, 'Satus of Women under the Cholas from AD 950 to AD 1070', 19/07/2013
 8. Dr. P. Selvamani, 'Architecture of the medieval Chola with reference to Rajraja I and Rajendra I', in Review of Research, ISSN: 2249-894X , UGC approved journal no. 48514, June-2019, Volume 8, Issue 9
 9. Rangarajan, G.(2019), 'A new note on Gangaikonda Cholapuram Temple', Thematics Journal of Geography, 8(10), 179-184
 10. Rakhi Jana.J.M., 'The architecture of Brihadeshwara temple- Gandaikonda Cholapuram', Pranav journal of fine arts, Issn: 2582-9513 special issue: volume 2 - issue 2
 11. Shivananda Yalala , 'A unique features of Dravidian Architecture in India: A retrospect', Res. J. Humanities Sciences, ISSN:(online)- 0975-6795, (print)-2321-5828, 2019 volume-10 issue2
 12. Dr. C. Senthamarai, 'Role of Temples during the Chola Period', International journal of Creative Research thoughts ISSN: 2320-2882, volume 12, issue 4 April 2024
 13. Anand Kapadia, 'Analysis of architectural form and elements of a Dravidian Style Temple in Chola dynasty during medieval period of Southern India', International journal of interdisciplinary Research and innovations, ISSN(online): 2348-1226, ISSN(print): 23481226, vol.6, Issue 4 October-December 2018
- Mobile No: 7985323349 Email: anjalisachan42810@gmail.com



Dayanand Saraswati and the Fight for gender equality: challenging patriarchy in colonial India

Poonam, Ph.D. Research scholar, department of history,
B.B.A. University Vidya Vihar Raebareli Road Lucknow 226025

Introduction

Gender inequality in colonial India was deeply rooted in social, religious, and political structures. Women faced restrictions in many aspects of life, including limited access to education early marriage, and societal expectations of submissiveness and dependency (Forbes, 1996). Practices like purdah (veiling), sati (widow immolation) and restrictions on widow remarriage reflected and reinforced patriarchal values, limiting women's roles to the domestic sphere (Chakravarti,1993). The colonial administration's policies often reinforced these inequalities, with the British initially choosing not to interfere with local customs (Nair,1998). However, colonial influence and emerging reform movements began to challenge some of these social norms. In the 19th century, Dayanand Saraswati (1824-1883) was a pioneering Hindu reformer and the founder of the Arya Samaj, a social-religious movement aimed at reviving Vedic traditions while advocating for progressive social reforms (Jordans, 1978). Born in Gujarat, Saraswati rejected idol worship and sought to use these ancient texts to counter regressive practices that had emerged over centuries. Through the Arya Samaj, established in 1875, he promoted education for women, widow remarriage, and a ban on child marriage, which resonated with many reformists of his time (Lal, 2008).

Gender and Patriarchy in Colonial India

In colonial India, deeply ingrained social norms and practices perpetuated gender inequality. such as child marriage, purdah (the practice of secluding women from public view), and sati (the self-immolation of widows on their husband's funeral pyre). These practices were seen as makers of family honour and purity, particularly among the upper castes, which held considerable social influence. The practice of child marriage ensured that girls remained in their domestic roles, thereby limiting their access to education and reinforcing dependency (Chakravarti,1993). Furthermore, religious interpretations often justified the subordination of women, positioning them as subordinate by certain factions, supporting these patriarchal values, restricting women's autonomy and reinforcing their perceived need for male guardianship (Kishwar,1999). British colonial rule, while imposing a new governance system and laws, initially maintained a non-interference stance on social and religious customs, thereby allowing patriarchal practices to continue unchecked (Nair1998). However, as colonial influence grew, some officials and missionaries began to view certain practices, such as Sati and child marriage, as morally objectionable. This led to limited interventions, such as the abolition of sati in 1829 and later attempts to raise the age of marriage (Mani,1989). Despite these efforts, colonial policies often had minimal impact on patriarchy, as British authorities were cautious not to interfere extensively in the socio-religious life of Indians (Sinha,1995). Moreover, early reform movements in India, including the efforts of social reformers like Raja

Ram Mohan Roy, addressed these issues but faced resistance from conservative elements within Indian Society. These reforms' s efforts were often limited in scope and acceptance, as they struggled to reconcile traditional beliefs with calls for change (Chaudhuri,2001).

Dayanand Saraswati's Vision for Women

Dayanand Saraswati firmly believed that Vedic texts advocate for the dignity and rights of all women. According to Saraswati, the Vedas upheld values of equity and respect between genders, emphasizing that women and men shared similar rights and duties in family and society (Bhargava,2016). He argued that many of the patriarchal practices observed in colonial India, such as child marriage and the restriction of women's freedoms, were later additions that deviated from the original Vedic teachings (Jordens, 1978). By promoting a return to these "pure" Vedic principles, Saraswati aimed to dismantle social practices that he viewed as distortions introduced by historical and cultural developments, particularly those that oppressed women. One of Dayanand Saraswati's core tenets was the promotion of education for women, which he saw as essential to social progress. He believed that educating women would empower them to be more active participants in society and capable of fulfilling their roles as equal partners in familial and societal duties (Lal, 2008). In line with this belief, he and the Arya Samaj advocated for schools that provided equal education opportunities for girls and boys. Additionally, Saraswati condemned practices such as child marriage and restrictions on widow remarriage, viewing them as inhumane and antithetical to the principles of justice found in the Vedas (Sharma, 2000). He argued that these practices deprived women of autonomy and limited their potential, calling instead for marriage reforms that allowed women the freedom to choose their partners and remarry if widowed. These principles formed the foundation of Saraswati's gender reform efforts, which sought to empower women within the bounds of Vedic morality, thereby challenging the prevailing patriarchal norms of his time.

Arya samaj and its Reformist Agenda

Dayanand Saraswati founded the Arya Samaj in 1875 as a reformist movement aimed at reviving and purifying Hinduism by returning to the teachings of the Vedas. He believed that many social evils, including practices that oppressed women, were later distortions of original Vedic principles (Jordens, 1978). The Arya Samaj focused on progressive reforms that challenged established norms, advocating for an egalitarian society where individuals were judged based on merit rather than caste, gender, or social background (Bhargava, 2016). Through this organization, Saraswati aimed to create a platform for social change, using Vedic teachings as a foundation for advocating for gender equality and other social reforms.

Impact on Women's Rights

Arya Samaj Revivalist has a strategic impact on women through education innovativeness such as Kanya Mahavidyalaya established in Jalandhar. Madhu Kishwar discussed in her case study." She mentioned that the Arya Samaj movement aimed to "reform" women rather than reform the social conditions that oppressed them. The organization's commitment to women's education was revolutionary in a society where female literacy was minimal. Furthermore, Arya Samaj was outspoken in its support for widow remarriage and its opposition to child marriage, both of which were practices that limited women's autonomy and life opportunities. By advocating for these reforms, Arya Samaj sought to provide women with the rights and freedoms that had been denied to them by traditional social structures.

Challenges faced by Arya Samaj

Despite its reformist agenda, Arya Samaj faced significant resistance from conservative factions within Indian society, as well as from colonial authorities who were cautious about any movement that might disrupt social stability. Traditionalists viewed Arya Samaj's advocacy for women's rights and its reinterpretation of religious texts as radical and even heretical, leading to opposition from orthodox Hindu groups (Forbes, 1996). Additionally, the colonial government, wary of any movement that could foster social unrest, often monitored Arya

Samaj's activities. Internally, the Arya Samaj also struggled with differences in opinion regarding the pace and scope of gender reforms, as some members were more conservative and reluctant to fully embrace Saraswati's progressive vision (Jordens, 1978).

Dayanand Saraswati's Strategies for challenging patriarchy

Dayanand Saraswati believed that the original Vedic texts, when interpreted correctly, advocated for an egalitarian society where men and women held equal status. He argued that later interpretations had introduced distortions, leading to regressive practices that oppressed women (Bhargava, 2016). Through his reinterpretation of the Vedas, he emphasized that ancient scriptures upheld women's dignity and rights, positioning them as intellectual and spiritual equals to men. By challenging patriarchal readings of these texts, Dayanand laid a religious foundation for gender reform, asserting that true Hinduism was incompatible with gender-based discrimination. Indu Bala talked about modernity, which, for them, involved teaching women to efficiently manage the household as dutiful daughters, selfless wives, and accountable mothers without adding extra pressure on men, representing the core of patriarchal values. Arya Samaj's initiatives in women's education were influenced by their reformist principles and broader feminist discourses of the late 19th and early 20th centuries, including ideas of gender equality and access to education for women.

The Arya Samaj established educational institutions specifically for girls, which offered them access to knowledge traditionally reserved for men (Lal, 2008). Saraswati believed that women's intellectual and spiritual capacities were equal to men's and that education would enable them to contribute meaningfully to society. Through these educational reforms, he sought to develop a generation of informed and empowered women who could challenge patriarchal norms from within society.

Impact and Legacy of Dayanand Saraswati's Work on Gender Equality

Firstly, Dayanand Saraswati and the Arya Samaj had a profound, immediate impact on societal attitudes and practices, especially in regions where the movement was active. Through Arya Samaj's initiatives, such as establishing schools for girls and promoting widow remarriage, Saraswati's ideas began to shift the perspectives of communities that engaged with the movement. The Arya Samaj's influence challenged long-standing practices like child marriage and dowry, leading to a gradual change in attitudes toward women's roles within the family and society (Bhargava, 2016). By emphasizing education and women's empowerment as part of the Hindu revival, Arya Samaj created social spaces where the traditional roles of women could be questioned and redefined, which marked a significant shift in colonial India's conservative social fabric.

The long-term legacy of Dayanand Saraswati's work continues to be visible in modern India, particularly within the ongoing struggle for gender equality. Arya Samaj's advocacy for women's rights laid an early foundation for the broader feminist and social reform movements that followed, demonstrating how indigenous frameworks could be used to challenge patriarchal practices (Forbes, 1996). Additionally, the Arya Samaj's efforts to align gender equality with Vedic teachings influenced subsequent generations of reformers, including leaders in the Indian independence movement who advocated for social reforms as part of their vision for a modern India (Lal, 2008). By emphasizing an Indian approach to social justice rooted in traditional values, Saraswati's legacy influenced both social reformers and nationalists who saw gender equality as essential to India's progress and sovereignty (Sharma, 2000). His reinterpretation of religious texts to support progressive values provided a framework that continues to inspire efforts for women's rights in India today.

Limitations of Dayanand's Approach

While Dayanand Saraswati's advocacy for women's rights was progressive for his time, his approach faced criticism for being limited to the framework of Vedic teachings. Some critics argue that his focus on Vedic principles confined his reforms to a narrow interpretation of

gender equality, which did not fully align with broader feminist ideals that advocated for women's autonomy outside of religious constraints (Forbes, 1996). By promoting reforms through the lens of Vedic scriptures, Saraswati sometimes avoided addressing systemic inequalities that were unrelated to Hindu religious practice, leading some to view his approach as selective and constrained (Bhargava, 2016). This limited focus led to criticism from those who believed that true gender equality required a secular approach that addressed both religious and non-religious dimensions of patriarchy.

Although the Arya Samaj made significant strides in promoting women's education and challenging restrictive marital practices, there were notable limitations in its reform efforts. The Arya Samaj's stance on issues like widow remarriage and child marriage was progressive, but its influence was often limited to specific regions and social groups, and these reforms were inconsistently applied across the diverse Indian society (Lal, 2008). Furthermore, while the Arya Samaj advocated for gender reforms, it did not challenge caste-based inequalities as rigorously, which limited the inclusiveness of its reforms and left certain marginalized groups of women outside its advocacy (Sharma, 2000). Additionally, internal debates within the Arya Samaj itself sometimes hindered the implementation of reforms, as more conservative members resisted Saraswati's radical interpretation of the Vedas, leading to an inconsistent application of his progressive ideals (Jordens, 1978).

Conclusion

Dayanand Saraswati's contributions to gender equality in colonial India were pioneering, as he sought to elevate the status of women through a return to what he viewed as the egalitarian principles of the Vedas. Through the Arya Samaj, he promoted educational opportunities for women, advocated for widow remarriage, and condemned practices like child marriage and dowry, aiming to reform oppressive traditions that restricted women's rights. Saraswati's approach, rooted in religious reinterpretation, was both innovative and culturally resonant, allowing his ideas to gain traction within traditional segments of Indian society. His legacy continues to influence modern feminism in India, serving as an example of how indigenous cultural frameworks can be harnessed to promote social reform. By reinterpreting tradition to challenge patriarchal norms, Saraswati's work underscores the potential of religious and cultural resources as tools for progressive change. Historical figures like Dayanand Saraswati remind contemporary gender equality movements of the power of re-envisioning tradition to achieve social justice, inspiring ongoing efforts to advance women's rights within the unique cultural contexts of India.

References:

1. Bhargava, R. (2016). *Dayanand Saraswati: Visionary of Vedic Revivalism*. New Delhi: Oxford University Press.
2. Chakravarti, U. (1993). *Gendering Caste Through a Feminist Lens*. Kolkata: Stree.
3. Chaudhuri, M. (2001). *Feminism in India*. New Delhi: Zed Books.
4. Forbes, G. (1996). *Women in Modern India*. Cambridge: Cambridge University Press.
5. Jordens, J. T. F. (1978). *Dayananda Sarasvati: His Life and Ideas*. New Delhi: Oxford University Press.
6. Kishwar, M. (1999). *Religion at the Service of Nationalism and Other Essays*. New Delhi: Oxford University Press.
7. Kishwar, M. (1986). *Arya Samaj and Women's education; Kanya Mahavidyalaya, Jalandhar* Economic and Political Weekly, pp. WS9-WS24.
8. Bala, Indu. *The Women Question and Arya Samaj*. In *Proceedings of the Indian History Congress*, vol. 63, pp. 918-925. Indian History Congress, 2002.
9. Lal, V. (2008). *The Arya Samaj and the Transformation of India*. New York: Routledge.

10. Mani, L. (1989). *Contentious Traditions: The Debate on Sati in Colonial India*. Berkeley: University of California Press.
11. Nair, J. (1998). *Women and Law in Colonial India: A Social History*. New Delhi: Kali for Women.
12. Sinha, M. (1995). *Colonial Masculinity: The 'Manly Englishman' and the 'Effeminate Bengali' in the Late 19th Century*. Manchester: Manchester University Press.
13. Sharma, A. (2000). *Hinduism and Human Rights: A Conceptual Approach*. New York: Oxford University Press.
14. Ray, R. (2002). *Fields of Protest: Women's Movements in India*. Minneapolis: University of Minnesota Press.
15. Omvedt, G. (1994). *Dalits and the Democratic Revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India*. New Delhi: Sage Publications.
16. Sangari, K., & Vaid, S. (1989). *Recasting Women: Essays in Colonial History*. New Delhi: Kali for Women.
17. Chitnis, S. (1981). *Social Reform and Modern India*. Economic and Political Weekly, 16(15), 675-678.
18. Sarkar, S. (1983). *Modern India 1885-1947*. New Delhi: Macmillan.
19. Kumar, R. (1993). *The History of Doing: An Illustrated Account of Movements for Women's Rights and Feminism in India, 1800-1990*. New Delhi: Kali for Women.
20. Gupta, P. C. (2000). *Arya Samaj and Social Reforms*. New Delhi: National Book Trust.
21. Datta, V. N. (1975). *Sati: A Historical, Social and Philosophical Enquiry into the Hindu Rite of Widow-Burning*. New Delhi: Manohar Publishers.
22. Majumdar, R. C. (1974). *History of the Freedom Movement in India*. Kolkata: Firma KLM.

Email: poonam14297@gmail.com Contact no: 8178933686



भोमट आन्दोलन का मसीहा : मोतीलाल तेजावत झाडोल क्षेत्र के विशेष संदर्भ में



दिनेश कुमार पटेल, शोधार्थी, इतिहास विभाग

मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर(राज.)

अध्यापक रा.उ.मा.वि., कितावतों का वास झाडोल(फ.) जि.उदयपुर –राजस्थान

भोमटभोमट (जिसे भूमट भी कहा जाता है) दक्षिणी राजस्थान में एक पहाड़ी और जंगली क्षेत्र है, जो उदयपुर जिले में कोटडा, झाडोल और खेरवाडा की तहसीलों के सभी या कुछ हिस्सों को कवर करता है। ब्रिटिश शासन के दौरान, इस क्षेत्र को मेवाड के पहाड़ी इलाकों के रूप में भी जाना जाता था। यह क्षेत्र की मुगलकाल के दौरान मेवाड शासकों की शरण स्थल रहा। भोमट में अधिकांश आबादी भील जनजाति की रही है।

भोमट क्षेत्र में भोमट का भील आंदोलन प्रमुख रहा। मोतीलाल तेजावत द्वारा चलाया गया एकी आंदोलन भील समुदाय की जागरूकता का उदाहरण है।

जनजातीय समुदाय

ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। सांसारिक व्यवस्थाओं में मानव को विभिन्न समूहों में विभक्त कर दिया। फलस्वरूप अगडा व पिछडा वर्ग अस्तित्व में आए। भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामुदायिक रूप से मानव की पहचान की जाने लगी। इसी सन्दर्भ में एक विशाल मानव समुदाय सभ्य व विकसित व्यवस्थाओं तथा राष्ट्रों की मुख्यधारा से दूर खडा दिखाई देता है, उनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक अलगाव, संकोची प्रवृत्ति, आदिम लक्षण आदि विशेषताएं हैं। जनजाति समुदाय कहलाता है। उन्होंने अपनी मूल प्रजातीय विशेषताओं को नहीं छोडा इसलिए उन्हें “ आदिवासी” भी कहा जाता है।

सनातन संस्कृति के अंग

भारत भूमि पर आदिकाल से ही जनजाति समुदाय हमारी साझा संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। जब कभी भारतीय संस्कृति पर आंच आयी तब-तब जनजातीय समुदाय हमारी सनातन संस्कृति को बचाने के लिए ढाल बनकर सामने आया।

भोमट आन्दोलन (एकी आन्दोलन) की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्वतंत्रता से पूर्व के राजपूताने में आदिवासी भील मुख्यतः मेवाड, डूंगरपुर, सिरोही, बांसवाडा, प्रतापगढ, तथा कुशलगढ आदि रियासतों में रहते थे। अनादिकाल से प्राकृतिक वातावरण में पल्लवित व पोषित इस जनजाति ने अपनी अलग पहचान एवं संस्कृति का निर्माण किया। रियासती शासक, सामन्त एवं शेष समाज के लोग इन्हें जंगली एवं असभ्य आनते हुए इनका शोषण करने लगे।

श्री मोतीलाल तेजावत का उदय

इस भोमट क्षेत्र की आम जनता एवं आदिवासी समाज को इस दयनीय स्थिति से उबारने के प्रयास जिन निष्ठावान देशभक्तों ने किए उनमें श्री मोतीलाल तेजावत अग्रणी थे। श्री तेजावत ने मेवाड और कई पड़ोसी रियासतों के लाखों आदिवासी भीलों की करुण पुकार सुनी और उन्हें अत्याचार से मुक्त कराने के लिए संघर्ष में कूद पड़े। इन आदिवासियों को झकझोर कर जगाने व संघर्षशील बनाने का श्रेय श्री मोतीलाल तेजावत को है।

श्री गोविन्द गुरु के बाद उन्होंने आदिवासी भीलों की व्यथा को वाणी दी और उनके साथ होने वाले अन्याय का प्रतिकार करने के लिए उनमें अद्भुत इच्छाशक्ति, साहस एवं एकता का संचार किया। श्री तेजावत के व्यक्तित्व तथा उनके नेतृत्व में हुए भील आन्दोलन का समुचित मूल्यांकन दुर्भाग्य से अभी तक नहीं हो पाया है। निस्सन्देह श्री मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में हुआ यह भील भोमट आन्दोलन राजस्थान के स्वाधीनता आन्दोलन का महत्वपूर्ण अध्याय है यह भोमट आन्दोलन आदिवासी समाज में सामाजिक सुधार का भी आन्दोलन था। जिसका विस्तृत एवं समुचित आंकलन सर्वथा अपेक्षित है।

परिवारिक परिचय



उदयपुर जिले के भील बहुल पर्वतीय क्षेत्र के जागीरी ग्राम कोल्यारी में एक ओसवाल वैश्य परिवार में श्री मोतीलाल तेजावत का ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा विक्रम सम्वत् 1944 (सन् 1887) को जन्म हुआ। उनके पिता का नाम नन्दलाल तथा माता का नाम केसरबाई था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई और उन्होंने हिन्दी, गुजराती एवं उर्दू आदि भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया। कोल्यारी के पास ही स्थित एक अन्य सामन्ती ग्राम झाडोल में सम्वत् 1971 में 26 वर्ष की आयु में लहरबाई नामक कन्या के साथ आपका विवाह हुआ। बचपन से ही श्री तेजावत पराक्रमी एवं स्वाभिमानी स्वभाव के थे। उन्होंने झाडोल ठिकाने के जागीरदार के यहां कामदार के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया।

आदिवासियों की दुर्दशा

झाडोल ठिकाने में कार्य करते हुए उन्हें किसानों और भीलों की दुर्दशा की प्रत्यक्ष जानकारी मिली। झाडोल के ठाकुर के साथ जहाजपुर, नाहर मगरा, जयसमन्द आदि स्थानों पर दौरे पर जाते हुए उन्होंने देखा कि किस प्रकार भीलों, गरासियों एवं किसानों को जबरन पकड़कर उनसे बेगार ली जाती है। उनके संवेदनशील मन को यह सब दृश्य देखकर भारी पीड़ा हुई। इन घटनाओं से श्री तेजावत के मन में आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का स्रोत फूट पड़ा। इस स्थिति के विरुद्ध संघर्ष करने का संकल्प लिया। 8 वर्ष तक ठिकाने की नौकरी करने के पश्चात् उन्होंने अपने अन्तःकरण की पुकार पर संवत् 1976 में ठिकाने की नौकरी छोड़ दी। ठिकाने की नौकरी छोड़ने के पश्चात् उन्होंने झाडोल में ही एक सेठ की दूकान पर मुनीम के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। यहां भी उन्होंने आदिवासी भीलों का शोषण होते हुये देखा। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सेठ की दुकान की नौकरी भी छोड़ दी और आदिवासी भीलों के उद्धार के लिये पूर्णतः अपना जीवन समर्पित करने का निर्णय कर लिया।

आदिवासी किसानों का शोषण

ठिकाने में जागीरदारों द्वारा आदिवासी भीलों का निरन्तर शोषण एवं उत्पीडन किया जाता था। जागीरदार मनमाने ढंग से फसल का कूत करके लगान की बड़ी राशि निर्धारित कर देते थे। लगान का भुगतान करने के बावजूद किसान को रसीद नहीं दी जाती थी और उसके नाम पर बकाया राशि बढ़ती रहती थी। लगान का भुगतान न करने पर बलपूर्वक उसकी खड़ी फसल काट ली जाती थी। कभी-कभी उसे अपने खेत से बेदखल भी कर दिया जाता था। इस स्तर पर भी किसान के साथ होने वाले इस अन्याय के विरुद्ध कोई सुनवाई नहीं थी।

एकी आन्दोलन (भोमट आन्दोलन)

श्री तेजावत आदिवासी भीलों की विपन्नावस्था से अत्याधिक श्रुद्ध एवं व्यग्र थे। वे आतुरता से ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे जब आदिवासियों एवं किसानों के वृहद समुदाय से उनका सम्पर्क हो जाए वे उन्हें संगठित करें तथा अन्यायी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार कर सकें। मेवाड में छोट-बड़े अनेक तीर्थस्थल हैं जहां किसी न किसी धार्मिक पर्व पर मेलों एवं विविध अनुष्ठानों के आयोजन होते रहते हैं।

चित्तौड़गढ़ जिले में बनास नदी के तट पर स्थित मातृकुण्डिया नामक तीर्थ स्थल पर प्रतिवर्ष वैसाखी पूर्णिमा के पावन पर्व पर प्राचीन समय से ही एक प्रसिद्ध मेला लगता है जिसमें अपार जनसमूह इकट्ठा होता है। इस मेले में जनजागरण तथा संगठन करने के अपने अभियान का श्रीगणेश करने के लिए श्री तेजावत अपने कुछ साथियों के साथ पहुँचे।

मेले में सार्वजनिक घोषणा करवाकर वहाँ आए सभी किसानों को इस निश्चय की जानकारी दे दी गई। पंचों के इस निर्णय से सम्बन्धित पाँच-पाँच पर्व सभी गांवों को भेज दिए गए। इन पर्वों का आशय यही था कि कोई भी किसान सरकारी लगान जमा नहीं कराये तथा हरेक ग्राम में एक समिति बनाई जाए तो ग्राम की जनता को एकत्रित कर उसे लगान न देने के लिए वचनबद्ध करे और कोई भी व्यक्ति ग्राम पंचों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करे।

एकी आन्दोलन का आरम्भ —

श्री तेजावत ने आन्दोलन का श्रीगणेश भोमट क्षेत्र के झाडोल और फलासिया के गांवों से करने का निर्णय किया। इसी क्षेत्र के श्री तेजावत निवासी थे, श्री तेजावत ने सर्वप्रथम झाडोल में आन्दोलन का श्री गणेश करने के लिए पांच व्यक्तियों का चयन किया। ये पांच व्यक्ति थे — 1. बाला लुहार, 2. नीलाशंकर ब्राह्मण 3. किशन जोशी 4. लच्छीराम साधू और 5. अम्बावा कुम्हार। इन पांचों व्यक्तियों को श्री तेजावत एक दिन रात्रि में महादेव मंदिर में ले गए जहाँ पांचों व्यक्तियों ने श्री तेजावत के निर्देशानुसार भगवान की मूर्ति के हाथ लगाकर उनकी साक्ष्य में यह प्रण लिया कि वे सदैव एक होकर रहेंगे और आन्दोलन की सफलता के लिए मनोयोगपूर्वक कार्य करते रहेंगे। इस प्रकार भगवान के साक्ष्य में शपथ से प्रतिबद्ध हुए इन पांचों व्यक्तियों को श्री तेजावत ने समीपवर्ती गांवों में यह सन्देश देने के लिए भेजा कि अमुक दिन बदराणा गांव में श्री हरिहर के मंदिर में सभा होगी जिसमें प्रत्येक गांव से बुद्धिमान एवं विश्वास पात्र आदमी भेजे जावें।

बदराणा की प्रथम बैठक

बदराणा में समीपवर्ती ग्रामों के चुनिन्दा पंचों की विक्रम संवत् 1978 (सन् 1921) की ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी एवं अमावस्या को बैठक हुई। बैठक में जागीरदारों के अन्याय एवं अत्याचारों पर खुलकर चर्चा हुई। सभी उपस्थित पंचों ने देव प्रतिमा की उपस्थिति में यह प्रतिज्ञा की कि जिस तरह मातृकुण्डिया के मेले में मेवाड के किसानों ने अनुचित लगान नहीं देने का निर्णय किया है वैसा ही वे भी करेंगे और जब तक अनुचित लाग-बाग व जागीरदारी अत्याचार समाप्त नहीं होंगे तब तक वे “एकी” आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते रहेंगे।

प्रतिनिधिमण्डल का गठन एकी आन्दोलन के इसी क्रम में बदराणा में दूसरी बैठक श्रीहरिहर महादेव के मन्दिर में संवत् 1978 की ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को हुई। इस बैठक में आदिवासियों के अतिरिक्त महाजन व ब्राह्मण आदि भी सम्मिलित हुए। लगभग एक हजार से बारह सौ के बीच लोगों की उपस्थिति थी। रात्रि के समय बैठक में खुलकर विचार विमर्श हुआ और एकी आन्दोलन का अनुमोदन किया गया। बैठक में मातृकुण्डिया मेले में “एकी” आन्दोलन के बारे में किए गए निर्णय के अनुसार खालसा क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए आदिवासी क्षेत्रों के प्रतिनिधि चुने गये। बैठक में यह भी निर्णय लिया गया आदिवासी क्षेत्रों के प्रतिनिधि चुने गये।

बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि प्रत्येक गांव से दो बुद्धिमान पंच आवश्यक खर्च एवं अन्य साधन जुटाकर इस कार्य के लिए उदयपुर पहुँचे। झाडोल ग्राम के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं श्री तेजावत इस कार्य के लिए चुने गए। कुल मिलाकर 42 प्रतिनिधि श्री तेजावत के नेतृत्व में बैठक के उपरान्त आदिवासी क्षेत्र से उदयपुर के लिए रवाना हुए। इन प्रतिनिधियों को मेवाड महाराणा की सेवा में उपस्थित होकर किसान जनता के कष्टों के निवारणार्थ ज्ञापन प्रस्तुत करना था।

महाराणा को ज्ञापन : मेवाड पुकार”

उदयपुर पहुँचकर किसानों व आदिवासी भीलों के प्रतिनिधियों ने महाराणा के राजमहल के निकट पिछोला झील की बडी पाल पर डेरा डाला। तीन-चार दिनों में वहाँ सात-आठ हजार किसान इकट्ठे हो गए। गाँव-गाँव से आने वाले पंच एवं प्रतिनिधि अपने साध लिखित रूप से अन्याय व अत्याचारों का सप्रमाण विवरण लाए। इतने अधिक विवरणों का संक्षेपीकरण कर एक एकीकृत ज्ञापन तैयार करना एक दुढ़कर व

अवसाध्य कार्य था जो श्री तेजावत को सौपा गया। श्री तेजावत ने लाए गए विवरण पत्रों के सही-सही बिन्दुओं का सारांश लेकर एक पुस्तिका लिखना प्रारम्भ किया जिसे उन्होंने "मेवाड़ पुकार" की संज्ञा दी।

महाराणा को प्रस्तुत करने के लिए तैयार की जा रही इस पुस्तिका में रिश्वतखोरी, अनुचित लाग-बागों, शारीरिक यातनाओं एवं जनता के विविध कष्टों का सप्रभाण एवं नामजद ब्यौरा दिया गया।

" एकी आन्दोलन" (भोमट आन्दोलन) के धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ :-

जब दीवान ने आदिवासियों को "एकी आन्दोलन" से स्वयं को अलग कर लेने के लिए बाध्य किया तो आदिवासियों ने अत्यन्त निडरतापूर्वक कहा ऐसा कभी नहीं करेंगे, क्योंकि "एकी" न केवल आर्थिक पक्ष को लेकर की गई है किन्तु इसके धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ भी हैं, धार्मिक एवं सामाजिक बाध्यताओं के कारण "एकी" न केवल आर्थिक पक्ष को लेकर की गई है, किन्तु इसके धार्मिक एवं सामाजिक संदर्भ भी हैं, धार्मिक एवं सामाजिक बाध्यताओं के कारण " एकी" के अन्तर्गत उनका गठबन्धन सदा के लिये अडिग एवं अचल रहेगा

भोमट आन्दोलन का मूल्यांकन

आदिवासी नवजीवन की दयनीय स्थिति की ओर उन्होने आदिवासियों का ध्यान केन्द्रित कर उनकी चेतना को जागृत किया उनके उद्बोधन और सुझबुझ के चमत्कार से आदिवासी उठ बैठे लाखों आदिवासी उनके भक्त एवं निष्ठावान अनुयायी थे। बिजौलिया एवं बेगू के समकालीन किसान आन्दोलनों को संचालित करने वाले कई नेता थे, किन्तु उनसे भी अधिक व्यापक आदिवासी भील आन्दोलन को उस तेजस्वी तेजावत ने अकेले ही गति और दिशा प्रदान की।

एकी आन्दोलन पूर्णतः महात्मा गांधी के अहिंसक सत्याग्रह की अवधारणा के अनुरूप रहा।

भीलों जैसी भावुक व लडाकू जनजाति को अहिंसक आन्दोलन के ढांचे में ढालना निस्सन्देह एक हठकर कार्य था। रियासती शासकों द्वारा किए गए नृशंस हत्याकाण्डों के बावजूद आदिवासी, भील, समूदाय शान्ति एवं अहिंसा के पथ से चिलित नही हुआ इसका सारा श्रेय श्री तेजावत को ही है।

सन्दर्भ सूची :-

1. डॉ. प्रेमसिंह कोकरिया :- भील क्रांति के प्रणेता श्री मोतीलाल तेजावत पृ.सं. 27-30 (References)
2. सुमनेश जोशी : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, हेमा प्रिन्टर्स, जयपुर पृ. सं. 176-180
3. देव कोठारी : स्वतंत्रता आन्दोलन में मेवाड़ का योगदान, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर 1993 पृ.सं. 139-140
4. साप्ताहिक "नवजीवन" उदयपुर वर्ष 1946 की फाईल
5. साप्ताहिक रियासती, अजमेर वर्ष 1939 की फाईल
6. देवीलाल पालीवाल : मेवाड़ का "एकी" आन्दोलन और मोतीलाल तेजावत, मधुमरि (मासिक) जनवरी 1966, वर्ष 5 अंक 12।
7. सुमनेश जोशी: स्व. मोतीलाल तेजावत, उदयपुर (निबन्ध)
8. प्रकाश चन्द्र जैन : जनजातीय कृषि आंदोलन राजस्थान के भील आंदोलन का एक केस स्टडी उदयपुर, हिमांशु प्रकाशन ISBN978-81-85167
9. भगवती जैन : स्वतंत्रता संग्राम में भगत आन्दोलन की भूमिका बिन्दू प्रिन्टर्स, उदयपुर, 1982 प्रथम संस्करण (गीत मोती बावसी)
10. शांति कुमारी शर्मा : राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुर्यधा मोतीलाल तेजावत, ग्रंथमाला-37 राजस्थान स्वर्ण जयन्ति समिति, जयपुर वर्ष 2002 पृ.सं. 10-13।
11. मोहनदास गांधी : (10 फरवरी, 1922) "जन आंदोलनों का खतरा" (युवा भारत)
12. रामनारायण चौधरी: आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशक मण्डल, अजमेर 1974 पृ. 1974 पृ.सं. 78।
13. प्रेमसिंह काकरिया :- भीलक्रांति के प्रणेता मोतीलाल तेजावत (रा.सा.अ. उदयपुर) 1985, पृ. सं. 43-45।
14. रामनारायण चौधरी :- हमारा राजस्थान पृ.सं. 72-73

9602468382

मेल-dineshkumarpatel02018@gmail.com



हिंदू धर्म उद्धारक : आदि गुरु शंकराचार्य

केतन तिवारी, शोधार्थी इतिहास,

कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल

प्रस्तावना : भारत भूमि में ऐसे बहुत कम संत हुए हैं जिन्हें यह देश तथा यहां का जनमानस कभी नहीं भूल सकता, उन्हीं में से एक थे आदि गुरु शंकराचार्य, जो संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने के साथ-साथ एक प्रख्यात दार्शनिक और विचारक भी थे। आदि गुरु शंकराचार्य में भारतवासियों के साथ-साथ संपूर्ण विश्व को भारत की समृद्ध वैदिक परंपरा से परिचित कराया। मानव जीवन किस तरह का होना चाहिए यह हमें आदि गुरु शंकराचार्य की जीवन को जानकर भली भांति समझ में आता है जिन्होंने अत्यंत कम आयु का जीवन जीने के बावजूद भारतीयों के मन मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी तथा पतन होते हिंदू धर्म को पुनः स्थापित करने का कार्य किया।

आदि गुरु शंकराचार्य का जीवन परिचय : शंकराचार्य के जन्मकाल के संबंध में काफी मतभेद हैं। फिर भी अधिकतर विद्वान इनका जन्मकाल 788 से 820 ईस्वी तक मानते हैं। “शंकराचार्य का जन्म केरल के कालड़ी ग्राम में आलवाई नदी के तट पर नामपुरि या नम्बुद्री कुल में वैशाख शुक्ल तृतीया सौर 12 गते को हुआ था। इनके पिता का नाम शिव गुरु और माता का नाम विशिष्टा देवी था।”¹ “बालक के उपनयन संस्कार से पहले ही वृद्ध पिता के स्वर्गवासी होने से उनका पालन पोषण ननिहाल में हुआ और 5 वर्ष के होने से पहले ही उनकी माता उनकी शिक्षा-दीक्षा के निमित्त स्वग्रह लौट आई और बालक को गुरु आश्रम में भेज दिया। वहां बालक ने उपनिषद, पुराण, न्याय सांख्य आदि शास्त्र पढ़े और काव्य रचना भी करने लगे। गुरुकुल से समावर्तन करते ही बालक ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का कठोर निर्णय लिया, जिससे माता दुखी हो गई, परंतु शंकर ने माता को मना लिया। शंकराचार्य के अलौकिक पंडित्य और चमत्कारिक गाथाओं को सुनकर चेर राज्य के राजा राजशेखर ने उन्हें बहुत सम्मान दिया, लेकिन सब कुछ छोड़कर माता के भरण पोषण की व्यवस्था कर वह बाल ब्रह्मचारी उत्तर दिशा को चल पड़ा।”² “प्रारंभ में वह नर्मदा तट पर योगियों की गुफाओं में पहुंचे और वहां से पता लगाकर आंकारनाथ में योगीराज गोविंदपाद के चरणों में दंडवत होकर अनुष्ठानिक संन्यासी बनाए जाने की प्रार्थना की। गुरु से हठयोग दीक्षा लेने के उपरांत दूसरे वर्ष उन्होंने वहीं रहकर राजयोग सिद्धि ली, जिससे उनमें दूरदर्शन, दूरश्रवण,

सूक्ष्मदेहधारण, आकाशगमन, अणिमा, लघिमा, देहांतरप्रवेश, निदिध्यासन, ध्यान धारणा, समाधि का प्राकृत रहस्य तथा अपरोक्षानुभूति जैसी मानवेतर शक्तियां आ गयीं।”³ “आचार्य गोविंदपाद स्वामी ने शंकर को संन्यास धर्म में दीक्षित किया और शंकर का नाम शंकराचार्य रखा गया। आश्रम की पाठ विधि समाप्त कर शंकराचार्य को गुरु गोविंदपाद ने स्नातक की पदवी प्रदान की।”⁴ “काशी निवास में शक्ति से साक्षात्कार, चांडाल रूपी भैरव से मुठभेड़ और स्तुतिवाचन जैसी चमत्कारिक घटनाएं होने से वह नगर में प्रसिद्ध हो गए। इसी समय उनका सर्वप्रथम शिष्य चोल देशवासी सनन्दन बना था। शंकराचार्य की भारत भ्रमण तीर्थ यात्रा में जो प्रख्यात शिष्य हुए, वे हैं- पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वर, आनंदगिरि तथा चित्सुखाचार्य।”⁵ “आदि गुरु शंकराचार्य अपने पांडित्य के लिए विख्यात मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ करने प्रयाग होकर माहिष्मती भी गए। मंडन मिश्र ने शंकराचार्य के आते ही ‘कुतो मुण्डी’ कहकर श्लेष और व्यंग्य का बाण फेंका। शंकराचार्य भी उसी की शैली में वार्तालाप करने लगे। 17 वर्ष की आयु के इस किशोर संन्यासी से मंडन मिश्र और उनकी पत्नी भारती बड़े प्रभावित हुए।”⁶ इसके उपरांत आदि गुरु शंकराचार्य ने भारतवर्ष के अलग-अलग स्थानों की यात्राएं की। इसी यात्रा के दौरान उनका उत्तराखंड आगमन भी हुआ, जहां उन्होंने ज्योतिर्मठ पीठ की स्थापना की, बद्रीनाथ का खोया गौरव लौटाया और अंततः 32 वर्ष की आयु में 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक उत्तराखंड के केदारनाथ में ब्रह्मलीन हुए।

आदि गुरु शंकराचार्य की शिक्षाएं तथा अद्वैत मत : “आदि गुरु शंकराचार्य ने बौद्ध तथा जैन धर्म के साथ-साथ ब्राह्मण मीमांसकों, सांख्य, न्याय, वैशेषिक का भी खंडन किया। इसके लिए उन्होंने कर्मकांड और मूर्ति पूजा का वरण किया, लेकिन तांत्रिकों, भैरवों, गाणपत्यों, कापालिकों और पाशुपतों के वामाचार का विरोध भी किया।”⁷ आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा किए गए कार्य उन्हें हिन्दू धर्म सुधारक के रूप में भी स्थापित करते हैं क्योंकि “शंकर का वेदांत ब्राह्मणों के साथ-साथ शूद्रों तथा स्त्रियों के लिए भी था। इस प्रकार उन्होंने शूद्रों के लिए भी द्वार खोले थे। उन्होंने संन्यासियों को 10 श्रेणियों में बांटा जिससे वे दशनामी कहलाए, जो निरंतर भ्रमण तथा धार्मिक अनुष्ठान करते थे।”⁸ “दशनामी संप्रदाय नाथ संप्रदाय की एक प्रमुख शाखा है इसका संबंध अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक आचार्य शंकर द्वारा परिवर्तित संन्यास परंपरा से है। संप्रदाय में विकसित होने वाली को अग्रलिखित 10 वर्गों में विभाजित किया गया है- सरस्वती, भारती, पुरी, तीर्थ, आश्रम, वन, गिरि, अरण्य, पर्वत एवं सागर। सरस्वती, भारती तथा पुरी का संबंध मैसूर स्थित श्रृंगेरी मठ से, तीर्थ तथा आश्रम का द्वारिका स्थित शारदा पीठ से, वन तथा अरण्य का जगन्नाथ पुरी में स्थित गोवर्धन पीठ से तथा गिरि, पर्वत एवं सागर का बद्रीकाश्रम के निकट हिमालय में स्थित ज्योतिर्मठ से है।”⁹ “आदि गुरु शंकराचार्य ने एकेश्वर अर्थात् अद्वैतवाद के प्रचार के लिए हिंदू धर्म के लोकप्रिय सिद्धांतों का पुनर्संगठन किया तथा उच्च दर्शन प्रदान किया। इस प्रकार बौद्ध धर्म व अन्य संप्रदायों से टक्कर लेकर हिंदू धर्म की दिग्विजय की।”¹⁰ “आदिगुरु शंकराचार्य ने उस युग में जो भी विभिन्न मत-मतांतरों में परमात्मा, जीवात्मा, माया, अवतारवाद, अहिंसा और मूर्ति पूजा आदि

पर विभिन्न विचार थे, उन सभी को मूर्ति पूजा सहित हिंदू धर्म के रूप में इस प्रकार संगठित किया कि बौद्ध धर्म तर्कों की बाढ़ से ढह गया तथा पूर्व मीमांसा खंडित हो गई। कश्मीर से कन्याकुमारी तक विष्णु और शिव की पूजा होने लगी और अनगिनत देव मंदिर बनने लगे। इसी क्रम में उपयुक्त ऋतु में पवित्र तीर्थ स्थलों की यात्रा का क्रम भी चलाया गया, जो सारे भारत में चार धाम यात्रा के रूप में चला।”¹¹ “आदि गुरु शंकराचार्य ने ईश्वर को पूर्ण वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया और इस संसार को भ्रम व माया बताया। मनुष्य जीवन का उद्देश्य उनके अनुसार, स्वयं को भ्रम व माया से मुक्त कर ब्रह्म व ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करना है।”¹² “आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत सिद्धांत का मूल मंत्र इस सुप्रसिद्ध श्लोक में निबद्ध किया गया है- ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः’ अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है; जगत मिथ्या है; जीव ब्रह्म ही है; जीव ब्रह्म से कथमपि भिन्न नहीं है- ये ही चार सिद्धांत अद्वैत वेदांत की आधारशिला हैं।”¹³

“आदि गुरु शंकराचार्य ने भारत में चार मठों की स्थापना कर अपने विद्वान शिष्यों को नियुक्त किया। जिन्होंने उनके देहावसान होने पर शंकराचार्य उपाधि ग्रहण कर आदि गुरु के नाम को सदैव अमर बनाए रखने का संकल्प लिया था। इस प्रकार उत्तर अर्थात् उत्तराखंड में ज्योतिर्मठ, पश्चिम अर्थात् गुजरात के द्वारका में शारदा मठ पूर्व अर्थात् उड़ीसा पुरी में गोवर्धन मठ और दक्षिण अर्थात् कर्नाटक में श्रृंगेरी मठ की स्थापना कर वहां धर्माध्यक्ष नियुक्त किए। इन मठों का कार्य था- अद्वैत के सिद्धांत और उपनिषदों के विचारों को विशुद्ध बनाए रखने तथा शंकराचार्य के उपदेशों को अपने-अपने मठ क्षेत्र में निरंतर प्रचारित करना।”¹⁴ “सांस्कृतिक एकता के लिए आदि गुरु शंकराचार्य ने केरल, कर्नाटक आदि दक्षिण भारत के राज्यों से उत्तर भारत में पुजारी लाने की परंपरा चलायी। दक्षिण का नारियल, चंदन, सुपारी और कश्मीर से केसर के यहां आने का विधान चलाया तो उत्तराखंड से गंगाजल को रामेश्वरम में चढ़ाने का विधान किया। यदि रामेश्वरम में महाराष्ट्रीय पुजारी रखे तो जगन्नाथपुरी में वाराणसीय पुजारी रखने का विधान किया।”¹⁵

आदि गुरु शंकराचार्य और उत्तराखंड : आदि गुरु शंकराचार्य ने ना केवल उत्तराखंड में ज्योतिर्मठ की स्थापना कर बद्रीनाथ की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया बल्कि केदारनाथ में ब्रह्मलीन होकर उसे आम जनमानस के सम्मुख लाकर उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। “शंकराचार्य ने उत्तराखंड की यात्रा दो बार की थी प्रथम बार वह नेपाल, जागेश्वर होकर बद्रीनाथ आए थे। यहां से वह यमुनोत्री/केदार - गंगोत्री होकर कनखल से मैदानी भाग को लौटे थे। हमें इस मार्ग की पहचान ब्रह्मसूत्र भाष्य में सुघ्न (पश्चिमी गढ़वाल) उल्लेख आने से प्राप्त होती है। अनुश्रुति के अनुसार, उत्तराखंड की द्वितीय यात्रा में शंकराचार्य को अवंति नरेश सुधन्वा का सहयोग मिला था। दूसरी बार की यात्रा में वह परंपरागत मार्ग से आगे बढ़े। माधवाचार्य के ग्रंथ के आधार पर अनुमान होता है कि पहले वह कश्मीर गये। वहां शारदा देवी का उपवेशन किया, इसके पश्चात् गंगाद्वार आए। हर की

पैड़ी में बौद्धों की आराधितिक पूजा परंपरा को वैदिक परंपरा में ढाला। इसके बाद ऋषिकेश में आकर देवता की स्तुति में पद रचे और गंगा में बड़े विग्रह को यथास्थान स्थापित कराया। इसके बाद देवपुरी (देवप्रयाग) आए और अक्षयवट से गिरकर स्वर्गारोहण प्रथा पर प्रतिबंध लगाया। इसके पश्चात वह श्रीनगर आए जहां शक्ति ने उन्हें छांछ पिलाकर विशूचिका से बचाया था।¹⁶ “श्रीनगर पहुंचकर आचार्य को पता चला कि यह तांत्रिक पूजा का एक विशिष्ट स्थान है, अतः रुक कर आचार्य ने तांत्रिक पूजा का उग्ररूप (श्रीयंत्र) देखा। उस वक्त तक श्रीयंत्र पर नरबलि दी जाती थी। आचार्य ने ऐसे तांत्रिकों के साथ शास्त्रार्थ किया और तांत्रिकों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उन्हें नरबलि न करने की शिक्षा दी। साथ ही श्रीयंत्र को नदी में प्रवाहित कर दिया। श्रीनगर में शंकराचार्य ने एक मठ का निर्माण भी किया।¹⁷ “इसके पश्चात शंकराचार्य जोशीमठ पहुंचे थे तथा वहां गुफा में तप किया था। पश्चात स्थानीय कत्यूरी राजा से सहयोग लेकर बद्रीनाथ विग्रह को नारद कुंड से निकाल कर गुफा मंदिर में रखवाया था।¹⁸ “बद्रीनाथ के दर्शन करने और सुप्रसिद्ध स्रोत ‘हरिमीडे स्तवन’ के उपरांत शंकराचार्य केदारनाथ गए और एक दिन अपराहन में यह जानकर कि उनकी आयु अवधि पूर्ण हो चुकी है, वह ब्रह्मलीन हो गए। श्रृंगेरी पीठ के ग्रंथानुसार उन्होंने दत्तात्रेय गुफा के बाद कैलाश गमन किया था।¹⁹

आदि गुरु शंकराचार्य और ज्योतिर्मठ : “आठवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों लगभग 800 ईस्वी में आदि गुरु शंकराचार्य ने अपने पवित्र चरण कमलों से उत्तराखंड की भूमि को धन्य किया तथा यहां भारत की चार पीठों में से एक ज्योतिष्पीठ की स्थापना की। आदि गुरु द्वारा लिखित मठाम्नाय में इस मठ का नाम श्रीमठ है। यहां कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर शंकराचार्य जी को आत्मज्योति के दर्शन हुए थे, तब इसका नाम ज्योतिर्मठ पड़ा। आदि गुरु द्वारा क्षेत्र में दो और मठों आणिमठ (वृद्धबद्री) थोलिंग मठ (वर्तमान में तिब्बत क्षेत्र में) की स्थापना भी की गई थी।²⁰ “तोटकाचार्य, आदि गुरु शंकराचार्य के चतुर्थ शिष्य थे जिन्हें ज्योतिर्मठ का प्रथम अध्यक्ष बनाया गया था। उनका प्रसिद्ध नाम ‘आनंदगिरि’ था, मठाम्नाय में इसलिए कहा है- ‘तोटकं चानन्दगिरिं प्रणमामि जगतगुरुम्’। माधव ने इनका उल्लेख संक्षिप्त नाम ‘गिरि’ से ही किया है।²¹ “शंकराचार्य द्वारा स्थापित ज्योतिर्मठ के अंतर्गत उत्तर के कुरु, पांचाल, कश्मीर, कम्बोज एवं तिब्बत आदि क्षेत्र आते हैं। इसका तीर्थ स्थान ‘बद्रिकाश्रम’ है, वेद ‘अथर्ववेद’ है, महावाक्य ‘अयमात्मा ब्रह्म’ है, गोत्र ‘आनंदवर’ है तथा इसके ब्रह्मचारी ‘आनंद’ कहे जाते हैं।²² “ज्योतिर्मठ में निवास करते हुए आदि गुरु शंकराचार्य ने यहां अथर्ववेद की प्रतिष्ठा की तथा 4 वर्षों तक बद्रिकाश्रम क्षेत्र में रहकर ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता भाष्य एवं विष्णु सहस्रनाम भाष्य ग्रंथों की रचना की। इतिहासकारों एवं क्षेत्रीय विद्वानों का मानना है कि शंकराचार्य जी द्वारा इस क्षेत्र में सनातन धर्म एवं अद्वैत सिद्धांत के प्रचार प्रसार के समय से ही स्थानीय जनों में भगवान राम तथा कृष्ण की प्रति अगाध आस्था जागृत हुई तथा लोगों ने गायन, वादन तथा नृत्य द्वारा भगवान की लीलाओं का मंचन भी प्रारंभ किया।²³ “शंकराचार्य की जागरण की समय से ही गढ़वाल में रामायण की वाचिक परंपरा के साथ-

साथ अनुष्ठानिक परंपराएं भी आरंभ हो गई थी। शंकराचार्य के शिष्यों की टोली में अनेक गायक, नाट्यकार, कलाकार शामिल होते थे। वह अपने साथ दक्षिण भारत में प्रयुक्त होने वाले अद्भुत नक्काशीदार मुखौटे भी लेकर आए थे। उस काल में सनातन धर्म के जागरण की निमित्त शंकराचार्य के निर्देश से गढ़वाल के विभिन्न भागों में मुखौटों के साथ रामायण परंपराओं का आयोजन किया जाने लगा।²⁴ वर्तमान समय में ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) के आसपास के गांवों तपोवन, ढाक, बड़ागांव, लाता, सूकी-भलागांव, सलूङ-डुंग्रा, डुंग्री, सेलंग आदि गांवों में वैशाख के महीने में अनुष्ठानिक मुखौटा नृत्य आयोजित किया जाता है, जिसकी शुरुआत को शंकराचार्य के इस क्षेत्र में आगमन से जोड़कर देखा जाता है। सलूङ-डुंग्रा, डुंग्री तथा सेलंग गांव में इस अनुष्ठानिक मुखौटा नृत्य को रम्माण के नाम से जाना जाता है। अक्टूबर 2009 में सलूङ-डुंग्रा की रम्माण को यूनेस्को द्वारा विश्व अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर घोषित किया जा चुका है।

निष्कर्ष : आदि गुरु शंकराचार्य से पूर्व भारत भूमि में तांत्रिक पूजा का प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा था। पंच मकारों का प्रचलन था तथा बौद्ध धर्म निरंतर प्रसार करता जा रहा था। ऐसी स्थिति में शंकराचार्य ने अपने तर्कों व पांडित्य के प्रकाश से न सिर्फ बौद्ध धर्म को तिब्बत, नेपाल, चीन जैसे देशों तक सीमित किया बल्कि उनके प्रयासों से हिंदू (वैदिक) धर्म ने अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त की। आदि गुरु शंकराचार्य के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि अत्यंत कम आयु का जीवन जीने के बावजूद उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष को अपने ज्ञान के प्रकाश से रोशन किया। हिंदू धर्म को जागृत करने तथा एक सूत्र में पिरोने के लिए उनके योगदान को चिरकाल तक याद रखा जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नैथानी, डॉ शिव प्रसाद; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास द्वितीय भाग; पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल; 2008; पृष्ठ संख्या 554
2. वही; पृष्ठ संख्या 554
3. वही; पृष्ठ संख्या 554
4. शर्मा, उमादत्त; शंकराचार्य; दी पॉपुलर ट्रेडिंग कंपनी, कोलकाता; 1931; पृष्ठ संख्या 53-54
5. नैथानी, डॉ शिव प्रसाद; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास द्वितीय भाग; पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल; 2008; पृष्ठ संख्या 555
6. वही; पृष्ठ संख्या 555-556
7. वही; पृष्ठ संख्या 551
8. वही; पृष्ठ संख्या 551
9. शर्मा, प्रो डी डी; उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- पांच, संप्रदाय खंड; उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी; 2003; पृष्ठ संख्या 161

10. नैथानी, डॉ शिव प्रसाद; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास द्वितीय भाग; पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल; 2008; पृष्ठ संख्या 549
11. वही; पृष्ठ संख्या 550
12. रावत, डॉ अजय सिंह; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास; अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी; 2024; पृष्ठ संख्या 96
13. उपाध्याय, बलदेव; श्री शंकराचार्य; हिंदुस्तानी एकैडमी, इलाहाबाद; 1963; पृष्ठ संख्या 287
14. नैथानी, डॉ शिव प्रसाद; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास द्वितीय भाग; पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल; 2008; पृष्ठ संख्या 550
15. वही; पृष्ठ संख्या 551
16. वही; पृष्ठ संख्या 556-557
17. काला, डॉ एस पी; गढ़वाल हिमालय में तीर्थ यात्रा एवं नया पर्यटन; सरिता बुक हाउस, दिल्ली; 1992; पृष्ठ संख्या 46
18. नैथानी, डॉ शिव प्रसाद; उत्तराखंड का सांस्कृतिक इतिहास द्वितीय भाग; पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल; 2008; पृष्ठ संख्या 556-557
19. वही; पृष्ठ संख्या 557
20. कौशल, मौली; रम्माण- विश्व अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर; इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली; 2017; पृष्ठ संख्या 15
21. उपाध्याय, बलदेव; श्री शंकराचार्य; हिंदुस्तानी एकैडमी, इलाहाबाद; 1963; पृष्ठ संख्या 183
22. शर्मा, प्रो डी डी; उत्तराखंड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- पांच, संप्रदाय खंड; उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी; 2003; पृष्ठ संख्या 161
23. कौशल, मौली; रम्माण- विश्व अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर;; इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली; 2017; पृष्ठ संख्या 15
24. पंवार, अजीत; हिमांतर पत्रिका, देहरादून (संपादक- डॉ मनमोहन सिंह रावत); अक्टूबर - दिसंबर 2022; पृष्ठ संख्या 44

ईमेल- ktntiwari@gmail.com

मोबाइल- 9997003313

Special Issue Editor :

Dr. Neeraj Ruwali

D.Litt.

Dept. of History

M.B. Govt. P.G. College,

Haldwani, Nainital, Uttarakhand.

Dr. Priyanka Ruwali

Dept. of Sociology,

D.S.B.Campus Kumaun University,

Nainital, Uttarakhand

Mohit Kumar Sharma

UGC. Senior Doctoral Fellow

M.B. Govt. P. G. College,

Haldwani, Nainital, Uttarakhand.

Special Issue Co-Editor :

Jyotsana Bhatt

ICHR. Junior Research Fellow

M.B. Govt. P. G. College,

Haldwani, Nainital, Uttarakhand.

